Impact Factor 6.741 2021

Year 12(02), Vol. XXIII
August.2021

ISSN-0976-8149
U.G.C. Journal No. 48216 (Pre.)

Manglam

Half Yearly Journal of Humanities & Social Sciences

मङ्गलम्

मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

A Peer Reviewed 'Refereed'Journal

Editor

Dr. Dinkar Tripathi

Manglam Sewa Samiti, Prayagraj (U.P.) India

(Regd. Under Society Registration Act 21, 1860)

सम्पादक, मुद्रक व स्वामी

डॉ० दिनकर त्रिपाठी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर राजनीति विभाग विभाग
फोरोज गाँधी कालेज, रायबरेली–229001 (उ०प्र०) भारत
मो० +91-7398180008
Email- drdinkartripathi@gmail.com

प्रकाशक

मङ्गलम् प्रकाशक

463/395 जी शिवम् अपार्टमन्ट
नया ममफोर्डगंज, इलाहाबाद–211002 (उ०प्र०) भारत
फोन नं०–+91-9196002888
Website- www.manglamallahabad.com

कम्प्यूटर ग्रॉफिक्स

संजीव कम्प्यूटर एवं प्रिन्टर्स, इलाहाबाद,(उ०प्र०) भारत
Email- computerallahabad@gmail.com

तकनीकि सहयोग

डॉ० (श्रीमती)वंदना त्रिपाठी
मो० +91-7398180009
Email- tripathivandana01@gmail.com

आवृत्ति

प्रथम अंक– फरवरी 29

द्वितीय अंक– अगस्त 31

मूल्य

* विदेश में–**$ 80**

** देश में – ₹ 600

मङ्गलम् (अर्द्धवार्षिक द्विभाषीय) शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के अपने हैं, सम्पादक के नहीं। इनमें सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। अतः पत्रिका के सम्पाक एवं प्रकाशक पर इसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। विवाद माननीय न्यायालय, इलाहाबाद में ही विचारणीय होंगे।

सम्पादकीय

आधिकारिक रूप से XXII ओलम्पियाड खेल अन्तरराष्ट्रीय योजनाबद्ध बहुखेल प्रतियोगिता के रूप में 24जुलाई 2020 से 9अगस्त 2020 के मध्य जापान के टोक्यो शहर में खेला जाना निश्चित था; किन्तु वैश्विक महामारी कोरोना के कारण इसे टाल कर 23 जुलाई 2021 से 8 अगस्त 2021 तक ग्रीष्मकालीन ओलम्पिक खेल के रूप में सम्पन्न किया गया। वस्तुतः ओलम्पिक खेलों की अन्तरराष्ट्रीय ओलम्पिक समिति द्वारा 7 सितम्बर, 2013 को व्यूनस आयर्स, अर्जेण्टीना में 120वें अधिवेशन के अन्तर्गत टोक्यो को ही मेजबान शहर के रूप में मान्यता प्रदान किया गया था। इस खेल प्रतियोगिता में पहले से खेले जाने वाले खेलों मे कतिपय और भी नये खेलों को समाहित कर दिया गया; जिसमें बेसवॉल, सॉफ्टवॉल; कराटे, स्केट बोर्ड और सर्फिंग प्रमुख थे। जापान में यह चौथी बार खेला जाने वाला ओलम्पिक खेल है; इससे पूर्व ग्रीष्मकालीन ओलम्पिक खेल 1964, टोक्यो में ही खेला गया था। इस प्रकार संसार का टोक्यो शहर ही अब तक का एकमात्र ऐसा शहर रहा है; जहाँ दो बार ग्रीष्मकालीन ओलम्पिक खेलों का आयोजन किया जा सका है।

ज्ञातव्य है कि भारत के कुल 119 खिलाड़ी जिसमें 67पुरुष और 52महिला खिलाड़ियों ने भाग लिया। इस ओलम्पिक में भारत की ओर से एक 228 सदस्यीय दल भेजा गया। जो अब तक का सबसे बड़ा दल रहा है। भारतीय ओलम्पिक संघ (IOA) के वर्तमान अध्यक्ष श्री नरेन्द्र बात्रा हैं इस प्रतियोगिता में भारत की ओर से 85पदक स्पर्धाओं में अपनी चुनौती प्रस्तुत की गई। इस ओलम्पिक में पहला सिलवरपदक मीराबाई चानू; दूसरा ब्रान्जपदक लवलीना; तीसरा ब्रान्जपदक पी०वी०सिन्धू, चतुर्थ सिलवरपदक रविकुमार दहिया तथा जैवलिनथ्रो का गोल्डमेडल नीरज चोपड़ा ने अपने देश के लिए जीता। भारतीय पुरुष हॉकी टीम ने 41वर्षों के बाद इस ओलम्पिक में कॉस्यपदक प्राप्त किया। 65 किलो रेसलिंग में ब्रान्ज मेडल श्री बजरंग पुनिया ने जीता। इस प्रकार एक स्वर्णपदक के साथ अन्य 6पदकों को प्राप्त कर भारतीय टीम ने अपने देश के गौरव को बढ़ाते हुए जीत हासिल की। सम्पूर्ण ओलम्पिक खेल 2020 में भारत पूरे संसार में 48वें स्थान पर स्थापित हो गया।

इस ओलम्पिक में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर अमरीका रहा; जिसने 39वें गोल्डमेडल के साथ कुल 113 मेडल लेकर कीर्तिमान स्थापित किया। चीन को दूसरा स्थान 38 स्वर्ण पदक के साथ तथा जापान ने 27स्वर्ण पदक हासिल कर तीसरा स्थान प्राप्त किया।

टोक्यो के पैरा ओलम्पिक खेलों में भारतीय विकलांग खिलाड़ियों ने शानदार प्रदर्शन करके 5स्वर्ण, 8रजत तथा 6कांस्य पदकों की प्राप्ति करके

पूरे विश्व स्तर पर 24स्थान प्राप्त कर अपने देश का गौरव बढ़ाया। इस प्रतियोगिता के एथलेटिक्स में– 8; शूटिंग में– 5, बैडमिन्टन में–4, टेबिलटेनिस तथा तीरन्दाजी में एक–एक मेडल भारत को प्राप्त हुआ। इस पैराओलम्पिक में अब तक की यह सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन में साथ विजय रही है। इस विजय में भाविनाबेन पटेल ने टेबलटेनिस में रजतपदक, निशाद कुमार ने हाईजम्प में रजतपदक; अविन लखेरा ने स्वर्णपदक राइफलसूटिंग में; योगेश कथुनिया ने डिक्कस थ्रो में सिलवरमेडल, सुमित अन्तलि ने जैवलिन थ्रो में दूसरा स्वर्णपदक, देवेन्द्र झाझारिया ने जैवलिन थ्रो में रजतपदक, सुरेन्द्र सिंह गुर्जर ने जैवलिन थ्रो में कांस्यपदक; सिहंराज ने एयरपिस्टल स्पर्धा में कांस्य पदक तथा मरियप्पन थांगावेलु ने ऊँचीकूद में कांस्यपदक, प्रवीण कुमार ने हाईजम्प में सिल्वरपदक, शरद कुमार ने ऊँची कूद में कांस्यपदक, हरबिन्दर सिंह ने तीरन्दाजी में कांस्यपदक, मनीष नरवाल ने शूटिंग में स्वर्णपदक, प्रमोद भगत ने बैडमिन्टन में गोल्डमेडल; मनोज सरकार ने एस०एल०श्रीवर्ग में ब्रान्जमेडल; सोहास एल० यथिराज ने बैडमिन्डन में रजतपदक तथा कृष्णा नागर ने बैडमिन्टन में गोल्ड मेडल प्राप्त किया है।

हर्ष का विषय रहा है कि प्रधानमंत्री श्री दामोदर दास नरेन्द्र मोदी ने इन सभी खिलाड़ियों को हर सम्भव सुविधा, उत्साहवर्द्धन और अपनी विशिष्ट शुभकामनाओं से जहाँ एक ओर उनके हौंसले बुलन्द किये; वहीं दूसरी ओर विजेताओं सहित सभी प्रतियोगियों को पुरस्कृत एवं प्रशंसित किया। प्रतियोगी मण्डल ने हमारे देश का पूरे विश्व में परचम फहराया। सम्पादक मण्डल की ओर से सभी खिलाड़ियों को भूरिशः बधाईयाँ।

''मङ्गलम्'' शोध जर्नल का यह तेईसवाँ पुष्प अनुसंधाताओं के आवदानों से मण्डित अपने इस स्वरूप को उपस्थित करते हुए सुधीजनों एवं विशेषज्ञों के सत्परामर्शों की सादर कामना करता है।

(दिनकर त्रिपाठी)
सम्पादक

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त 2021
ISSN-0976-8149

विषयानुक्रम

सम्पादकीय

क्र०सं०	शोधपत्र	पृष्ठ
1.	**Revisiting Governance: Review of Relief Packages for Gender-Equal Responses During COVID-19** *-Dr. Neelu Anita Tigga*	01-14
2.	**Crafting Of The 'Corporate' Gandhi – After Gandhi** *-Dr. Vijay Pratap Mall* *-Ms. Divya Mall*	15-25
3.	**Evalution Of Bengali Literature : An Overview On Eminent Writers** *-Dr.Shardha Mishra*	26-34
4.	**Constitutional Provisions Towards Child Labour In India** *-Dr. S.K. Rai*	35-43
5.	**Omkara- The Ultimate Solution To Salvation** *-Owandrila Roy*	44-52
6.	भारत में संसदीय बनाम अध्यक्षीय लोकतंत्र : एक विवेचन *-डॉ० मुकेश कुमार वर्मा*	53-61
7.	साठोत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों पर पाश्चात्य रंगमंच का प्रभाव *-आचार्य पी०के०जयलक्ष्मी*	62-66
8.	भारत में राज्यों का पुनर्गठनः एक अनसुलझा मुद्दा *-डॉ० अन्जू*	67-73
9.	गीता में प्रतिपादित 'आत्मज्ञान' की प्राप्ति के विभिन्न मार्ग *-डॉ० भानु प्रकाश त्रिपाठी*	74-77
10.	भारतीय आस्तिक दर्शनों में प्रमाण मीमांसा *-डॉ० नीतू सिंह*	78-82
11.	संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व *-डॉ० सत्येन्द्र नाथ तिवारी*	83-89
12.	भर्तृहरि और वाक् तत्त्व *-डॉ० सुधीर कुमार*	90-94
13.	तिहरे तलाक की समाप्ति : एक विधिक अध्ययन *-राज देव सिंह*	95-98

14.मुस्लिम महिलाओं के अधिकार : मुस्लिम वैयक्तिक विधि तथा भारतीय संविधान **99-105**
-डॉ० अमित कुमार श्रीवास्तव
15.ऋतुधर्म की हिन्दू धर्म–शास्त्रीय व्याख्या **106-110**
-डॉ० अनुपमा
16.हिन्दी कथा–साहित्य पर वैश्वीकरण का प्रभाव **111-115**
-डॉ० नियति कल्प
17.प्राचीन भारतीय मंदिरों का वर्गीकरण : आधार एवं भिन्नताएं **116-120**
-डॉ० राजेश कुमार तिवारी
18.साहित्य और हिन्दी सिनेमा **121-125**
-डॉ० रिंकी सिंह
19.तार सप्तक की परिकल्पना तथा कवि अज्ञेय का काव्य सृजन **126-130**
-डॉ० करुणा गुप्ता
20.भारतीय संस्कृति – मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य कला एवं संगीत कला **131-136**
-भारत गौतम
21.भारतीय नवजागरण के अग्रदूत : स्वामी विवेकानन्द **137-141**
-डॉ० अजीत कुमार पाण्डेय
22.अराजकतावाद और महात्मा गाँधी **142-145**
-डॉ० अजय कुमार सिंह
23.पंचायती राज व्यवस्था में कमजोर वर्गों की चुनौतियाँ **146-150**
-कृष्णपाल सिंह
-डॉ० नवीन कुमार
24.आत्मनिर्भरता एवं गांधीवादी दृष्टिकोण **151-153**
-देवेन्द्र कुमार पाठक
25.अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल में भारत–चीन सम्बंधों की प्रगाढ़ता **154-158**
-अखण्डानन्द मिश्रा
-डॉ० नवीन कुमार
26.हिन्दी की समकालीन दशा एवं दिशा **159-161**
-डॉ० वन्दना त्रिपाठी
27.प्राच्य भारतीय समाज चिन्तकों की दृष्टि में पतितजनों की सामाजिक स्थिति **162-167**
-डॉ०ऋतेश त्रिपाठी

Manglam-Year 12 (02) Vol.XXIII, Aug.2021
ISSN-0976-8149, P. 01-14

Revisiting Governance: Review of Relief Packages for Gender-Equal Responses During COVID-19

Dr. Neelu Anita Tigga*

Abstract

The Covid-19 pandemic has affected different groups differently. One such group being the women. A gender-lens is required to access its implications on women.It has been observed thatgender-neutral recourse to the pandemic will carry disproportionately higher health and economic cost for womendeepening already existing inequalities for women.Women face disproportional inequality across every sphere from health to economy, security to social protection. The possibility to prevent the spread of virus through lockdown measures are accompanied with unprecedented high economic cost. This is so because women constitute a larger working force of the informal sector. Economic uncertainty affects them considerably because during economic crisis informal and part-time jobs stand suspended rendering them unemployed. In addition, substantially a large number of healthcare and social workers are women. They are the first to respond to mitigate the outbreak as frontline workers but are also at great risk to the disease. It is also being observed that often essential needs of women regarding sexual and reproductive healthcare become a matter of secondary importance with essential resources being diverted to emergency responses. Another grave concern related to the outcome of lockdown is the increase in domestic and intimate partner violence against women. Joblessness, limited or no income, escalation of prices of essential commodities, increasing expenditure on medicine and testing have emerged as additional burden. This has rendered people specially women managing family expenditure helpless and frustrated. Often women and children are found to be at the receiving end. Limited resources forces womento cut their own requirements.They are seen reprioritizing their budgets to meet needs of husband and children first affecting her overall wellbeing. The women look up to the state to redress the widening inequality suffered by them. This has necessitated state's intervention in their policy formulation and implementation affecting the overall wellbeing of women.

This calls for the academics and policy makers to revisit the debate around the concept of governance. The onus lies with the government to find measures to deal with predicament that has rapidly moved from health crisis to a full-blown economic catastrophe. The asymmetric impact of the pandemic across different states with matters related to containment measures, health care, social services and economic development requires a high degree of vertical co-ordination. Political leadership at the center with local governments and civil society need to come together to promote national resilience and preserve well-being with agile and

**** Assistant Professor Department of Political ScienceSatyawati College (Day) University of Delhi, Delhi***

innovative response at the highest level.

The government must face up to this reality. Its response and recovery efforts must place the needs of women and girls at the center with expanded safety nets. Unpaid and care work to be recognized and valued. Measures to stimulate the economy from cash transfer to credit and loans to be targeted at women. Greater political participation of women with decision making power, mitigating gender violence and formulating and implementing appropriate policy measures for retaining livelihood during the recovery period is required. The paper examines whether the government intervention in the form of economic stimulus packages have helped women secure their livelihood. Also, explores the ways in which the capabilities of bodily health especially related to reproductive health shape women's economic outcome.

Keywords: Governance; Gender Inequality; Gender-lens; Coronavirus; Sexual and Reproductive Healthcare; Economic Inequality; Domestic Violence; Aatmanirbhar Bharat Package; Welfare Schemes; GenderingPolicies

Introduction

The present pandemic exposed existing inequalities and even to some extent further deepened them. Women are at a greater risk from the health perspective as well as that of economic standpoint. There is a gender angle to poverty. Largely women have been associated with customary jobs in a male centric culture. Customary jobs of mother and spouse kept them in nursery and kitchen. This discouraged women to enter the public sphere. Limiting their ability to acquire education and skill. Greater part of the women is put aside to fill the most reduced paid, least fulfilling, most chaotic and unprotected positions. Very often engaged in care employment seen as an extension of household work, such as teachers, nurses, stewards, house helpers. Economic crisis not only renders them unemployed but also with limited means affecting their health. Women often cut down on their own requirements, prioritizing family needs. They reprioritize the family budget where menstrual hygiene and related products do not find mention. Further, with supply chain disruption the non-availability of drugs, contraceptives, antibiotics not only makes women susceptible to diseases, their rise in prices makes them out of reach of poor women. Unwanted pregnancies have an economic bearing.

Women's fertility control impacts her other capabilities, including the desired occupation and reduced unpaid labour, career timing and economic security. Women therefore have looked upon the state as the facilitator in the form of implementing welfare policies to redress women's situation whether health or economic.

The initiatives taken by the government in the form of policies and programmes so far have not been promising, both in terms of goals set and resources and mechanisms available to achieve such goals as is evident in the various five-year plans. Analysis of women's role in development in official policy has witnessed a number of shifts in the perception of the nature of the problems as well as in the solutions. During 1960s and 1970s the primary perception of women's role was that of mothers and housewives; during the 1970s and 1980s it became producers and providers; and in the 1990s they became actors in the market. Solutions shifted accordingly from welfare to anti-poverty to efficiency (Ninth Five Year Plan: GOI: 1996).

The onset of liberalization and globalization in the 1990s raised new concerns for women. Liberalization referred to deregulation of industrial control and opening up of markets with its emphasis on making markets more export oriented. This implied liberalization of external trade, reduction of tariff barriers, devaluation of the rupee and removal of restrictions on export goods especially agriculture. On the other hand, Structural Adjustment policy was described as a package of measures which the developing countries were to adopt in return for a new wave of loans. This was accompanied with the coinage of the concept of governance by the World Bank. World Bank defined it as "the manner in which power is exercised in the management of a country's economic and social resources for development" (World Bank: 1992). This was conceptualized to switch the found-out insufficiencies related to the state. Insufficiencies, such as, failure to make the separation between the public and the private gains, failure to establish a framework of law and government rules impending functioning of markets, non-transparent decision making (Jayal: 1997). The proponents of the concept wanted to shatter the dominant state led

development paradigm. They propagated a minimal state to overcome the problems of development stagnation by promoting open market and free competitive market economies. To make policy making more effective focus on state-society interactions as a mode of coordination between multiple and fragmented social agents such as public administration, private firms, semi-public bodies, lobbies, consultants, citizens and consumer associations was advocated. It put emphasis on pluralities and incoherencies, horizontal and vertical co-ordination of public policies in ways that are more sensitive to the societal environment. In doing so it demanded the slimming down allegedly oversized public bureaucracies, reducing subsidies and encouraging realistic prices. However, this required cuts in state expenditure on sectors such as welfare and social security.Not provinga magic solution to all ills of poverty as was promised. Doing so, it did not take into consideration the needs, priorities, and consensual choices of the people at a given time and situation. A significant problem with the studies attempted to measure government was the fact that they ignored that governance is a concept which has a significant political and context specific context.

There emerged a large protest from among the poor and the marginalized depending on the state for their wellbeing.Protest from the poor and the marginalized such as women and the changed World Bank's stance of development with a human face resulted in government to spend on rural development and poverty alleviation programmes since 1998-99. The various poverty alleviation programmes, such as, Integrated Rural Development Programme, Development of Women and Children in Rural Areas (DWCRA), Training of Rural Youth for Self-Employment (TRYSEM), and the Jawahar Rozgar yojana played a prominent role in the lives of rural women. These programmes aimed at improving the socio-economic status of women through acquisition of credit based productive assets. Assistance in the form of subsidy was given by the government and term credit by the financial institutions for income generating activities. Under these programmes 40 per cent of those being assisted were to be women. Similarly, for the urban

unemployed and underemployed poor women a scheme called the Swarna Jayanti Shahari Rozgar Yojana (SJSRY) was initiated. It aimed at empowering and uplifting poor women by making them eligible for subsidy up to 50 per cent of the project cost in their self- employment ventures. However, structural weaknesses in the administrative set-up of programmes, lack of monitoring arrangements and suitable checks and procedure to eliminate malpractices, inadequacy of infrastructure for providing benefits to the selected beneficiaries and considerable price rise (Planning Commission Report, Volume 1: 2021) in subsequent years has had limited result in improving the status of women. With the already existing problems for women the present pandemic has aggravated socio-economic problems for women. So, government intervention in the form of formulation and implementation of welfare schemes targeting women needs should be a high priority.

Covid-19:health crisis to economic crisis

Severe acute respiratory syndrome coronavirus 2 (ASRS-CoV-2), which causes coronavirus disease (COVID-19), was first identified in December 2019 in Wuhan city, China. With its rapid spread to other parts of the world WHO declared it a Public Health Emergency of International Concern on 30th January, 2020. India reported the first case of the coronavirus infection on 30th January, 2020 in the state of Kerala. The increasing number of infections in different parts of the country led to the imposition of nationwide lockdown from March 2020 with certain relaxations only in May 2020. The lockdown was lifted in a phased manner with reduced cases of infections. However, as the things were beginning to improve the country faced the second wave of Covid-19 in mid-February 2021. The breakout of mutant strains was associated with the unexpected higher rates of morbidity and mortality relative to the first wave. The highly transmissible coronavirus strain spreading across both urban and rural areas led to fresh restrictions on activities though the restrictions on mobility were regionalized and nuanced. However, this is accompanied with economic implications adversely impacting across all sections of the population.

Measures adopted such as lockdown, containment zones, social distancing, people encouraged to stay at home, interruption in the supply chain and reduced consumption and demand have been identified as having a major economic impact. Service sectors especially travel, tourism and hospitality are the worst hit and its effect has spread to manufacturing, mining, agriculture, public administration and construction impinging investment, employment, income and consumption. Vast informal sectors are forced to shut down raising unemployment among the marginalized and women.

Covid-19 pandemic not gender neutral

Covid-19 has affected women differently than men. Sex and gender are inextricably linked with healthcare and economic wellbeing. Gender understood as ensemble of social suppositions, norms and roles associated with being a woman or man plays a massive role. Reproductive rights, decision making around the pandemic, economic wellbeing and domestic violence are some areas which show pandemic has negatively impacted women.

Healthcare represents a gendered nature of workforce with a substantial percentage of women associated with it as care work. Healthcare in India consists of 79 percent of female health workers (66.9 percent as nurses and midwives; 12.2 percent ancillary health) according to World Health Organization (Anand and Fan: 2016: 21).This means greater exposure to infections. Pandemic has had other adverse implications for women. Often in times health crisis with essential resources being diverted to emergency resources women's sexual and reproductive healthcare needs get little attention. A survey conducted by social impact advisory group Dalberg of 15000women and 2300 men across 10 Indian states of India in its report titled "Impacts of Covid-19 on Women in low-income households in India" revealed that about 16 percent of women could no longer afford sanitary pads and more than a third lost access to contraceptives between March and November 2020 (TOI: 2021:11). In a letter to the Union Health secretary Anurag Kundu the chairman of DCPCR pointed out that each year 2.6 crore women deliver children and another 2.6 crore constitute lactating

women. This amounts to be a critical population in India. They are left out of vaccination against the coronavirus due to the indefinite side effects of remdesivir drug widely used to treat the covid patients (TOI:2021:5). Similarly, National Technical Advisory Group on Immunization added that all beneficiaries should be informed about the long-term adverse reactions and safety of the vaccine for the foetus. The choice should be left to the pregnant women whether to go for vaccination in the absence of clear outcome (Jha:2021:4). Misconceptions and rumours, such as, side effects of vaccination on fertility and menstruation; patriarchal social norms like women stay home and are at low risk toget infected, who would care for the ailing husband suffering from side effects of the vaccination if she herself is ill; and access issues due to lack of mobility, dependence on husband , inability to make use of internet to register for vaccination on CoWin site are some such reasons fueling disparity in distribution of vaccination to women across most states has been brought to light.

As of June, 309 million covid vaccine doses were delivered since January 2021. 143 million were administered to women compared with nearly 167 million men, according to CoWin, India's national statistics site – a ratio of 856 doses given to women for every 1000 men (The Guardian:2021). The figures and data of different states on vaccination coverage does show gender imbalance in the adult population. Widest seen in the states of Jammu and Kashmir, Delhi and Uttar Pradesh. In J&K with 32 percent of adult population being vaccinated only 711 women were vaccinated for every 1000 men. In Delhi, women were just 42 percent of those vaccinated or just 722 for every 1000 men. In UP, with only 12 percent of adult population being vaccinated, the adult sex ratio being 936, among the women vaccinated are just 746 (TOI: 2021:8). In addition, a survey conducted by the Willis Tower Watson Covid-19 Vaccination Trends India conducted in April 2021 revealed that 50 percent employers were planning to facilitate/assist Covid-19 vaccination for their employees and dependents (WTW Survey:2021). However, this would be of little benefit to large number of women employed in the informal sector.

Overview of the economic impact of Covid-19 reveals that

compared to men, women are usually earning less, saving scarcely, mostly partake in contractual, short-term, unorganized and insecure jobs due to disproportionate burden of unpaid care work of domesticity. This renders them time poor forcing them to take jobs as per the availability in the market.

Labour Force Participation Rate in India for rural and urban females was 19.7 percent and 16.1 percent respectively (PLFS: 2018-19: 46). Similarly, Worker Population Ratio for rural and urban females was 19 percent and 14.5 percent respectively (PLFS: 2018-19: 49) According to the Periodic Labour Force Survey (PLFS) women informal workers accounted for 58.5 percent in the rural areas and 50.2 percent in the urban areas (PLFS: 2018-19: 57). 24.5 percent of female workers were engaged in manufacturing sector and 13.8 percent in trade, hotel and restaurants (PLFS:2018-19:55). These stand to be affected disproportionately due to lockdown and no demand. Women not only loose work but receive no benefits of contractual paid leave policies. As per PLF Survey, 57.7 percent of women in rural areas and 52.6 percent of women in urban areas among regular/salaried in non-agriculture sectors are ineligible for any social security benefits let alone those employed in informal sector (PLFS: 2018-19: 57). Self-employment among female workers is quite high 59.6 among rural females and 34.5 among urban females (PLFS:2018-19:53) with most women engaged in home-based work. However, self-employment which often serves to cushion the impact of changes may prove ineffective because of restriction on the movement of people and goods. This in turn will translate into reduced consumption of goods and services affecting prospects of business and economies. Workplace closures with adverse impact of Covid-19 on manufacturing, construction and service sectors hasrendered large number of women without work. Dalberg in its study “Impact of Covid-19 on women in low-income households in India” revealed that 6.4 crore women in the first nine months after lockdown in March 2020 had to cut down their intake of food. Despite being 24 percent of the pre-pandemic workforce 43 percent remained unemployed as of October 2020 (TOI: 2021:11).

Another glaring reality to which the government needs to pay attention to is the increase in violence against women during times of health emergencies. Under the lockdown the interaction time has been increased between women and men. Children at home due to closure of schools, sick and elderly at home has increased the unpaid care burden for women. Unequal distribution of family responsibilities along with the disruption of livelihood and ability to earn a living, decreased access to basic needs and services has resulted in increase of stress at home exacerbating conflict and violence with women and children at the receiving end. National Commission for Women under the category "Protection of Women against domestic violence" received around 4350 complaints from March 2020 to 18th September, 2020 (NCM: 2020)

Women experience problems different than men especially during emergencies. This call for attention to the need to promote strategies to protect women. Government welfare schemes and self-help groups become crucial particularly for those from marginalized communities.

Government relief package during pandemic

A 20-lakh crore economic stimulus package to be distributed in 5 tranches was announced by the government through its AatmanirbharBharat Abhiyan or Self-Reliant India Movement announced a 20-lakh crore economic stimulus package. This was to be distributed in 5 tranches focusing relief measures to be brought to diverse categories and across various sectors.

The Pradhan Mantri Garib Kalyan Package (Tranche 1)

A relief package of about Rs. 1.70 lakh crores were to cover 80 crores poor people including women for cash transfer and food security to survive the pandemic. This was announced in March and included-distribution of free food grains, cash payment to women Jan Dhan account holders, increase in MNREGA wage to Rs. 202 a day from Rs. 182 to benefit 13.62 crore families, ex-gratia of Rs. 1000 to 3 crore poor citizens, poor widows and poor divyang, Rs. 2000 paid to farmers under existing PM-Kisan to benefit 8.7 crore farmers, relief to construction workers through Budling and Construction Workers Welfare Fund, limit of

collateral free lending to be increased from Rs. 10 to Rs. 20 lakhs for Women Self Help Groups, sanctioned Rs. 15000 crores for Emergency Health Response Package, moratorium of three months on payment of instalments and payment of Interest on Working Capital Facilities in respect to all term loans, new definition of MSMEs, their credit limitswere revised (The Hindu: 2020).

AatmanirbharBharat Package (Tranche 2) was focused on farmers, migrants and urban poor. This included relief measures, such as, 2 lakh crore concessional credit boost to farmers through Kisan Credit Cards, refinancing of 29,500 crore provided by NABARD, to Cooperative Banks and Regional Rural Banks, food grain supply to migrants, interest subversion of 2 percent for prompt payees of MUDRA-Shishu Loans (if timely paid, interest rate is reduced by 2 percent), relief to street vendors through a credit facility of Rs. 5000 crores (The Hindu: 2020).

Aatmanirbhar Bharat Package (Tranche3) focused on Agri-Infrastructure and included relief measures such as, Rs. 1 lakh crore Agri Infrastructure Fund for farm-gate infrastructure for farmers, strengthen fisheries, animal disease control programme, animal husbandry, promotion of herbal cultivation, address supply chain disruption: from TOP to TOTAL- Rs. 500 crores and amendments to Essential Commodities Act to enable better price realization for farmers enabling farmers to sell their produce directly reducing their dependance on Agri Produced Marketing Communities (The Hindu: 2020).

Aatmanirbhar Bharat Package (Tranche 4) focused on relief package toPrivate Public Partnership. While, Aatmanirbjhar Bharat Package (Tranche 5) on Insolvency and Bankruptcy Code (IBC) related and health related measures and increased allocation of Rs. 40,000 crores for MGNREGS to provide employment (The Hindu: 2020).

Various initiatives were also taken by National Commission for Women to deal with the growing violence against women during Covid-19. NCW launched a WhatsApp number on April 10, 2020 to ease reporting of domestic violence cases.For this severallocal helpline numbers were formed to extend support to Mahila Thanas

or Special Cell for Women to reach out to women in emergencies. To redress matters effectively NCW undertook review of the existing provisions of the Constitution and other laws affecting inter-state migrant women recommending amendments. Its suggestions included legislative measures to meet any inadequacies and shortcomings. To reach out to women at home it released a 5-minute video on "Psychological Wellbeing Strategy" in consultation with psychiatrists from PGIMER Chandigarh explaining techniques to deal with stress, anxiety and mental breakdown during lockdown (NCW: Vol. 1: 2020).

Government Relief Package Effecting Women

Several reliefs for women were covered under the Jan Dhan Yojana, Ujjwala scheme, collateral-free loan for women in self-help groups and ex-gratia for disabled and widows. They are commendable effort on the part of the government to provide relief as a short-term policy. However, so far, the relief package seemed to be geared towards the rural economy. Introducing MGNREGA for urban workers would go a long way for it is found that women account for more than half the workdays not seen in the workforce in general. Also, the increase in working days from 100 to 200 with marginal increase in wages would not serve the purpose unless wages are increased sufficiently. What is more, the state officials need to ensure that schemes are properly implemented at ground level to reach all women across India. With lockdown in place and adherence to social distancing to prevent spread of infection employment through MGNREGA seems not to be feasible. Similarly, the main characteristic of India's workforce is that they live on financial margins, lacking financial cushions to ride out shocks. 59.6 percent of rural women and 34.5 percent of urban women in India are self-employed. This segment of workforce and those in small establishment are the hardest hit. They are not likely to borrow money as many of them had borrowed earlier to meet the crisis of pandemic. They not only lack courage but are even more unlikely to be attractive as borrowers. This is despite Government of India offering credit guarantee and credit schemes on MSMEs. Often it is proposed that a high-debt, low-income

household need direct income transfer. However, this again highlights the importance of bank, Aadhar linkage for women to access government services and schemes in critical times like this. Which again highlights women's inability to access resources, services even counselling and assistance from authorities in case of violence against women due to lack of access and inability to use internet. A dismal 33.94 percent women in rural India and an average of 56.81 percent women in urban India used the internet (M. Sheriff: 2020).Helplines, shelters and legal assistance for battered women are woefully low at the best of times. During times of pandemic the administration, law enforcing agencies need to be sensitized and should recognize and address the distress of women. Relief through economic stimulus package may be the need of the hour but it is to be emphasized that women, poor women, migrants are vulnerable due to lack of social protection and rights.Thus, government welfare schemes especially geared towards diverse women needs during the pandemic should be a priority.

Conclusion

The country may be out of the second waves soon. But the possibility of mutation in the coronavirus and the risk of new variants increase with continued increase in cases in some states like Kerala and Maharashtra. Prime Minister, Narendra Modi in his address to six Chief Ministers reinforced the need to stay focused on the strategy of "Test, Track, Treat and Teeka (Vaccination)" while putting focus on minor-containment zones to prevent the possibility of the third wave. The need of the hour is that a pro-active measure should be taken by the government in the case of women to survive the pandemic. Evidence from reports disclose that in terms of vaccine India delayed giving the go-ahead for pregnant women. In overall vaccination, too, a worrying gender gap is revealed with wide regional disparities. Furthermore, patriarchy and gender belief system have normalized putting men's needs first. With this women's health and other concerns seldom find attention. A special outreach is needed to get Covid vaccines for women ensuring that the pandemic does not worsen the inequality. Women's only camps could be a good idea.

Similarly, with health crisis spilling over to economic crisis women's economic wellbeing needs assurance through reprioritization of government goals and objectives in term of resources.This is so because large percentage of women employed in informal sector, those being self-employed or working as domestic help, labourers in construction sector, in handicrafts and retail units were those disproportionately affected by economic shock. To make matters worse, a UN Women report on Covid-19 economic toll on women showed that response and recovery efforts tend to ignore the needs of women and girls. Men are favoured in the hiring process due to jobs being scarce making difficult for women to spring back with the end of the pandemic. In this direction, direct cash transfers which would mean cash in hand as advocated by RBI and economists could be a lifeline for those struggling to afford day to day necessities. Fundamentally, all policy responses to crisis must embed a gender lens and account for women's distinctive needs, commitments and standpoints.

References

1. *Anand, Sudhir and Victoria Fan. (2016). The Health Workforce in India: Human Resources for Health Observer, WHO, Series No. 16. Pp 21. 16058health_workforce_India (accessed July 7, 2021).*
2. *https://www.thehindu.com/news/resources/economic-stimulus-package-details-of-20-lakh-crore-package-announced-by-union-minister-nitrmala-sitharaman-in-five-tranches/article31606806.ece (accessed on July 6, 2021).*
3. *https://www.theguardian.com/global-development/2021/jnu/28/india-covid-gender-gap-woemn-left-behind-in-vaccination-drive (accessed on July 10, 2021).*
4. *Jayal, Niraja, Gopal. (1997). The Governance Agenda: Making Democratic Development Dispensable, Economic and Political Weekly, 32(8): 407-412.*
5. *Jha, Durgesh, Nandan. (2021). A pregnant pause before they decide to take the shot. Times of India, New Delhi, Sunday, July, 4, pp 4.*
6. *Kazancigil, Ali. (1998). Governance and Science: Market Like Modes of Managing Society and Producing knowledge, International Social Science Journal, Number 155, pp69-77.*
7. *Krishnaraj, Maithreyi. (1996). Towards Alternative Development*

Strategies: Problems and Possibilities for Women. Mainstream Annual: 87-100.

8. *https://indianexpress.com/article/india/nfhs-data-shows-urban-rural-gende-gaps-in-internet-use-7103710/ (accessed July 10, 2021).*
9. *https://pib.gov.in/PressReleaseDetailm.aspx?PRID=1657678 (accessed on July 15, 2021).*
10. *Ninth Five Year Plan, (1997-2002), Report of the Working Group on Women Development, Department of Women and Child Development, Government of India, New Delhi, 1996.*
11. *No work, no food, low wages: poor women bore brunt of 1st lockdown (2021). Times of India, New Delhi, Tuesday, July, 6, pp 11.*
12. *Periodic Labour Force Survey (June 2020). Annual Report, Ministry of Statistics and Programme Implementation, National Statistical Office, Government of India Annual_Report_PLFS_2018_2019_HL PDF*
13. *https://niti.gov.in/planningcommission.gov.in/docs/reports/peoreport/cmpdmpeo/volume1/134.pdf*
14. *//niti.gov.in/making-homes-safer-women-during-covid-19 (accessed on July 15, 2021).*
15. *https://www.unwoemn.org/en/news/stories/2020/9/feature-covid-19-economic-impacts-on-women (accessed on July 17, 2021).*
16. *Vaccinate Pregnant women: DCPCR. (2021). Times of India, New Delhi, Friday, May, 14, pp 5.*
17. *https://www.willistowerswatson.com/en-IN/Insights/2021/04/willis-towers-watson-covid-19-vaccination-trends-india-survey (accessed on July 10, 2021).*
18. *World Bank. (1992). Governance and Development, Washington, DC.*
19. *1000: 854 Women get left behind in vaccination drive. (2021). Times of India, New Delhi, Friday, June, 11, pp 8.*

Manglam-Year 12 (02) Vol.XXIII, Aug.2021
ISSN-0976-8149, P.- 15-25

Crafting Of The 'Corporate' Gandhi – After Gandhi

Dr. Vijay Pratap Mall*

Ms. DivyaMall**

Abstract

"Working for economic equality means abolishing the eternal conflict between capital and labour. It means the levelling down of the few rich in whose hands is concentrated the bulk of the nation's wealth on the other hand , and a levelling up of the semi starved naked millions." (Constructive Programme, PP.20-21).

On the other hand the 'neo-liberal champions' of the world have employed Gandhi to marketing brand like the Apple's 'think different' campaign, Mont Blanc fountain pen costing a whopping $25000 has the nib showing an image of Gandhi walking with a stick, Telecom Italia's commercial promoting mobile technology are a few prominent ones or be it, The Swachh Bharat campaign of the present Indian Government that probably felt it prudent to associate the campaign with Gandhian symbols. This paper tries to problematize the oxymoronic existence of the 'after life' Gandhi of the Neo liberal world and M.K.Gandhi. Would Gandhi really favour of any of such huge market dynamos? The research aims to critically explore 'the Gandhi' 'for' promotions of 'centralised and mechanised' industries and Political orders juxtaposed with the Gandhi 'for' self-sufficient village economy. I will be looking at works like: The Story of my Experiments with Truth, India of my Dreams, Village Swaraj, Constructive Program- Its Meaning and Place. These works denote Gandhi's Ideals on decentralisation of economic and political power through the strengthening of Villages. From and beyond the colossal body of literature on 'Gandhi', this paper addresses this complex appropriation by numerous corporates and political orders to market their brand. A study through various articles and interviews will also be done to personify the 'after life' Gandhi of the neo-liberal world. In a supposedly 'Post Truth' world, his growing popularity in marketing sector necessitates introspection.

Keywords- neo-liberal champions, self sufficient economy, Village Swaraj , post- truth

Background

Mohan Das Karamchand Gandhi ;The name that associates an enigma with itself. His globular acceptance and huge popularity leaves no room for his introduction.However , from past two decades this name as crafted by the neo-liberal champions , has

* ***Associate Professor, Poltical Science JawaharLal Nehru P.G. College*** **Barabanki (U.P.)**

** ***Studunt Indraprastha College of Women,*** **Delhi University**

given birth to 'BrandGandhi'. Today we live in a market driven world . Essentially, marketing is meant to sustain a company's presence.Marketing is important because it helps you sell your products or services and since purpose of any business is to make money ;marketing is an essential channel to reach to that goal effectively. ' Creativs' a marketing firm states that "without marketing many businesses wouldn't exist because marketing is ultimately what drives sales.".According to Forty, "marketing is more like food than it is medicine."

Marketing employs its own strategies primarily for instance brandambassadors,mascots or other relevant and attractive symbols. These Symbols are "signs" created by humans to convey our ideas, intentions, and actions to others. They are arbitrary stand-ins for what they represent.Symbols, whether they be graphical, textual, or colorful — connote deeply held meanings down to a mythological level. They connect a lot with our primitive brains especially, they offer identity, recognition ,common shared values. They are the signs of the brand. Bollywood star or a cricketer become the face of a brand for they have a huge fan following and mammoth social acceptability . However real life heroes find a better connect in these virtually connected times we live in.

Nowadays the 'New age companies' are more interested in the 'new age consumers' and so we find a rise in the celebration of the real heroes. They seemingly have a sentimental and emotional connect to them.The moral and psychological impact that they do have on the minds of the crowds and especially the millennials is noteworthy. One such timeless classic is 'gandhi' today he is not a hero of Indian mass but has been accepted as a globular hero and influencer.Very few public figures are as popular and as well known to literally billions of people around the world as Mohandas Karamchand Gandhi (1869 - 1948).There is no doubt to the fact that Gandhi today is one of the most 'acceptable Indian ' across the world. There is surely a 'evocative power' in the most famous pictures/statues of Gandhi that immediately not only recalls the era in which he lived, but also distinctly reminds of the words and deeds that made him so memorable.

Einstein's remark about him in July 1944,

"Generations to come, it may be, will scarcely believe that such a one as this ever in flesh and blood walked upon this earth"

Boldly speaks of his unparalleled popularity .The appellation, Mahatma, very well expresses the veneration in which he was held by his countrymen. Some hagiographical enthusiasts bring out Gandhian cult in the Hindu pantheon. Gandhi's unique place in Modern India's imagination, despite the scarcity of cinematographic representation, is best conveyed by a study of his image in modern literature, in English as well as in Indian vernacular languages.Premchand in his novel Premashram (ashram of love), the central character Prem Shankar is an alias of Gandhi.For cartoonists world over, Gandhi's bald head,Mickey mouse ears, his walking sticks, pair of round spectacles, sandals, shawl wrapped around him, have become a part of Gandhian image.In his close circle of friends and followers he was generally called Bapu or father, which had an altogether different connotation. On the other hand his political rivals considered him nothing more than a political figure. 'British Anthropologist, Emma Tarlo has remarked that the external appearance of a mature Gandhi, so idiosyncratic in the Indian context of the time, was a continuous and deliberate process of self-definition and construction.'

No matter , how occult his personality was , the very mention of the name of 'Gandhi' is bound to earn some goodwill for India. Gandhi himself was very good at using symbols: he did not leave any stones unturned , each of his gestures , apparel's and postures were geared towards carrying across a strict message to all irrespective of language or culture from which they hailed. Indian public, which was then mostly illiterate and being a part of pre dominantly oral and visual culture , responded very well to this Gandhian art. However ,Gandhi in his early days was never this way.He seemed to have gradually absorb the sensitive close link that existed between clothes, national identity and social status and then displayed the art explicitly well.For instance as a mark of his manifestation of grief, for miners killed during satyagraha, Gandhi presented himself, head shaven, dressed only in dhoti developing

an spectacular publicists eye.

The building of the Gandhian brand having high moral standing, practicing of Brahmacharya, performing of the humblest job of cleaning latrines had commenced in the 1930s and the 40s, post civil disobedience movement era; evidencing humongous expansion after his lifetime in the the post-independent India. It is evident Through a variety of interpretive representations of Gandhi: in form of postal stamps, currency notes, sign posts, statues and more importantly in khadi he was the perfect ,infallible 3 and the most convincing leader ever , who through 'the sheer magic of his philosophies inspired the masses and threw the British out of India'. The set of iconic pictures that has become more closely identifiable with his life, have almost been packaged and re-packaged,produced and reproduced over the ages to appeal to the common mass. Whether it is the portrait of the Mahatma beside his cherished spinning wheel or his portrait while mediating or the quick march with volunteers to break salt law at Dandi in 1930. Moreover his personal items of use like his spectacles, walking-stick,charkha have also become easily marketable global symbols. Thus ensuring a quick, convenient, easy to put together,globally accepted assurance giving the brand an instant air of seemingly effortless righteousness.

The evident testimony of which was a recent popularity check between brands like lux ,Colgate and Brand Gandhi conducted across 200 countries ,Gandhi was known to roughly 183 nations while as popularity of lux and Colgate was limited to 25 nations only. In another research conducted Over the last 12 months, Brand Gandhi was pitted against brands such as Pepsi, Coke, Lux and Colgate. Google Insight threw up interesting results- "The number of web searches for Gandhi whitewashed the others by almost 10:1."

SOME other highlights of his esteem unaffected by the international man-made boundaries are the 'three-hour walk from Temple Underground Station to South Africa House in London' called the Gandhi walk, and the international political diaspora. His teachings were adopted by Nelson Mandela, the South African freedom fighter and the former South African president De Klerk.

Martin Luther King Jr. influenced by Gandhis principle said, "...If humanity is to progress, Gandhi is inescapable. He lived, thought, acted and inspired by the vision of humanity evolving towards a world of peace and harmony.

" BarackObama, the former US President, finds Mahatma Gandhi as an *"inspiration and has a portrait of the apostle of peace in his office."* The Burmese leader,Aung San Suu Kyi, was under house arrest for many years, she found Gandhi as her source of Inspiration. From Gandhi she learnt that for a doctrine of peace and reconciliation to be translated into practice, fearlessness is all that is required. In fact, from Dalai Lama to Desmond Tutu and from Martin Luther King to Nelson Mandela, Mahatma Gandhi sets to inspire several world leaders, perceived by each in an unique way.

Thus,Gandhi inspires both 'guilt' and 'ethical strength'.He was not carried on the shoulders of any definite ideology.He is therefore continuously 4 reinvented according to the needs and fashions of the times and this reinvention has been going on incessantly. However what draws my attention here is that in this 'post-truth' world where we continuously symbolise Gandhi, are we truly sticking to the ideology he professed or blinded by the resurgence in 'Brand Gandhi' we are establishing a oxymoronic existence of the 'after life' Gandhi of the Neo liberal world.

Basic Economic policies of M K Gandhi

He is one of the pioneers of interdisciplinary approach to economics. In his thought , economics cannot be separated from health, health cannot be separated from sanitation, and sanitation cannot be isolated from nutritious food, etc.They are irreplaceable and inseparable units of human growth.

He highlighted six basic pillars of Economics

1 Swadeshi, 2. Mechanisation, 3. Industrialization

4. Trusteeship, 5. Villagism, 6. Decentralisation

Few of the pillars are discussed below

Industrialisation

He believed that Industrialisation leads to maximum

exploitation of man and nature. He argued that Industrialisation is based on large scale and highly sophisticated technology leads to unemployment, poverty, urbanization, deforestation, desertification, environment degradation. Discrimination, oppression and exploitation were the fruits of extensive Capitalism for him. "Machinery creates a Pareto optimum situation in the sense that it improves the economic conditions of a few at the cost of many unfortunate rural people leaving them unemployed and exploited."-Prajakta Desai(Economic impact of Gandhi's model)

Gandhi held the view that there is enough in this world to feed all. However, there is poverty and deprivation because one group of people wrongly captures over the resources that is for all. He believed that largescale industries make people lazy and ensured accumulation of wealth in hands of few; Thus making it an evil. " Business without ethical considerations was fundamentally evil". -MK Gandhi

Gandhi strongly believed in the ethics of hard work and that everyone is entitled to take from the system only as much as he is capable of producing.

Self-sufficient Village Economy:

Gandhi believed that for attaining smooth development of the economy, it is imperative to develop all the regions of the country simultaneously, including the Villages that do form the heart of India . He aspired producing all the goods and services necessary for the village members within the village.

According to him 'if every village distributes its surplus produce to the poor villagers the problems of poverty and starvation in India can be combated easily. Moreover it will make our villagers self-reliant and happy and would enable them to practise the moral good of hard work.' He was affirmed that Agricultural sector alone cannot solve the problems of rural poverty and unemployment, making it necessary to give equal importance on the growth of the rural industries like khadi(developed into popular symbol of nationalism and patriotism, in post independent India), handlooms, sericulture and handicrafts.

He supported 'production by mass' rather than 'mass production'. In line with Gandhi's dream of expanding village industries, industrial policy resolutions of 1948, 1956 and 1977 were specially favourable for the development of small scale and village industries. These industries are labour-intensive and capital saving. In the post-reform period, khadi and village industries play an important part in providing employment opportunities especially to the disadvantaged groups.These industries had spread in about 2,50,000 villages out of total 5,81,000 villages of India in 1997-98. Thus, the Gandhian economics is of the view that every man should strive to increase his personal income by using the existing natural and human resources fully in an eco-friendly manner. It professed professed decentralised economy to the Indian masses to come out to vicious trap of poverty and unemployment. Gandhi also started the movement 'Sarvodaya' sought to combat the problems of class conflict, unemployment and poverty attempting to preserve the lifestyle and values of rural Indians, which were eroding with the advent of industrialization and modernization.Moreover, Sympathising the poor , he urged the 6 capitalists and the rich to consider themselves as trustees of society and use their wealth for greater good.

Resurgence of "BRAND GANDHI" in the neo-liberal world

In less than six decades after his assassination, the icon of India's Independence has moved beyond road signs, statues and artists' strokes to a modern and digital image.

Gandhi today can be easily spotted all around ;on the advertisement ,as the brand ambassadors of huge multinational cooperate industries, on big screen movies starring dynamic stars, the tees of youngsters, the 'Gandhi cap',walls of almost all Government offices, local 'chowks' and above all on our national currency. He has been emailed in 'remix generation psyche' .

'Brand gandhi' in consultation with Tushar Gandhi(great grandson of M.K Gandhi)was recently seen on the nip of German super brand 'Mount Blanc'. The reason for which stated by the brand was "white gold it is crafted from evokes the purity of Gandhi's ideals and the thread motif that entwines it recalls the spindle much

time working to produce his swadeshi yarn." 241 pens of this kind were made, for the 241 miles of the Dandi March, and 6,000 cheaper fountain pens and rollerballs were also made in a similar way. These 241 luxury pens costed around INR 11 lakh each. Just to cite the profit made out of it realise the figures given below by a blog of Economic Times.

" At the launch of the Gandhi Limited Edition (LE) pen in September of this year, Lutz Bethge, the CEO of Mont Blanc handed over a cheque for Euros 101,000 (over Rs 70 lakh) to Tushar Gandhi. In addition, Entrack, Mont Blanc's local partner committed to giving Rs 10,000 from each sale of the Memorial Edition pen, and Rs 50,000 from each Retail Edition." —Can the Mahatma be used as a marketing machine? The Economic times November 18, 2009 Assuming that all pens are sold , the company will have an income of INR 7 crore .however this advertisement Olickal caused company a lot of trouble, costing it a court trial. The Swiss luxury brand had to face a bench of Justice Raman and Justice C N Ramachandran Nair against PIL filed by DijoKappan stating that it violates the provisions of Emblems and Names (Prevention of Improper Use) Act, 1950, at the Kerala High Court.

Submissive of which the brand had to submit an affidavit 'the limited edition pen, will not be sold until 7 any further orders', the company also issued an "unconditional" apology for hurting the sentiments of citizens, "if" any.

In a counter affidavit filed by Marc Frisanco, (one of its authorised signatory) the company did not fail in putting up its charitable and high moral figure by it claiming that 'they have a long history of supporting charitable causes as well as the heritage and importance of iconic historical figures from art and culture to world leaders in different platforms.' They also stated that they are Donating USD nine lakh to charitable institutions in India especially those recommended by Gandhi's great grandson Tushar Gandhi.' Ironically the company in its statement upheld that 'they had no intention of using Gandhi's name or picture as part of the trade'(the validity of which, I certainly doubt).

The next mega brand that wanted to use Bapu for the campaign

is "Audi" Planned only for Spain they justified the use of Bapu's image in the campaign stating that 'long-lasting untarnished image of Mahatma Gandhi' that they wanted Audi to be identified with.' However the campaign was dropped midway for some untold reasons. In the 1990s, US-based Apple used Gandhi's meditating image to launch its Macintosh range of computers."In the black-and-white photograph from Apples 1997 Think Different campaign, Mohandas Karamchand Gandhi looks striking in his bare white loincloth and shawl, silhouetted prominently against the cold bleak background. A couple of white men behind him in dark suits jostle for attention with a small Apple logo on the top right-hand corner of the frame." Mahatma Gandhi is still the father of all brands in India Economic Times; 16 Aug, 2009.

Italian Telecom giant , 'Italia' commercial using Gandhi's image helped it grab Mezzo Minuto Doro (considered the Italian advertising Oscar prize.) 8 Many movies also did not fail to earn huge profits from it for instance ;Sanjay Dutt-starrer 'Lage Raho Munnabhai' in 2006 was an huge hit on the big screen actor demystifying the ideologies of the 'Father of the Nation' with "Gandhigiri". "Gandhi" 1982 movie by Richard Attenborough won as many as 8 oscar prize, out of 11 nominations it made for the event, apart from more than 20 other prizes that it made . The 'New England Brewing company' in 2015 used Bapus image on its Beer cans . In 2005 an Australian takeaway firm called 'Handi Gandhi' used Bapu'sname , ostensibly the one of the items the firm sold was beef . Many such restaurants be it in Reykjavik(capital of Iceland) ,Downtown Manhattan can be easily spotted.(Needless to highlight beer and Beef , are the articles of which he 'relentlessly campaigned against'.) Even politically we have seen the use of brand 'gandhi' over the time again and again in global politics and specially in India.

Global leaders like *Martin Luther king or Barack Obama have used his name to establish a huge social connect* .

They greatly seemed to have been influenced by gandhipersonally.Indian politics seems to have been incomplete without the 'Brand gandhi', Gandhi caps, since ages our political

thinkers felt it relevant to associate a lot of events somewhere inspired by politics with gandhi.

Various schemes like MGNREGA (Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act) , Mahatma Gandhi Pravasi Suraksha Yojana or the recent 'Swachh Bharat Abhiyaan' felt it judicious to associate itself with brand gandhi. The depth of which can be understood by the fact that some political parties flaunt their 'close connection' with Mahatma Gandhi.

Apple(whose market cap ($1 trillion) makes it larger than the GDP of each of 183 out of the 199 countries for which the World Bank has GDP data) ,Audi,Mount Blanc, New England Brewing company and the list of such huge market tycoons have (or have attempted to) employed gandhi for their own profits . This has been a known marketing strategy to marketise the brands in face of a convincing man .What's ironical here is despite being a wonderful writer Gandhi would have probably never used a pen costing INR 11 lakh, despite travelling for 241 miles on foot he would have probably never bought a car above INR 50 lakhs or would have cherished his unparalleled achievements over a can of beer. The above companies are a product of uncompromised capitalism ,a '-ism' probably for which he did not stand for. Instead as stated above he considered them all as the root of all material and moral evil and degradation. Uprightness of association of a man who laid a complete stress on 'self-sufficient' economy ,symbolised khadi and charkha as the symbols of Indian independence and considered having liquor as 'almost 9 committing suicide' to such mechanised dynamos who are the 'drivers' capitalist economy is remarkably strange .

Reult

"Schooled in self-discipline, Gandhi's life was a continuous process of evolution and growth." He was a man of high disciplines and had distinctly clear ideologies like those of 'sarvodaya', 'satyagraha', 'ahimsa' and 'antodaya'.Using him as a brand and considering him as a patron because of his universal acceptance and ability to touch deeper chords of humanity is indeed paying him a much deserved tribute .But doing the same by contradicting

his own ideologies is baffling .

"If branding appears to offer us our innermost selves in a pre-planned package, then Gandhian publicity demands of a public culture that they not allow themselves to be lulled by selective identifications but rather take responsibility for the ideological complicities of their desires."

-Mazzarella professor from University of Chicago.

Gandhi will undoubtedly forever remain live in hearts of people from all walks of life ranging from layman to the influential giants like playwright George Bernard Shaw, technician Steve Jobs, physician Albert Einstein, musician John Lennon , leaders like Dalai Lama, Nelson Mandela, Barack Obama, Aung San Suu Kyi etc; but in a world that never fails to produce and reproduce theories in its pursuit, its important to dissect the ideological preferences of the ones alluded are aligned to the ones alluding.

References

1. *From Absolute to the Ordinary: Imaging Brand Gandhi By Suryakant Nath*
2. *The Economic Times :Can the Mahatma be used as a marketing machine? November 18, 2009.*
3. *Economic Times: Economic impact of Gandhi's models By Prajakta Desai & Sunil Sonawane*
4. *Little magazine gandhi after gandhiAshisNandy*
5. *Mahatma Gandhi is still the father of all brands in India By John Sarkar and Monica Behera 2009*
6. *Gandhi: The brand the world flaunts! SatrujitMoitra 2013 'Gandhi Marg', Volume 38, Number 2, July-September 2016*
7. *Different faces of Mahatma Gandhi in modern advertising 02 Oct 2013*
8. *Mahatma Gandhi the ultimate Brand ? – Gandhi and Mont Blanc Posted on November 30, 2009 .*
9. *'India today' : Gandhi lives on in luxury brands & tees : Published on oct2 2009*
10. *Mahatma Gandhi's economic beliefs that are still relevant Business today oct 2 2018 Mahatma*
11. *Gandhi : Is it time for resurgence of Brand Gandhi?*

Manglam-Year 12(02) Vol.XXIII, Aug.2021
ISSN-0976-8149, P.- 26-34

Evalution Of Bengali Literature : An Overview On Eminent Writers

Dr.Shardha Mishra*

Abstract

The literature of India is very fruitful .There are number of eminent writers and scholars in Indian Literature.It is full of geners in literature.These genres of literature are in different languages .Literature in Bengali languages is one of them . The period of Bangali Literature has been divided into three parts – Ancient Period,Middle period and Modern Period.The ancient period has been started from 950 AD 1350 AD, medieval period from 1350 to 1800AD and modern period from1800 to the present age. Many great poets,writers & novelist has been seen in Bengali Literature. My present paper is based upon evolution of Bengali Literature and focusses upon the eminent writers of this period & their works.The famous and popular Bangali posts,writers,story – teller and playwrights are Rabindra NathTagore,Ishwar Chandra Vidya Sagaris also credited for Bangali Literature,Bangali alphabets .He simplified Bangali typography into twelve vowels and fourty consonents.Ishwar Chand Vidya Sagar was also known for key figure of Bangali Renaissance.Michael Madhusudan Dutt,Bihari Lal Chakraborty,Sanjiv Chattopadhya etc..Rabindra Nath Tagore was the first Bangali Poet,writer,story – teller and playwright.

KEY WORDS: Bengali Literature,Bangali Renaissance & Literary Writings.

It is true that Literature is the mirror of society.There are different types of literature to us.Just as -American Literature,Indian Literature,African Literature ,British Literature,Canadian Literature ,Bangali Literature etc.It is depend on our choice what we choose for our work.Just as in a garden different types of flower ,one may choose rose another may be Lily.In the same way here I choose Bangali Literature for my research work.

Bangal is the part from Bangladesh. Bankim Chandra Chattopadhya is known as the father ofBangali Literature.Bangali Literature has been divided into three periodsancient period (650-1200) ,medieval period (1200– 1800) and modern period from1800 to the present era. During this period a lot of work has been done during this time period of Bangali LiteratureMostly the litrary works of Bangali Literature was represent in Bangali

****Assistant Professor Dept. Of English K.D.B.Degree College Farrukhabad (U.P.)***

Languages.Bangali language covers the period of thousand and three years.The best example of ancient Bangali Language is-Charyapade is one of the earliest work,written in Bangali language.It is a collection from Buddhist mystic song.Which was written during the period of 10th and 11th century, written in Bangali Language.Next work is Shrikrishna Kirtana was written in new style in early period. Here we find the majority of Hindu Writers and theirwork.Thousands of work has been written and translated into different languages.Charyapada was written in 8th to 10thcentury.C.E.Charyapada is a collection of work .There are fifty to fifty one songs in this collection but only 46 songs are available.[1]

ShreekrishnaKirtana is one of the best example for the best work of this period in Bangali Language.,which is a Kavya.It was written by Both Candidas.Shri Krishna Kirtana was written in 13 parts.It depicts the romantic relationship of Radha and Krishna-

They are-Padavali by Vidyapati

Padavali of Chandidas, Chaitanya Mangal of Jayanda

Chaitanya Mangal of Lochan Dad, Chaitanya Charitamrita

Chaitanya Charitamrita is one of the best work of his time.This work is the main resource of for Vaishnava theology.It is divided into threeparts-Adi Lila, Madhya Lila and Antya Lila

On the other hand Muslim text also written in this period.The best example of Muslim text is Alavl.aInspite of the Eastern script work Bangali writer has been written on different scripts such as-Perso Arabic and sylhetiNagri.

In this period number of popularpoets and writers and novelist.Rabindra Nath Tagore,Ishwar Chandra Vidyasagar and Toru Dutt was the most popular writers of Bangali Literature. Rabindra Nath Tagore was a great poet,and novelist of his time .Like Words Worth he was also a great poet of nature,for him nature is a bliss,a solitude and calm of mind.When he was in the lap of naturehe was happy and gay,he wants to stay there and spent some time with nature.His love for nature is passionate.He loves various objects of nature.In his poem he presents the discription of honey bees,thorn,trees,flowers,clouds,birdssongs,flowers, fountain,mountain,sea and stream etc.The following descriptions

is from Gitangali's XLVIII song. In which he presents the beautiful picture of nature,birds and surroundings,

■"The morning sea of silence broke into ripples of birds songs,and the flowers were all merry by the roadside; and the wealth of Gold was scattered through the rift of the clouds while we busily went on our way and paid no need."[3]

In this way Tagore's poetry is enriched with picturesque and sensuousdescription.He feels that nature is alive . According to him nature is the creation of God.We all are the creation of God and Nature.ln his poem Gitanjali song no.5 he wrote,

■"Today the summer has come at my windows with it's sighs and murmurs;And the bees are playing their minstrelsy at the court of the flowering Grove."[4]

According to him both nature and man are one.Like William Words Worth he feels spiritual pleasure in nature.

Like other nature poet Tagore was also a lover of nature,he feels happy with the natural objects like, mountain,hill,,singing birds ,humour and charity.

C.Paul. Verghes writes,"The main features of Tagore's lyrical poetry it's humanistic essence combined with a spirituality, a love of nature and man and the expression of the beauty and splendour of the earth. The poets spiritual message does,not ,however , enjoin on us to run away from the "first and feverof life. And seek shelter in a Hermitage,but insists on our full participation in the joys and sorrows of life . In one of his lyrics, for instance God Tells The World – be – aesthetic who is getting ready to give up his home in search of his God :"Why does my servant wander to seek me, forsaking me .

He was a poet as well as Playwrights the best example of his play is ""Mukta Dhara".In Mukta Dhara the character of Abhijeet the Yuvraj is the imbodiment of sacrifics. He was foundling at Mukta Dhara and accidentally made the Yuvraj friend of Uttrakut,but when the secret is revealed to reject the king of the king of Uttrakut,he could not continue his soft corner for the Prince.Prince Abhijeet was not a greedy soul.The temptation of Princehood could

not abstain him from his mission of life . He was born at 'Mukta Dhara' and he lived for the welfare of the people of Shiv Tarai . So the lurking pain in a hard heart was how to set the water of the Mukta Dhara free for the purpose of the cultivation of land.

Abhijeet is never haughty or arrogent.On the other hand he is meek..Worldly wealth ,the pomp of the royal house and the show of royal family do not attract him.As an adopted son of the king he lost his claim to the throne for the common welfare of the people of Shiv Tarai. He feels much releaved that he belongs hto the entire world. He has a soft corner for the helpless and needy Abhijeet proclaims,"

- "So I have openeda road by which food may freely come and go.Icannot bear to see a
- poverty that depends on charity."[5]

Abhijeet is never crual and unjust like his father King Ranjeet .When there is a famine he throws open the Mandi Pass Road and helps the wool trade of 'Shiv Tarai'to flourish ,to helpthe people of Shiv Tarai. He faces the anger of the King and the people of Uttrakut.As a lover of humanity he hated none. His mind is never narrowed,by the consiperations of race and community. He considers himself the citizen of the world. The young Prince is bold and fearless.So he does not care for the opposition and wrath of his Forster father Ranjeet .

The most selected features of his character is his love for humanity . Due to his composition outlook,his heart is filled with sympathy for the poor,the helpless and downtrodden . He does not keep the people terrorizedwhen he is thrown into the prison by the orders of the King Ranjeet,he was not moved the least and remains fearless,tolrent and firm from beginning to theend . It appears as if he was made to suffer and he sacrifics his life on the altar of Mukta Dhara.King Vishavjeet informs him about the danger to life,he wants to take the prince to Mohangarh for the safety of his life.But Yuvraj humbly ,refuses to act like a coward.He is bold enough to face the ordeal of his life.Thus like a man of strong will and and firm determination he is ready to face the odds and ends that stand in the way of Mukta Dhara.During the conversation with Sanjay he

makes it clear that what is dated to him by God at Mukta Dhara,he will be happy to do it . Abhijeetsays to Sanjay,

- ”Somewhere or the other in the eternal world,God writes the secret mystery of every men,’s spirit.And that Mukta Dhara God’s word to him.”[6]

Far the sake of common welfare and the people of Shiv Tarai ,he swears to undo the same at all.We come to know that he stands immorable like a rock in his decision.Nothing stops him from doing so,not even death.Thus herules over the heart of the people and for his selfless service and sympathy he becomes the darling of millions.Abhijeet thinks thatMukta Dhara is his nurse and it is his pious duty to set her free.He goes all alone to the crackage of the dam.He is to swept away and and sleeps for ever into his watery grave.Mukta Dhara takes him into her lap for the suffering humanity.When. he dies the people of Uttrakut and Shiv Tarai weep for him and he dies with weepings, honour and sympathy.In the concluding part of the play the speech of Sanjay is noteworthy.It described the epilogue of his life:

- “He(eAbhijeet) has somehow found week spot.There he struck.The Minister machine struck . him back. Then Mukta Dhara like a mother,took up his wounded body in her arms,and carried him away”.[7]

This in Muktadhara the character of Abhijeet is the symbol truth &virtue.He is the true symbol truth sacrifice s and humanitarianism.The greatness of human spirit makes him a Superman under the mercy of mighty’Bhairav’.His human spiritsurvive over the inhuman designs of Bibhooti .

She started her career as a poetess . The first edition of her work -A Sheaf Gleaned in French Fields was published in 1876, French book . Her popular poem Our Casuarina Tree , in which Toru Dutt becomes autobiographical . She presents the beautiful discription of tree and her childhood . When she passed her time under this tree with her. Brother and sister . So in this poem she use to see through the window and revives her memories. She writes a number of books like As Summer in Calcutta Ancient Ballads and Legends of Hindustan, and A Sheaf Gleaned in French Fields

Hindu Literature: Comprising.

Ishwar Chandra Vidya Sagar was a great personality in Bangali Literature.we can call him the Piller of Bangali. He Contributed his many articles in journals , newspapers and advocating as a social reformer. His greatest contribution was seen for the welfare of women .He raise his voice against women harressment . He always tried to made them powerful . He was always in the favour of women's Empowerment. He favoured women for re-marriage . In 1956 he took part in the window re-marriage which was performed in Calcutta .

Contribution of Ishwar Chandra Vidyasagar

1. Pre-marriage Of Women Widow
2. Emphasis on women education,(Education of women and widow education.
3. In 1849 he started first school for girls education in Calcutta.
4. He was known as the contributor of Bangali Language.
5. In Sanskrit College he introduced Western thought.

In the field of literature because lots of best work has been done in this period like-Michael Madhusudan Dutt's best work and his first epic Tillottma Sambhab Kabya was the first Bangali poem which was written in1860.Vande Matram which is our national song was taken from Anand Math and written by Bankim Chandra Chatterji in 1882.In 1880 Hindu scripture like Bhagbat Gita and the problems of Krishnan was described in Dharmatattva and Krishna.

Modern period has been divided into six phases:that are-1800-1860,1860-1900,the phase of Rabindra Math Tagore from 1890-1930,and post-Rabindra Nath phase from 1900 to 1947,and from 1947 to 1970.Michael Madhusudan Dutt,Bankim Chandra Chatterji,Romesh Chandra Dutt,Mir Mosharraf Hossain,Girish Chandra Ghosh etc.were the prominent playwrights of their time. Akshay Kumar Boral and Ramendra Sunder Trivedi are famous essay writers.In them Bankim Chandra Chatterji wrote Vandematram.Now which is our national song, written in Anandmath(1882),He was considered as a best novelist.

Bangali Renaissance

Renaissance means revival of learning and human understanding.It is like the light of knowledge out of the darkness and ignorance of the middle ages.It is neither an excident or incident but it is definitely aProfessor.No definite date May be fixed for the beginning of the Renaissance but it is said to have started from nineteenth century to the early twentieth century.

This movement was called Bangali Renaissance because there was a great change in social, political, cultural & psychological during early 19thcentury. At that time there were two sides – British Officials &Missionaries and another side was Hindus.

Bangali Renaissance was a social, cultural, psychological and intellectual changes in Bengal . Renaissance was started in Bengal during 19th century to 20th century . It was dominated in Bengal by Hindus. It was started in Bengal during the time period of Raja Ram Mohan Rai and Rabindra Nath Tagore . British Indian Empire.It takes place with Raja Ram Mohan Ray (1772-1833) and Rabindra Nath Tagore,who was the writer of"Jan Gan Man".Renaissance was a revolt against a human orthodoxy.It was a revival of human thought and feeling in the field of knowledge.

During Bangali Renaissance a lot of work has been done in the field of science and art.Bangali scientists are- Satyendra Math Bose,Anil Kumar JainPrasananta Chandra,Gopal Chandra Bhattacharya,Janendra Nath Mukherjee,Jagadish Chandra Bose,etc.

Bangali Renaissance was also a art movement . It was flourished through out the India in in the early 20th century . This movement was associated with the Indian National Movement . Rabindra Nath Tagore was a great painter of this period who paint through his words and best ideas that was related to Indian Nationalism .

According to Submit Sarkar,"19th century Bangali religious and social reforms, scholars, litrary Giants, journalists patriotic orators and scientists were revered and regarded with nostalgia in the early 1970s, however,a more critical view emerged."[10]

So Bangali Renaissance was a movement of art, science, cultural, psychological , which was florished through out the British

India . Bangal Renaissance was florished about early 20th century .. Rabindra Nath Tagore also belongs to this period . He was the only person who leads such a British Indian Movement. He was a great poet and playwrights of Indian Writing in English and he was a writer of our national anthem,JAN GAN MAN . He was awarded Nobel prize for Literature in 1913.

To conclude we can say that Bangali Literature is full of ganers and worksof Many great poets, playwrights,writers, novelist of Bangali Literatureare belongs to this period and by contributed their work enriched Bangali Rabindra Nath Tagore who who was a great poet and playwrights of his time enriched Bangali Literature and actively participated in Bangali Renaissance . He was the only person who leads such a British Indian Movement. In Bangali Renaissance social, cultural, psychological, intellectual growth were seen.The notions and ideas of people were changed.Ishwar Chandra Vidhya Sagar,Toru Dutt,Raja Ram Mohan Rai, Rabindra Nath Tagore,Bihari Lal Chakraberty,Sukumar Sen,Sanjiv Chattopadhya , Narayan Gangopadhya,,Suchitra Bhatt ,S Navneeta,Michael Madhusudan Duttetc. are the eminentwriters of early 19th and 20th century ,provide us a fruitful genre to Bangali Literature by their great effort, sacrifice and contribution enriched our Bangali Literature by translating it into different languages.

So in all the three periods in which Bangali Literature is divided -Ancient,medival and modern.

References

1. *Naik M.K. AHistory of Indian English,New Delhi, Sahitya Akademi -1995*
2. *Das.Harihar: "Classical Tradition of Your Duty's Poetry",Asiatic Review(Oct 1931),PP.6-14.*
3. *Gitangali'by Tagore'sRabindraNath,Narain's Kumar Satish ,pub. By Lakshmi Narayan Agarwal.Page no. -16*
4. *Gitangali by Tagore Rabindra Nath, Narain's Kumar Satish,pub.by -Lakshmi Narayan Agarwal,page-2*
5. *Mukta Dhara. By Tagore Rabindra Nath,Narain's Kumar Satish,pub. by-Lakshmi Narayan Agarwal. P.no.7*
6. *ibid.11*

7. *ibid.15*
8. *Dwivedi,A.N. Toru Dutt.New Delhi:Arnold -Heinemann,1977.*
9. *Sen,Sukumar,Jawahar Lal Nehru ,"History of Bangali Literature"Sahitya Akademi,New Delhi.*
10. *Vaish,Y.N:"Toru Dutt" The Modern Review(Dec.1966)pp.436-439.*
11. *A Sheaf Gleaned in French Fields by Your Dutt ,2nd ed.Bhowanipore:Saptahik Samvad press, 1878*
12. *The Poetic Achievements Of Toru Dutt by Dr.Agrawal K.A.,Haridwar,Kitab Mahal,pub.by.Kitab Mahal,15,Thornbill Road,Allahabad,printed by-Eagle Ofset.Printers,Allahabad,first edition,1982,printed by,Eagle Offset Printers Allahabad.*
13. *Ancient Balladsand Legends of Hindustan.London:Megan Paul,1882.Two editions have come outso far,one edited by Dr.A.N.Jha (Allahabad :Kitani stan,1941)and the by Dr.A.N. Dwivedi(Bareilly :Pradesh Book Depot,1976)*
14. *University English Literature written by Trivedi D.P.,publisher Kanpur publishing Home.Pandu Nagar,Kanpur-5*
15. *The Background of english Literature by Herbert Garrison,Penguin Books,in Association with Chatro and Hindus first published by Chatro and Hindus 1925 published in Peregrine Books 1962.*
16. *A Scene from Contemporary History.The Bengal Magazine,Dec.1874*
17. *Iyengar,K.R.S.Indian Contribution to English Literature.Bombay:Karnataka Publishing House,1945.*
18. *Iyengar,K.R.S Indian Writing In English.Bombay:Asia Publishing House,1973.*
19. *Mukherjee,Kali pada:"Aru Dutt and Her Work,The Calcutta Review,XLIII(April-June 1932),197-204*
20. *Essays(two).The Bengal Magazine,Dec.1874.*
21. *Kotoky,P.C.:Indo-English Poetry.Gauhati : The Uni.Publication Dept.,1969.*
22. *Macnicol,Margaret:Poems By Indian Women.Calcutta:Y.M.C.A.Press & London:O.U.P.,1923.*

Manglam-Year 12(02) Vol.XXIII, Aug.2021
ISSN-0976-8149, P.- 35-43

Constitutional Provisions Towards Child Labour in India

Dr. S.K. Rai *

The child labour is wide spread phenomenon. It can be witnessed in one form or another all over the world since ancient days. However, the genesis of modern concept of a child labour lies in the industrial revolution which emerged in the middle of eighteenth century in England and in 19th century in India. The problem became more acute and incurable with the sweeping wave of industrialization engulfing child further and blooming human buds had been nibbled by exploiting hands.

In the-industrial era, children were required to work in home or field either as in assisting hand to elder members of the family or as money earner. Thus, there were no social taboos to their working along with their parents and it was accepted that child wood learns skills from his parents and thus get prepared for the adult world. The industrial revolution brought about fundamental change in the mode of production with concomitant change in relation of production. Today the child labour is the fact of modern life. Though, the labour was not so acute a problem in the old society, legislative protection had to be given to the children who are employed in different walk of type and are exploited. To protect children from adverse effect of employment specially on their physical and mental development, several laws have been made in india. However, it is a debatable question whether such laws have been able to combat fully or partially the exploitation of child labour. Let us examine this expect in some detail.

Constitutional Provisions

The survey of the statute book reveals that few states relating to the children were in acted even during the pre-independence era. After independence however, the state has become fully conscious of its responsibilities towards children's. Consequently, the consciousness is reflected in some of the constitutional

* *Associate Professor Faculty of Law, B.S.A. College, Mathura (U.P.)*

provisions made for protecting the rights and well-being of children. India's abiding interest in the welfare of children is an expression of the countries commitment to the welfare of single most popular group, a commitment enshrined in the permeable and various other articles of the constitution.

The framers of the Indian constitution were fully aware of the problem of the child labour and they incorporated some provisions to prohibit child labour in part III and IV of constitution dealing with fundamental rights and directive principles of state policy.

Fundamental rights of working children under Indian

Constitution: - The fundamental rights which are expressly provided for children in Article 15,21A, 23 and 24.

Article 15[3] of the constitution empowers the state to make special provision for the advancement of women and children. The framers of the constitution were fully aware that women and children need special care and treatment because of their particular position in the Indian society.

Article 15[3] which is viewed as an exception to article 15[1] of the constitution becomes another fact of the equality principle through creative judicial interpretation. Therefore the state is under a constitutional mandate to make laws for the advancement of women and children.

The constitution (Eighty sixth Amendment) Act,2002 inserted Article 21A in the constitution of India to provide free and compulsory education to all children in the age group of six to fourteen years as a fundamental right in such a manner as the state may, by law, determine.

Article 23 prohibits the traffic in human beings and forced labour in all its forms. Article 23 is another prominent article which creates rights to a person against exploitation and prohibits traffic in human being as beggar and other similar forms of forced labour.

The terms "traffic in human beings" includes traffic in women and children for immoral purposes. The term 'forced labour' which is present in article 23 is having a wide spread meaning under

modern welfare set up of the constitution of India. It says that one should not be forced to do any service and if any person is made to render any service against his will under forced circumstances like economic necessity for survival, such labour is called as forced labour. The consequence may confine such person to rendering forced labour as a bonded laborer, but state can impose compulsory service for public purposes without making any discrimination on grounds of religion, race, caste, class or any of them.

Article 24 of constitution of India provides the most relevant provision which is directly connected to employment of child workers. This article prohibits employment of child below the age of 14 years in any factory or mines or in any other hazardous employment. It clearly shows that the constitution recognizes child labour in nonhazardous employment. Moreover, the constitution does not define the term hazardous employment, therefore it created a lot of ambiguity to the legislature and judiciary in defining the term hazardous employment to prohibit child labour. In result, many hazardous employments are left from the prohibition of child labour. Until the ***Asiad workers case***the construction work was not included in the list of hazardous employment. In the instant case the Supreme Court seriously directed the state government so as to include the construction work in the list of hazardous employment. Therefore, it can be pointed out that article 24 partially prohibits child labour. It does not create an absolute bar to employment of children. So an Act to prohibit the engagement of children in certain employments and to regulate the condition of work of children in certain other employment was enacted by the parliament in 1986 named child labour prohibition and regulation act 1986. The act of 1986 states its objective as under:-

1- Prohibition of child labour in certain occupations
2- Regulation of the conditions of workers in permissible occupation, and
3- Obtaining uniformity in the identification of child in various cases relating to child labour.

The act of 1986 contains 4 parts and the schedules. The first part deals with preliminary and definition of various terms. The

second parts deals with prohibition of employment of children in certain occupation and processes, the third part deals with the regulation of conditions of work oh children and the fourth of the act deals with miscellaneous matters and appointment of inspectors etc.

The basic aim of this enactments is to prohibit the engagement of children in certain employment and regulates the conduct of the employers of child workers in such a way that these poor creatures are not exploited any more. Efforts have been made to prescribe and regulate the following matters concerning child labour:-

1- The minimum age for employment
2- Number of working hours for child workers
3- Food facilities
4- Rest hours
5- Medical facilities
6- Entertainment hours
7- Schedule of weekly, monthly and yearly holidays of child workers
8- Minimum wage and mode of payment, etc.

The employers of child workers have been directed to carry out these rules in strict sense. Penalty can even be imposed on those employers who violate the provisions of these legislations.

Directive principles of state policy for working children

The directive principle of state policy for the child welfare is to fix certain social and economic goal for immediate attainment by bringing about nonviolent social revolutions. Under part IV of the constitution of India, several valuable provisions are enshrined for the protection of child workers. This part of the constitution imposes duty upon the state to fallow the directives both in the matter of administration of justice as well as in the making of laws. The directives are embodied in aims and objects of the welfare state under the republican constitution.

Directive principles under Indian constitution fix certain

social and economic goals for immediate attainment as to get better social transformation. Child welfare to be also achieved through these their principle is the part of this social revolution. There are some direct and express provisions. -

Article 39(e) and (f) say that the state shall in particular direct its policy toward securing the health and strength of workers, men and women and the tender age of children are not abused and that citizens are not forced by economic necessity to enter association unsuited to their age and strength.

Article 45 direct that the state shall endeavor to provide within a period of 10 years from the commencement of this constitution for free and compulsory education for all children until they complete the age of 14 years.

Beside these express provisions, there are certain provisions in the directive principles which have indirect bearing upon the child welfare. For instance, Article 39 provides that the state shall strive to promote the welfare of the people by securing and protecting as effectively as it may at social order in which justice, social, economic and political, shall informal the institutions of national life. Naturally an effective implementation of this principle resulting in promoting the welfare of the people through social, economic and political justice is expected to promote proportionately, the child welfare also.

Article 41 requires that the state shall within the limit of its economic capabilities and development make effective provisions for securing, inter alia, the right to education. The implementation of this provision is also expected to promote the welfare of the children proportionately.

Article 42 expected that state must make provision for securing just and human condition of work and for maternity relief. The measures for maternity relief are meant for expectant mothers during the period of pregnancy and also after the child births such measures are sure to promote the health of children and provide healthy psychological environment for them during the significant period of their bringing up.

Article 45 direct to make a provision fo compulsory

education to children. Under article 45 a duty is imposed upon the state to provide free and compulsory education within a period of 10 years of the commencement of the constitution of all the children until they complete the age of 14 years. This directive signifies that it is not only confined to primary education but extended to free education whatever it may be up to the age of 14 years. This article is most appreciable since it aims at reforming children with compulsory education. It tries to eradicate illiteracy from the childhood itself. If all the poor children are provided at least such minimum education, no doubt it could create renaissance in the poor message of working classes.

Article 46 provides that the state shall promote with the economic interest of the weaker sections of the people and in particular of the scheduled casts and scheduled tribes and shall protect them from social injustice and all form of exploitation. The implementation of this principle while promoting the economic and educational interest of the weaker section of the people particularly those of scheduled casts and scheduled tribes, will indirectly promote the welfare of the children of these weaker sections- scheduled casts and scheduled tribes. The children of this section of the society need the welfare measures most because of the appalling poverty provide and backwardness of their parents.

Article 47 imposes a primary duty upon the state to raise the level of nutrition and the stander of living of its people and the improvement of public health. Thus, it is the responsibility of the state nutritious food to the children as the word people include not only adults but children as well and perhaps this provision become more relevant in the case of children as the malnutrition can causes irreparable damage to the personality of the child through mental retardation and blindness. Thus, the constitutional imperatives are distributive justice for the welfare of children and they can be summarized as under:-

a. To protect them from exploitation.
b. To maintain them decently where the parents abandon them or fail to look after them.
c. To abolish child employment in hazardous concerns.

d. To provide them education.

e. To protect their health.

f. To provide nutritious food, etc.

A brief discussion of the constitutional mandates and different enactment dealing with child labour reveals that only a few statutes relating to children were enacted during the pre independence era. Since independence however, the state has become fully conscious of its welfare functions and of its responsibility towards children and consequently had codified a number of enactments in consonance with the directive principles of the state policy as enshrined in the constitution of India and various conventions and recommendations. The central and state governments have also adopted various measures for the betterment and welfare of children. Nevertheless, the child labour is increasing day by day indicating black spot, ambiguities and deficiencies in the present legislative measures. Sum of the deficiencies may be pointed out as under:-

1- In effective Implementation- The implementation of child labour laws in our country is very ineffective. The main reason of this are:-

1- Lack of adequate enforcement machinery and

On the other hand, the parents on account of ignorance and poverty obtain false age and medical certificates to get their children engaged in work. Here also if the certifying surgeons are sincere to their profession and duties, they may refuse to give such false certificate with a view to save children from exploitation.

2- Inadequate penal provisions

The penalties under the legislations dealing with prohibition and regulation of child labour are not adequate except as provide under factories act. The penal provisions have become only paper tigers. For an industrialist, occupiers, employers or the management of an industrial organization, a fine of rupees 500 or rupees 1000 is nothing. Because of liberal penal provisions, the tendency among the employers is to flout the legal provisions deliberately.

3- Non-coverage of unorganized sector

The legislations regulating child labour do not cover unorganized sectors like agriculture, glass industry, family undertakings and urban informal sectors.

4- Lack of educational institutions

The proper educational institutions are not within easy reach of children. Education has also become so costly that it has become beyond the reach of common poor masses. Furthermore, the education is not job oriented and also not compulsory to devoid of any incentives.

5- Unorganized child labour force

Child workers are unorganized and, hence, are unable to fight for their betterment or against misuse of their tender age.

6- Growing population rate

Growing population plays a dominant role in the supply of child labour.

7-Prevalence of rampant corruption in government machinery

The most industrialists are of the view that there is no reason to worry about the government machinery because they can easily bribe the labour officers who visit the work place. Moreover, they get advance notice of the visit of the officers. The labour officers on their part state that they dare not to prosecute many industrialists because of their political clout.

The complete abolition of child labour and prior regulation thereof in accordance with the statutory provision is the cherished and prime objective of the civilized society. Government should take, therefore, sincerely all appropriate legislative, administrative, social and educational measures to eradicate the problem of child labour and to ensure implementation of law regulating child labour within the frame work of constitutional directives and UN convention on the rights of the child. It can be, therefore, concluded that constitution of India is provided with various provisions to render yeoman service to safeguard the wellbeing of the children and to protect them against abuse and exploitation so that they could become useful citizen of the country.

At last, the government of India put a full stop to this discussion by bringing in light the *The child labour amendment act, 2016* which eradicates the barrier between hazardous & non-hazardous occupations and restricts child labour completely.

References

1. *Regulation of child labour ; the liar, 1979 P.201.*
2. *State of kerala VS N.M. Thomas, AIR 1976, SC 490.*
3. *Article 23*
4. *AIR 1953 CAL. 522-524 (DB)AIR 1959 ALL.570-62.*
5. *Article 23(1)*
6. *Article 23(2)*
7. *Article 24 enacts: No child below the age of 14 years shall be employed to in any factory or mines or engaged in any other hazardous imployment.*
8. *People Union for Democratic Rights Vs. Union of India and others, AIR 1982 SC 1473.*
9. *Hedge K.S. 'The directive principle of state policy in the constitution of India'(1972).*
10. *Keshwa Nand Bharti Vs State of Kerla (1973) 4 SCC 225.*
11. *AIR 1966 Punj.16(2) AIR 1968 All.14(16)*
12. *Sudesh kumar Sharma; Child and the constitution: An appraisal in distributive justice perspective, SCJ 1989.Vol. 2 May- Agust.*
13. *W. Ferandes, current comment- child labour act,1986. Social action vol.37, 1987 p.75 cited by miss y. vishnupriya 1991 lab. Ic p.124.*

Manglam-Year 12(02) Vol.XXIII, Aug.2021
ISSN-0976-8149, P.- 44-52

Omkara- The Ultimate Solution To Salvation

Owandrila Roy*

Abstract

Veda is acknowledged as the first written documentation in human history. Therefore Veda is classified into four divisions- Samhitas,Brahmans, Aranyakas and Upanishads. The prime purpose of Veda is to know the divine and achieve the efficiency to identify the omnipresent within every soul. Realising the true form of the Brahmana, one could abolish all the miseries and misdeeds by following the path of Brahmana. The Paramatma or Brahmana is none other than Omkara-

.....परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः।

Thus many scriptures define the Omkara as Brahmana and describes into various aspects. Moreover Om is the name of formless God that many yogis like to contemplate upon. According to vedas Om is the seed of the whole creation and it is also the sound of the creation. The significance of Omkara still can be found relevant in the modern era both physical and spiritual perspectives.

Introduction

Veda is mainly focused on the manifestation of knowledge within every soul. Only 'Trikaldarshi Rishi' can absorb this supreme knowledge in his mind and transfers this wisdom to his obedient disciples. The main focus of Veda is to discover the omnipotent which is traditionally called as 'Brahmana' or 'Paramatma'.The Vedas provide holistic approach for the salvation of one's sins in a supernatural manner.Sayanacharya expresses the same feelings while giving the defination of Veda –

''इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः[1]।

The knowledge of Brahmana is hidden in the sacred books of veda and only by the help of guru a true devotee can uplift himself and realise the eternal form of Brahmana. In many scriptures the 'Paramatma' is also addressed as Om. In **'KathaUpanishad'** the Om letter is acknowledged as the 'Brahmana'-

***Reseach Scholar, Department of Sanskrit, Pali And Prakrit Visva- Bharati University, West Bangal**

''एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।[2]

The"**Taittiriya Up anishad"** also refers 'Brahmana' as the devine Om kara- ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्।''[3]

Therefore Om is the name of formless God and this whole universe is pervaded by the sound of Om.It is also known as 'Omkara', 'Pranava', 'Brahmaksara', 'Sabdabrahman', 'Nadabrahman'. The Pranava is the source and controller of life as it is the sound of the divine and the divinity itself. The goal which all the vedas expound,which all austerities declare and desiring which devotees resort to 'Brahmacharya/ is Omkara-

''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचयं चरन्ति तते पद संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।[4]

Om is a letter, a word. It is also a sound or resonance. There are three sounds in Om which are known as Mâtrâ. They are 'a' , 'u' and 'm' . When 'a' and 'u' merge, they form 'o'. And when 'm' gets placed alongside this 'o' , it forms 'Om' –

''सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रां पादा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।।[5]

Even phonetically the sounds are in order of fully open mouth, partially closed mouth and completely closed mouth.The sound of Pranava is a combination of 'a' , 'u' and 'm'. These three sounds when uttered together, form the sound Om.The sounds 'a' and 'u' when merged together form the sound 'o' and this process is called as 'Guna Sandhi' in Sanskrit Grammar. It is not just because of this grammar rule, it is natural to produce the sound 'O' while mixing 'a' and 'u' together.No matter what his mother tongue is, when one opens his mouth to speak it is the sound 'a' that comes out naturally from his mouth. Among the letters of the alphabets Lord Krishna refered himself as the letter 'a'- ''अछराणामकोरोऽस्मि...।''[6]

In several contexts of Vedas the 'Paramatma' is described with four feet to express the ubiquity of 'Brahmana'- ''सर्व ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात्।''[7]

In this case the three feet of 'paramatma' is described as the 'Sthula Sharira', 'Sukshma Sharira' and 'Karana-Sharira'. One who is defined as the universe as well as the 'Purusha', is considered as

'Vaishvanara'. This 'Universal or Cosmic man' is the first foot of Brahmana-

''जागरितस्थानोवहिष्प्रज्ञःसप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः।।''[8]

It's noteworthy to know that the first matra of Om,'a' matra is also extended all over the universe.In **'Aitareya Aranyaka'** the letter 'a' is represented as the whole language itself –

''अकारोवैसर्वावासक्।''[9]

Thus the 'a' matra and 'Vaishvanara' become indifferent and the first letter of Omkara is considered as the first foot of Brahmana.The possesor of the 'Sukshma Jagata', the 'Hiranyagarbha' is acknowledged as the second foot of 'Brahmana'. It's need to be noted that the wisdom of 'Hiranyagarbha' is more manifested than the knowledge of 'Vaishvanara'. This is the reason 'Hiranyagarbha' is recognised as 'Taijasa'[10] and the unity of the second letter of Om, 'u' mâtrâ and 'Taijasa' indicates that 'u' is the second foot of Brahmana-

''स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञःसत्पाङ्ग एकोनाविंशतिमुखःप्रविवित्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः।''[11]

Therefore the 'm' in Omkara consists of the 'ma' 'dhatu' which means the measurement. This is the last letter in Om which reflects the ultimate journey. During the utterance of Om, 'a' matra merges into 'u' matra and the 'u' matra merges into 'm' matra.It is considered as the third foot of 'Brahmana'[12]as the 'm' matra and 'Prajna' is considered as the same unit. As both the two mâtrâs merges into the 'm' matra, one who worship the third matra is the knower of the entire universe. By worshiping the 'm' matra, one can realise the true significance of the 'Brahmana' and thus it abolish the requirements of outward sight and the 'Brahmana' and the worshipper become indifferent-

''सुषुप्तस्थानःप्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्राा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वाइदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं[13]

According to **'Mandukya Upanishad'**, the waking state (Vaishvanara) is expressed by 'a', the first matra of Om. The entire dream state (Taijasa) is expressed by the 'u' matra and the experience of deep sleep state (Prajna) is expressed by 'm' matra. The entire universe is God himself and waking,dreaming, deep sleep

states form the entire universe and the symbol of these three states represent by 'a' , 'u' and 'm' respectively. And after uttering, when one closes his mouth, only the sound 'm' is heard. And when he brings his lips close to each other and keeps his mouth half open, half closed- at such a time the natural sound that can be heard is 'u'. Thus all the sounds of all languages, be they vowels or consonants, they are all contained in Omkara. That's why Omkara is an unique, universal sound –''गिरामस्म्येकमाक्षरम् ।''[14]

The way only a true jeweller can evaluate a stone whether it is precious or not, similarly Om is also a gem and only a true devotee can understand the hidden worth of Omkara. Even those who regularly chant Om are unable to realise it's real worth, it's mystery. Perhaps that is why in order to explain the importance of Om a wonderful story narrated in 'Skanda Purana' about the ancient Indian sages and the saga of the meaning of Om. Once kartikeya,the son of Lord Shiva asked the Prajapati Brahma if he could answer his questions whatever he asked. After agreeing to answer his questions Kartikeya wished to know the meaning of Om and the purpost of Om. Being unanswered Kartikeya imprisoned Brahma and then Lord Shiva came to rescue him. After knowing the situation Shiva asked Kartikeya if he could tell him the meaning of Om. For that Kartikeya demands to be the Guru of his own father. To signify the higher position of Guru, Lord Shiva lifted the young Kartikeya on to his shoulder. And then in the ear of Lord Shiva, Lord Kartikeya explained the meaning of the Pranava Mantra Om. Kartikeya explained that the entire creation is contained in Om. This is the essence and also the secret of Om that the Devatas' Commander-in-chief Kartikeya narrated to Pashupati Shiva and thus the Devatas and human learn the significance of Omkara. Even Lord Krishna repeatedly addresses himself as Pranavah and Omkara in 'Bhagavad Gita' to emphasis the significance of the sound Omkara-''रसोऽइमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौसषं नृषु।।''[15] In **'Atharvasikha Upanishad'** Omkara, the form of AUM, is explained as 'Brahmana' himself, representing the trinity of Gods, namely Brahma, Vishnu and Shiva in the form of the three syllables 'a' , 'u' and 'm'. There are other believes that the symbol of Om represents the face of Ganapati and some other believes that the Omkara

represents the body of divine mother, Shakti."Omkara representing the face of Ganapati". "Omkara representing the body of devinemother,Shakti"

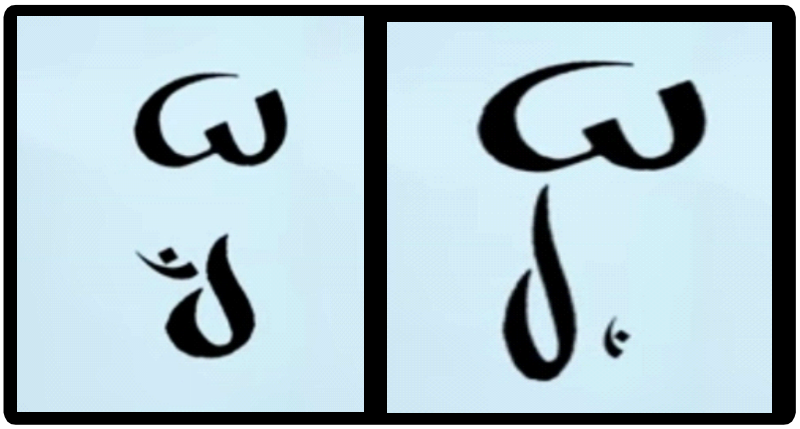

Pic.-1 (face of Ganapati) **Pic.-2 (Body of devine mother,Shakti)**

All of these arguments can be acceptable because Om is the sound of the divine – the reverberates within the human body and in the same way across all over creation. Om is not just a sound or vibration.It is the whatever we can see,touch,hear and feel- whatever within our perception and whatever beyond our perception.That's how Om indicates everything which was in existence, which is in existence, which will be in existence and moreover which is beyond all –

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूत भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।
यच्चान्यत् त्रिाकालातीतं तदप्योङ्कार एवं।।[16]

The significance of Omkara, has mentioned in so many scriptures from Patanjali's 'Yoga Sutras' to 'Bhagavad Gita' and Upanishads.Every scripture oriented with Omkara speaks about empowering our own capabilities to access the source of creation that is within ourselves. The most obvious signals of life within the body is breath which is known as PranaVayu. Prana can be roughly translated as life and the source of life Prana is nothing but 'Pranava'.This life force manifests itself as the aspects of creation, maintenance and destruction within human bodyand It is the core

of our every existence - ''ओंकारएवेदं सर्वम्।''[17]

The intellectual knows that this world is attainable by the Rik mantras, the intermediate spaceis achievable by the Yajur mantras, the 'Braham Loka' is reached by the Sama mantras. The enlightened man attains that threefold world only through Om alone; and through Om as an aid, he reaches the supreme reality that is quiet and beyond age, death and fear-

''ऋग्भिरेतं यजुभिरन्तरिक्षं सामभिर्यतत्कावयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्येति विद्वान्यत्त्वच्छान्तमजरममृतमभयं पर चेति।।[18]

This same knowledge is expressed in **'Chandogya Upanishad'**, **'Brihadaranyaka Upanishad'**, **'Swetaswatara Upanishad'** and many others scriptures. In fact the **'Atharvasikha Upanishad'**attempts to answer such questions as how to meditate, what to meditate and on whom to meditate, with specific emphasis on the syllable AUM, its meaning and significance.According to **'Atharvasikha Upanishad'** meditation has to be done mainly on the single letter Om. It itself is the mantra for meditation. The four legs of that mantra are the four devas and the four Vedas. The letter has to be recognized as the 'Para Brahmana', the ultimate reality and meditated upon.In his 'Yoga Sutras', Patanjali says the sound that denotes God or Iswara is Pranavah-''तस्यवाचकःप्रणवः।''[19]

Moreover Om is a metaphor for the earth and the universe and all within it including the souls of Atma of every living being and all the incarnations of one God, the omniscient unknowable,'Brahmana'. The beginning of the universe starts from the Om and after completing it's ultimate journey again merge into Om –

''ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादायपूर्णमेवावशिष्यते।।[20]

The significance of Omkara is still pertinent from Vedic age to modern era and that's why it is still granted as the savior of salvation. The symbol of Om is used by various shapes from one region to another.In the modern era many religions like Sikhism, Jainism, Budhism as well as Hinduism use different symbols to show the idea of Omkara in their own way. Here is a chart that reflects the symbol of Om in different communities and religions

–

Symbol of Omkara in different communities and regions

The symbol of Om can be found all over the country however and almost always present on Hindu temples and other places of worship and can be seen imprinted on the palms on Hindu murtis, statues and images of deities and sometimes on the maditating hand of the Budha and also found at Buddhist holy places. Besides the religious significance, the Omkara also played very important role in maditation still nowadays. The regular chanting of Omkara with meditation significantly reduces mental stress which is very important issue in modern times.

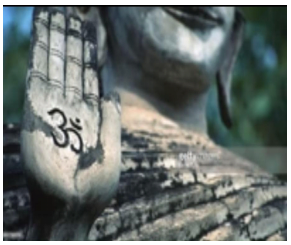

Presence of Omkara in modern era

Om is also known as 'Pranava' which refers the devine and this is why almost all the mantras and Vedic prayers always begin with Om, i.e. **"Om namah Shivay","Om namah bhagavate** vasudevaya" and others.''ॐ मणि पद्मे हूँ''[21] A is one of the sacred

mantras among Buddhists that consists of the devine Omkara. Om is also used as a greeting in daily life till today, i.e. "Hari Om." Even in Rajasthan the whole building have been built in the shape of Om which is the first Yoga Universityin the shape of Om.

विश्व में पहली ॐ आकार की योग यूनिवर्सिटी इस साल होगी शुरू

Yoga University shaped in Om – Pali, Rajasthan

These initiatives emphasis that the significance of Om will be reamain perpetual from ages to ages and knowing the spiritual aspects of Pranava,chanting of Om is the one and only way to start the journey towards enlightenment on the wheel of Samsara –

''वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतं शरीरम्।

ऊँ क्रतो स्मर कृत स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर।।।[22]

Foot Note

1. Rigveda Bhashya Bhumika.
2. Katha Upanishad, 1.2.16
3. Taittiriya Upanishad,1.8.1
4. Katha Upanishad, 1.2.15
5. Mandukya Upanishad, Mantra- 8
6. Gita, Chapter- 10, verse -33
7. MandukyaUpanishad,Mantra-2
8. MandukyaUpanishad,Mantra-3
9. Aitareya Aranyaka, 2.3.6.
10. ''ज्योतिश्चरणाभिधानात्'', Brahma Sutras, 1.1.24
11. MandukyaUpanishad,Mantra- 4
12. MandukyaUpanishad,Mantra- 5
13. MandukyaUpanishad,Mantra-11

14. Gita, Chapter- 10, verse -25
15. Gita, Chapter-7,verse-8
16. Mandukya Upanishad, Mantra-1
17. ChhandogyaUpanishad, 2.2.3
18. Prasna Upanishad, 5.5
19. Yoga Sutra, 1.27
20. Isha Upanishad, Shanti Mantra.
21. https://wikipedis.org
22. Isha Upanishad, Mantra- 17

References Books

1. *Easwaran,Eknath(2007),The Upanishads,NilgiriPress,2007*
2. *James,W.,Varieties of Religious Experience, NewYork 2004; Barnes&Noble Books. Joshi,K. Glimpses of Vedic Literature.NewDelhi:MaharshiSandipani Rastriya Veda VedaPrathisthan.2001*
3. *Muller,Fridrich Max ,The Upanishads Sacred books of the East The Upanishads,Friedrich Max Muller,Oxford University Press 1900*
4. *Olivelle,Patrick,Upanishads,Oxford University Press,1998*
5. *Ranade,R.D.,A constructive survey of Upanishadic philosophy,Bharatiya Vidya Bhavan 1926*
6. *Vireswarananda Swami,Brahma Sutras, Advaita Ashrama Mayavati.*
7. *Sareen,S.K. and Paranjape,M.(eds) ,sabda.Text and Interpretation in Indian Thought.NewDelhi:Mantra Books. 2004*
8. *Sen,Sris Chandra ,"Vedic Literature and Upanishads",The Mystic Philosophy of the Uoanishads,General Printers & Publishers 1937*
9. *Upanishad Granthavali,Ed. By Swami Gambhirananda, UdbodhanKaryalaya,1962*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-53-61

भारत में संसदीय बनाम अध्यक्षीय लोकतंत्र : एक विवेचन

डॉ० मुकेश कुमार वर्मा *

सारांश

भारतीय राजव्यवस्था के समक्ष अवतरित कतिपय संकटों के कारण कुछ विद्वानों का विचार है की भारत में संसदीय व्यवस्था पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। उनका मानना है कि संसदीय व्यवस्था की मौजूदा कमियों का समाधान अध्यक्षीय व्यवस्था अपनाये जाने से ही हो सभंव है। उनके अनुसार भारत की संसदीय व्यवस्था में व्याप्त विविध व्याधियां संसदीय व्यवस्था पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करती हैं। भारत में संसदीय व्यवस्था के स्थान पर अध्यक्षीय व्यवस्था अपनाने के संभावित लाभों को इंगित करते हुए कहा गया है की इससे राजनीतिक अस्थायित्व का अंत होगा तथा अनिवार्य रूप से जनादेश के आधार पर सरकार का निर्माण किया जा सकेगा,किन्तु राष्ट्रपति प्रणाली को लेकर भी अनेक आशंकाएंहैं। आज आवश्यक है की संसदीय शासन व्यवस्था में सुविचारित एवं गंभीर सुधारों से इसके दोषों पर नियंत्रण पाने का प्रयास किया जावे।

संकेताक्षर –संसदीय लोकतंत्र, अध्यक्षीय लोकतंत्र, राष्ट्रपति प्रणाली, संविधान आदि।

राष्ट्र के उदय एवं विकास के लिये देश की राजनीतिक व्यवस्था द्वारा राष्ट्रीय दृष्टि को बढ़ावा देने केसाथ–साथ राजनीतिक व्यवस्था मेंनिष्पक्षता एंव जनसहभागिता को सुनिश्चित व प्रोत्साहित किया जाना चाहिये क्योंकि जब राष्ट्र दूरदर्शी होता है, जब इसके नागरिकों को प्रयासों का निष्पक्षता से फल मिलता है और जब उनको शासन में भाग लेने के अवसर होते हैं, तभी वास्तविक अर्थों मे राष्ट्र का उदय एव विकास होता है। इसीलिये 1947 के स्वतंत्रता अधिनियम के द्वारा केंद्र एवं राज्यों के लियेउ त्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई थी और जब संविधान बनाने के लिये संविधान सभा आमंत्रित की गयी, तब अधिकांश सदस्यों ने संसदीय लोकतान्त्रिक सरकार का समर्थन किया। ऐसा करना स्वाभाविक भी था क्योंकि संविधान सभा के अधिकांश सदस्य संसदीय लोकतांत्रिकसरकार के क्रियान्वयन से भली भांति परिचित थे। यह सत्य है की अध्यक्षीय लोकतंत्र के समर्थन में भी सुझाव प्रस्तुत किये गए थे, किन्तु वे अस्वीकृत कर दिए गये। फिर भी अध्यक्षीय लोकतंत्र की कुछ विशेषताओं को अवश्य स्वीकारक कर लिया गया था। ऐसा निर्णय देश के ऐतिहासिक, संवैधानिक और राजनीतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में किया गया था।

विदित है कि, भारत का संविधानन ब्रिटेन की संसद से हासिल हुआ है और न ही यह किसी धर्म संहिता पर आधारित है। भारत के लोगों के संकल्प की प्रतिनिधि संप्रभु संविधान सभा ने संविधान का निर्माण किया है जिसकी प्रस्तावना ने राष्ट्र के आगे की

**असिस्टेण्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर (राजस्थान)*

दिशा तय की। संविधान सभा ने देश के लोगों, जन–प्रतिनिधियों और संस्थाओं को ऐसे राष्ट्र निर्माण का दायित्व सौंपा जिसमें प्रत्येक नागरिक को "न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भातश्त्व" की गारंटी हो। इन्हीं लक्ष्यों को हासिल करने के लिए संविधान सभा में गहन चिंतन–मनन एवं विचार–विमर्श के बाद संसदीय व्यवस्था को चुना गया। यद्यपि इस सन्दर्भ में संविधान सभा के समक्ष उन्मुक्त बाजार उदार लोकतंत्र, केंद्रीकृत राष्ट्रपति प्रणाली, साम्यवाद का बेहद मोहक रोमांटिक विचार, फेबियन समाजवाद आदि कई तरह के प्रतिमान और प्रारूप उपलब्ध थे परन्तु अंततः संविधानसभा ने सामाजिक–आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन के क्रांतिकारी लक्ष्य वाली संसदीय प्रणाली का ही चुनाव किया।

भारत में संसदीय लोकतंत्र

वस्तुतः यह कहना आसान है कि संसदीय व्यवस्था औपनिवेशिक शासकों की वेस्ट मिनिस्टर प्रणाली की ही स्वाभाविक परिणति है, लेकिन यह इतना सरल भी नहीं था। भारत में वैदिक कालीन गणराज्यों, स्वशासी संस्थाओं और प्रतिनिधिक विमर्श संस्थाओं के अनुभव प्रारम्भ से ही फलते–फूलते रहें हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में प्रतिनिधित्व वाली राजव्यवस्था का अनुभव छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व से सन 400 ईस्वी के लिच्छिवी, कपिलवस्तु, पावा, कुशीनारा, मिथिला और कोलांगागण राज्यों का रहा है। इन गण राज्यों की सभा, समितियां और गणपति ही वर्तमान में क्रमशः संसद, मंत्रिमंडल और प्रधानमंत्री के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हैं जो "धर्म" से बंधे थे। धर्म, जिसे वर्तमान समय के कानून का शासन, सीमित प्रशासन और संवैधानिक व्यवस्था का पर्याय माना जा सकता है। सातवीं सदी में इस्लामी आक्रमण और उसके बाद ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौर में सत्ता का यह प्रतिनिधिक चरित्र समाप्त हो गया मगर ग्राम सभा और पंचायतें ग्रामीण स्तर पर काम करती रहीं। अतः संविधान निर्माताओं के मनोमस्तिष्क में संसदीय प्रणाली की सरकार के चयन में प्राचीन भारत की भूतपूर्व संसदीय परंपराओं का भी प्रभाव रहा है।

संविधान सभा के सभापति राजेंद्र प्रसाद और प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर थे, जिनके नेतृत्व में संसद भवन के सेंट्रल हॉल मे ग्यारह सत्रों में 2साल, 11 माह और 18 दिन किस घनचर्चा के बाद उभरते भारत के लिए एक आदर्श संविधान तैयार हुआ। संविधान सभा के सदस्यों ने इस संविधान में सरकार की संसदीय प्रणाली का चयन किया क्यों कि यह भारत के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से अधिक कार गर थी। इसका चयन करते वक्त संविधान निर्माताओं ने स्थायित्व की जगह जवाब देही को अधिक महत्व दिया। संविधान सभा में डॉ. अंबेडकर ने कहा था, "जवाबदेही की रोजाना समीक्षा की व्यवस्था अमेरिकी व्यवस्था में नहीं है लेकिन भारत में नियत अवधि के बाद आकलन से यह अधिक कारगर और जरूरी समझी गईहै। "संविधानसभा के विमर्शों से निष्कर्श निकलता है कि भारत में संसदीय प्रणाली की सरकार के चयन का मुख्य कारण विभिन्न समूहों के हितों का प्रतिनिधित्व और सरकार की ब्रिटिश प्रणाली

के कामकाज से बेहतर परिचय रहा है। संविधान निर्माताओं की संसदीय प्रणाली को अपनाने की अन्य वजह विधायिका और कार्यपालिका में टकराहट को रोकना भी था। उन्होंने एक ऐसी समन्वित व्यवस्था की संकल्पना की, जोदेश के नागरिकों के लिए पूरे सौहार्द के वातावरण में कार्य कर सके। साथ ही भारत विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों और संस्कृतियों के विभिन्न समूहों का राष्ट्र है जिसमें प्रत्येक की अपनी अलग राय है। इस खास वजह ने भी संविधान निर्माताओं को संसदीय लोकतंत्र को अपनाने के लिए प्रेरित किया, ताकि कोई भी आवाज दबाई न जा सके। संसद लोगों की इच्छा और आकांक्षाओं का प्रतीक है। ये 'इच्छाएं' और 'आकांक्षाएं' संसद के सदनों में बहस और तर्क–वितर्क के जरिए जाहिर होती है।

संक्षेप में, संसदीय प्रणाली लोकतांत्रिक शासनब व्यवस्था की वह प्रणाली है जिसमें कार्यपालिका अपनी लोकतांत्रिक वैधता विधायिका के माध्यम से प्राप्त करती है और विधायिका के प्रति उत्तरदायी भी होती है। इसमें कार्यपालिका और विधायिका एक–दूसरे से परस्पर संबंधित होतेहैं तथा इस प्रणाली में राज्य का राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री अलग–अलग व्यक्ति होते हैं। भारत की संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति नाम मात्र की कार्यपालिका है तथा प्रधानमंत्री एवं उसका मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिकाके रूप में कार्य करता है। संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री देश की शासन व्यवस्था का सर्वोच्च प्रधान होता है, हालाँकि संविधान के अनुसार राष्ट्र का सर्वोच्च प्रधान राष्ट्रपति होता है लेकिन देश की शासन व्यवस्था की बागडोर प्रधानमंत्री के हाथों में ही होतीहै। इसप्रणालीमेंलोकसभाचुनावमेंसर्वाधिक सीटोंपर जीत दर्जकरनेवाला राजनीतिक दल सरकार बनाता है। राष्ट्रपति, लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल के नेता को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करते हैं तथा राष्ट्रपति बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करते हैं और शेष मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर करते हैं। इसमें मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रतिसामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है तथा संसद का निम्न सदन अविश्वास प्रस्ताव पारित कर सरकारको बर्खास्त कर सकता है अर्थात जब तक सरकार को लोक सभा में बहुमत प्राप्त रहता है तभी तक सरकार को सदन में विश्वास प्राप्त रहता है। जैसा की प्रो. गार्नर के द्वारा दी गई परिभाषा से भी स्पष्ट होता है। प्रो. गार्नर के अनुसार, "संसदात्मक या मन्त्रिमण्डलात्मक शासन–प्रणाली वह प्रणाली है,जिसमें वास्तविक कार्यपालि का (मन्त्रिमण्डल) अपनी राजनीतिक नीतियों एवं कार्यों के लिए विधान मण्डल या उसके एक सदन (प्रायः लोकप्रिय सदन) के प्रतिप्रत्यक्ष तथा कानूनी रूप से और निर्वाचकों के प्रतिअन्तिम रूप से उत्तरदायी होती है, जबकि नाम मात्र की कार्यपालिका (राज्य का प्रमुख) अनुत्तर दायित्व की स्थिति में रहती है।"

भारत में संसदीय लोकतंत्र –उत्थान या पतन

पिछले दशकों में भारतीय संसद का उत्थान हुआ या पतन के प्रश्न के उत्तर के लिए भारतीय संसद के पिछले दशकों के क्रियाकलापों का गहन अध्ययन आवश्यक है

परन्तु यदि सरसरी निगाह से भी भारत की संसदीय व्यवस्था में निरंतर हो रहे परिवर्तनों का अवलोकन किया जाये तो भी उसका नकारात्मक उत्तर ही सामने आता है। अनेक विद्वानों ने भी संसद के क्रमिक पतन को निरंतर इंगित करने का प्रयास किया है परन्तु इस क॓लिए संविधान नहीं बल्कि स्वयंसंसद और संसद की कार्य–प्रणाली ही जिम्मेदार है। यूनानी दार्शनिक एवं राजनीतिक चिंतक प्लेटो ने कहा है कि राज्य ओंक के वृक्षों या चट्टानों से नहीं वरन् व्यक्तियों से बनता है। तात्पर्य यह है कि राज्य स्वयं मे व संचालित नहीं होता बल्कि व्यक्ति ही राज्य को दिशा देते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि शासन तो ढांचा उपलब्ध करवा सकता है,जबकि वास्तविक शासन देश के नेतृत्व एवं नागरिकों को करना होता है। नेतृत्व की कार्यशैली, कार्य संस्कृति और संवैधानिक मर्यादाओं की पालना शासन व्यवस्था को सफल या असफल बनाने का कार्य करती है। संविधान सभा की 25 नवंबर 1949 को सम्पन्न हुई अंतिम बैठक मे ंभारतीय संविधान के निर्माता डॉ.भीमराव अम्बेडकर द्वारा बोला गया का कथन यहां प्रासंगिक हो जाता है कि–संविधान चाहे कितना ही अच्छाक्यों न हो लेकिन यदि संविधान को अमल में लाने वाले लोग खराब निकले तो संविधान निश्चित रूप से खराब सिद्ध होगा दूसरी ओर यदि संविधान चाहे कितना ही खराब क्यों न हो लेकिन यदि संविधान को अमल में लाने वाले लोग अच्छे हों निश्चित ही संविधान अच्छा सिद्ध होगा।

भारत में संसदीय लोकतंत्र का विकल्प

भारत में संविधान के निर्माण के समय संविधान निर्मात्री सभा के समक्ष शासन व्यवस्था के प्रकार का चयन सबसे अधिक महत्व पूर्ण प्रश्नों में से था। संविधान निर्मात्री सभा के समक्ष तीन प्रकार की उत्तरदायी (लोकतंत्रात्मक) शासन प्रणालियों का विकल्प था–स्विस प्रकार की बहुल कार्यपालिका, अमेरीकी प्रकार की अध्यक्षीय शासन प्रणाली तथा ब्रिटिश प्रकार की संसदीय शासन व्यवस्था। सभा के गैर कांग्रेसी सदस्य विशेष तया अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य जिस प्रकार की शासन व्यवस्था चाहते थे। परन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी थे जिन्हें अमेरिकी प्रकार की शासन व्यवस्था पसंद थी। इन सदस्यों का कहना था की भारत को एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार की आवश्यकता है और यह केवल अध्यक्षात्मक कार्यपालिका के अंतर्गत ही संभव है। इन सदस्यों का एक तर्क यह भी था की स्वतंत्र भारत को एक नवीन प्रकार की कार्यपालिका से अपनी जीवन यात्रा आरम्भ करनी चाहिए और उसे दासता की समूची विरासत से अपने संबंध विच्छेद कर लेने चाहिए, किन्तु संविधान के अधिकांश सदस्य संसदीय लोकतंत्र के पक्ष में थे। अंततः संविधान सभा ने भारत की शासन प्रणाली के रूप में संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को ही अंगीकृत एवं आत्मसात किया।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की नवीन प्रवृति : संसदीय बनाम अध्यक्षीय लोकतंत्र

स्वतंत्रता के पश्चात के कालखंड का विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीतिकव्यवस्थाजड़ नहीं है अपितु इसमें समयानुकूल परिवर्तन होता

रहा है। भारतीय शासन एवं राजनीति के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्षों की जानकारी के साथ साथ राजनीतिक व्यवस्था की समसामयिक प्रवृतियों का भी अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक है। विगत दो दशकों में भारत की राजनीतिक व्यवस्था में अनेक नवीन प्रवृतियों का उदय हुआ है। जैसे–लोकतंत्र में आस्था एवं अवरोध, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर मिली जुली गठबंधन सरकारों के उभरते नवीन राजनीतिक समीकरण, राजनीति का अपराधीकरण, राजनीतिक दल व्यवस्था में बदलाव, न्यायपालिका बनाम व्यवस्थापिका, न्यायिक सक्रियता, सहयोगी संघवाद की अपरिहार्यता, जागरूक एवं परिपक्व मतदाता, समावेशी राजनीति का निरंतर बढ़ता हुआ महत्व आदि और इन्ही में है–संसदीय बनाम अध्यक्षीय लोकतंत्र।

संविधान सभा में जब संविधान का निर्माण किया जा रहा था तब यह मांग उठी थी कि अध्यक्षीय लोकतंत्र को स्वीकार कर लेना चाहिए। संसदीय और अध्यक्षीय लोकतंत्र के पक्ष विपक्ष के समर्थन पर पर्याप्त चर्चा हुई थी। प्रायः लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की अध्यक्षीय शासन प्रणाली में राज्य का प्रमुख (राष्ट्राध्यक्ष) सरकार (कार्यपालिका) का भी अध्यक्ष होताहै। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली मेंकार्यपालि का अपनी लोकतांत्रिक वैधता के लिये विधायिका पर निर्भर नहीं रहती है। इस प्रणाली में राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालिका प्रमुख होता है तथा कार्यपालिका और विधायिका एक–दूसरे से संबंधित नहीं होते हैं। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली या राष्ट्रपति शासन व्यवस्था में कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिये विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है, परिणाम स्वरूप कार्यपालिका निर्धारित समय तक अपना कार्य करती है। जिससे उसकी नीतियों मेंनिरंतरता बनी रहती है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है परिणाम स्वरूप लोकतंत्र के तीनों स्तंभों में एक–दूसरे का किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं होता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राष्ट्रपति के द्वारा अपनी कार्यपालिका के सदस्यों को नियुक्त किया जाता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका के सदस्यों का चुनाव लोकप्रियता, धनबल व बाहुबल के आधार पर नहीं होता है बल्कि उनकी विशेष ज्ञता के आधार पर होता है, जिससे राजनीति में अपराधी प्रवृत्ति के लोग नहीं पहुँच पाते हैं। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राष्ट्रपति व उसकी कार्यपालि का राजनीतिक दबाव और गठबंधन जैसी बाधाओं से मुक्त होती है। वह अपने निर्णय स्वयं करता है और उन्हें कार्यपालिका के माध्यम से कार्यान्वित करता है। डॉ. गार्नर के अनुसार, "अध्यक्षात्मक सरकार वह होती है जिसमें कार्यपालिका अर्थात् राज्य का अध्यक्ष तथा उसके मन्त्री अपनी अवधि के बारे में संविधान की दृष्टि से विधानमण्डल से स्वतन्त्र होते हैं और अपनी राजनीतिक नीतियों के सम्बन्ध में भी उसके प्रति अनुत्तर दायी होतेहैं।" यधपि भारत में राजनीतिक अस्थिरता व अन्य विभिन्न कारणों से कुछ विद्वानों ने अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का समर्थन किया था परन्तु लम्बी बहस एवं विचार विमर्श के पश्चात संविधान सभा ने अंततः संसदीय शासन प्रणाली को स्वीकार किया।

भारत में संसदीय लोकतंत्र : अनुभवात्मक त्रुटियां

भारत का शासन स्वतंत्रता प्राप्ति से संसदीय ढांचे की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के अंतर्गत संचालित हो रहा है परन्तु विगत कुछ वर्षों से देश की राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ हो रहा है उससे आम जनता का मनभारी क्षोभ, ग्लानि और एक विचित्र सी खिन्नता से भरता जा रहा है। सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन, राजनीतिक दलों के विघटन और आये दिन दल–बदल एवं सरकारों (केंद्र एवं राज्यों) के उलटे जाने के सन्दर्भ में जो एक प्रमुख संवैधानिक प्रश्न उठाया जा रहा है, वह है–क्या संसदीय प्रणाली भारत के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई है? वस्तुतः भारत की संसदीय प्रणाली मेंकईकमियांऔर संस्थानात्मक विकृतियां हैं,जिनका सम्बन्ध प्रायः देश में होने वाले विभिन्न आर्थिक–राजनीतिक संकटों से जोड़ा जाता रहा है। कतिपय प्रमुख त्रुटियां इस प्रकार हैं–

प्रथम,सशक्त एवं उत्तर दायी प्रतिपक्ष संसदीय व्यवस्था के संचालन की अनिवार्य शर्त है, किन्तु भारत में सशक्त प्रतिपक्ष का लम्बे समय तक निर्माणनहीं हो सका। संसदीय लोकतंत्र में परिवर्तन मतों के आधार पर होता है, किन्तु हमारे देश प्रतिपक्ष में बैठने वाले दलों का उद्देश्य सरकार कोअस्त व्यस्त करना और सम्पूर्ण राष्ट्रिय कार्यक्रमों को छिन्न भिन्न करके सत्ता हथियाना रहा है। **द्वितीय,**राजनीतिक दृष्टि से स्थिर सरकार को एक अच्छी सरकार माना जाता है, किन्तु भारत में राजनीतिक अस्थिरता और अनिर्णयता की बढ़ती हुई प्रवृति के कारण शक्तिशून्यता की स्थिति उत्पन्न होने लगी है परिणाम स्वरूप संसदीय व्यवस्था को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाने लगा है। **तृतीय,**संसद और राज्य विधान मंडलों की कार्यप्रणाली का गुणात्मक हास हुआ है, वादविवाद का स्तर घटा है। व्यक्तिगत दोषा रोपण और छिद्रान्वेषण की बढ़ती हुई प्रवृति के कारण संसदीय मंच का अवमूल्यन हुआ है। कई विधान सभाओं में अध्यक्षों ने दलीय पूर्ति का साधन बनकर अध्यक्षीय शासन की गरिमा तक ठेस पहुंचाई, जिससे संसदीय प्रणाली की अवमानना हुई है।

तथ्य यह है कि संसदीय व्यवस्था कि अपनी अंतर्निहित कमजोरियों और उनके साथ हमारी अपनी राजनीतिक संस्कृति तथा चारित्रिक कमजोरियों ने मिल कर अनवरत सत्ता राजनीति के ऐसे दुष्चक्र को जन्म दिया है जो हमे अव्यवस्था और कुशासन तथा इससे भी आगे बढ़कर अराजकता कि और ले जा रहाहै। यह डर अकारण नहीं है कि यदि सरकारें अपने अस्तित्व के लिए संसदीय बहुमत पर इसी तरह निर्भर रहीं तो देर सबेर राजनीतिक अस्थिरता के सम्मुखी न होना पड़े सकता है। अतः कोई ऐसी पद्ति निकालनी होगी जिसमें सरकार अर्थात कार्यपालिका कि एक अवधि सुनिश्चित हो–संसदीय बहुमत उसके पक्ष में हो या नहीं, लेकिन इसका मतलब यह नही है कि कार्यपालिका जनता कि प्रतिनिधि न रह जाये। इन जरूरतों का संकेत उस दिशा में विकास कि ओर है जहाँ शक्तियों का पृथक्करण ओर एक दूसरे को रोकने ओर टोकने का संतुलन बनाये रखने की स्थिति रहे तथा विधायिकाओ कार्यपालिका सीधे, किन्तु अलग अलग जना देश

प्राप्तकरें ओर कार्यावधि के लिये एक दूसरे पर निर्भर ना रहें। इस प्रारूप का शास्त्रीय उदाहरण अमरीकी संविधान है, जिसका रूपांतरित तथा संशोधित संस्करण फ्रांस में पांचवे गण राज्य में देखा जा सकताहै।

भारत के लिये अध्यक्षात्मक व्यवस्था का प्रतिमान : विकल्प

प्रसिद्ध संविधान शास्त्री नानीपालकी वाला ने लिखा है कि आवश्यक स्थिरता और दृढ़ता लाने तथा दलबदल जैसी प्रवृतियों को रोकने के लिये भारत में अमरी की ढंग कि राष्ट्रपतीय प्रणाली सब से सार्थक सिद्ध हो सकती है। भारत में अध्यक्षीय पद्दित अपनाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं–**प्रथम,** इस शासन प्रणाली में सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति एक निर्वाचित राष्ट्रपति में निहित होती है। राष्ट्रपति का कार्य काल निश्चित होता है और निश्चित समय से पूर्व विधायिका उसे सरलता से हटा नहीं सकती जिससे शासन में स्थायित्व आ जाता है। **द्वितीय,** इस शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति योग्यतम, विशेष तथा कुशल प्रशासकों को मंत्रिपदों पर नियुक्त करने में सुविधाजनक स्थिति में रहता है। उसे स्वतंत्रता रहती है कि अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों को विधान मंडल के बाहर के लोगों से भी चुन सकें। **तृतीय,**राष्ट्रपतीय व्यवस्था में मंत्रियों का निर्वाचन नहीं होता अतः उन्हें अपने पद पर बने रहने के लिये सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के साधन अपनाने कि आवश्यकता नहीं रहती। **चतुर्थ,** राष्ट्रपति के मंत्री प्रशासक होते हैं न कि पेशेवर राजनीतिज्ञ। उनका ध्येय अपने प्रशासनिक विभाग का दक्षता पूर्वक संचालन करना है, न कि दलगत राजनीति में अपनी शक्ति का दुरूपयोग करना। **पंचम,** इस शासन प्रणाली में दल बदल या दल विभाजन कि संभावना नहीं रहती, क्योंकि विधायिका के सदस्य जानते हैं कि दल बदल करने से मंत्रिपद प्राप्त करने कि संभावना नहीं रहती है। **षष्टम,** अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति के निर्वाचन के प्रश्न को लेकर राष्ट्रीय स्वरुप एवं दृष्टिकोण वाले दलों का विकास सहज हो जाता है। **सप्तम,** प्रशासन का सम्पूर्ण दायित्व राष्ट्रपति के कन्धों पर होने के कारण इस शासन प्रणाली में शीघ्र निर्णय लिये जा सकते हैं। संकट कालीन परिस्थतियों में भी तुलनात्मक दृष्टि से अध्यक्षात्म क सरकार अधिक सक्षम तथा प्रभावशाली होती है।

राष्ट्रपति प्रणाली के समर्थकों का मानना है की राष्ट्रपति पद्दति में देश को अधिक सशक्त, अधिक समर्थ, अधिक प्रभावी, अधिक अनुभवी शासन उपलब्ध होने की संभावना है परन्तु वे इस तथ्य से भी भली भांति परिचित हैं की इस पद्दति में शासित 90 प्रतिशत देशों में तानाशाही है और वे अलोकतांत्रिक है। इस प्रणाली में निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन की सारी संभावनाएं विधमान होती है। ये प्रणाली एक तरह से राष्ट्रपतियों की सनक पर चलती है। इस प्रणाली में राष्ट्रपति को सामान्य स्थिति में भी वे अधिकार प्राप्त रहते हैं जिनकी जरुरत आपातकाल में पड़ सकती है। राष्ट्रपति प्रणाली के संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति में शक्तियों के केन्द्रीकरण की यह प्रवृति अफ्रीकी और लैटिन अमरीका के कुछ देशों की घटनाओं से समझी जा सकती है। अनेक देशों में इस तरह के उदहारण मिलते हैं जहाँ राष्ट्रपति होने के बाद संविधान इस रूप में बदले गए जिससे सारे

अधिकार राष्ट्रपति में केंद्रित हो गये। आज इन देशों में किसी न किसी रूप में तानाशाही है। अतः वर्तमान संसदीय व्यवस्था को नष्ट करके नई व्यवस्था स्थापित कर लेने से भारतीय लोकतंत्र की समस्याएं हल नहीं हो सकती।

शोध

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय राज्य व्यवस्था के समक्ष अवतरित समसामयिक प्रवृतियों एवं कतिपय बहुमुखी संकटों के कारण कुछ विद्वानों का विचार है की भारत में संसदीय शासन व्यवस्था पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। उनका मानना है कि संसदीय शासन व्यवस्था की मौजूदा कमियों का समाधान अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था अपनाये जाने से ही हो सकता है। कार्यपालिका की बढ़ती शक्तियों, प्रदत्त व्यवस्थापन, प्रधानमन्त्री की नेतृत्वकारी भूमि का के पतन, सांसदों की योग्यता के अभाव से संसद की शक्तियों की भूमिका एवं प्रतिष्ठा का हास हुआ है। परिणाम स्वरूप संसद का स्थान अन्य संवैधानिक संस्थाओं ने ले लिया है। भारत में संसदीय शासन व्यवस्था के स्थान पर वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्था अपनाने का सुझाव देने वाले विचार वर्ग की मान्यता है की संविधान के पृष्ठों में संसदीय व्यवस्था का अस्तित्व मौजूद है लेकिन व्यवहार में संसदीय व्यवस्था मौजूद नहीं है। उनके अनुसार भारत में संसदीय व्यवस्था की व्याधियों जैसे–राजनीतिक अस्थायित्व, दल–बदल, राज्य सरकारों की मनमानी, राज्यपालों की पक्षतापूर्ण भूमिका, अनवरत चुनाव का वातावरण, सौदेबाजी के आधार पर सरकार का निर्माण, केंद्र एवं राज्यों में अल्पमत सरकार का पदारूढ़ होना, सत्ता राजनीति के खेल से महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेनी में देरी, विभाजित राजनीतिक नेतृत्व आदि संसदीय व्यवस्था पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करतेहैं। भारत में संसदीय शासन व्यवस्था के स्थान पर अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था अपनाने के संभावित लाभों को इंगित करते हुए कहा गया है की इससे राजनीतिक अस्थायित्व का अंत होगा तथा अनिवार्य रूप से जनादेश के आधार पर सरकार का निर्माण एवं संसदीय व्यवस्था की व्याधियों को दूर किया जा सकेगा किन्तु राष्टपति प्रणाली को लेकर भी अनेक आशकाएं हैं। वैश्विक स्तर पर अमेरिका एवंफ्रांस को छोड कर कहीं भी यह शासन प्रणाली सफल नहीं हो पायी है। अनेक दक्षिण अमेरिकी राष्ट्रों जैसे अर्जेंटाइना, चिली, ब्राजील आदि में अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था अधिनायक शासन व्यवस्था का रूप ले चुकी है। स्वतंत्रता के बाद एक लम्बे समय तक संसदीय शासन व्यवस्था अपनाने से मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था के संकटों का समाधान होने की कोई गारंटी नहीं है। आज आवश्यक है की संसदीय व्यवस्था की विकृतियों को दूर कर उसे पुनः प्रतिष्ठित किया जाए। संसदीय शासन व्यवस्था में सुविचारित एवं गंभीर सुधारों से इसके दोषों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। अतःआवश्यक है की लोकतंत्र को जीवंत बनाये रखने की सबसेअहम संस्था संसद अपनी गतिशीलता एवं गौरव की परम्पराओं को संरक्षित करे।

सन्दर्भ

1 धमीजा, भानु, ''भारत में राष्ट्रपति प्रणाली–कितनी जरुरी, कितनी बेहतर'', प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2017

2 ऑस्टिन, ग्रेनविल, ''कॉर्नर स्टोन ऑफ अ नेशन (1966) (हिंदी अनुवाद : नरेश गोस्वामी–भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला),'' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

3 प्रसाद सिंह, महेंद्र एवं हिमांशु सिंह, ''भारतीय राजनितिक प्रणाली–संरचना, नीति एवं विकास'', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविधालय, 2016

4 मंगलानी, रूपा, ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2015

5 सईद, एस. एम., भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,'' भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2015

6 कश्यप,सुभाष, ''संसदीय प्रक्रिया,'' राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2014

7 अवस्थी, एपी, ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2013

8 कश्यप,सुभाष, ''हमारी संसद,'' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011

9 सिंह, महेंद्र प्रसाद, ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' ओरियंट ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली, 2011

10 इन्दा, उम्मेद सिंह, ''संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा,'' कल्पज प्रकाशन, दिल्ली, 2010

11 जैन, पुखराज एवं फड़िया, बी.एल., ''भारतीय शासन एवं राजनीति (राज्यों की राजनीति सहित),'' साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2007

12 आउटलुक, मार्च, 2018

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-62-66

साठोत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों पर पाश्चात्य रंगमंच का प्रभाव

*आचार्य पी०के०जयलक्ष्मी**

नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में प्रयोग का महत्व निर्विवाद है। नाटक और रंगमंच में रूढियों का बहिष्कार कर नवीन तत्वों के समावेश को प्रयोग कहा जा सकता है और प्रयोग की इस प्रवृत्ति को प्रयोगधर्मिता कहते हैं। नाट्य शास्त्र की भारतीय परम्परा रस को केंद्र में रखकर विकसित हुई है। पाश्चात्य नाट्य चिंतन की परंपरा में संघर्ष या द्वंद्व को महत्व दिया जाता है जो मनुष्य जीवन को बाह्य एवं आंतरिक दोनों पक्षों को समाहित कर लेता है। पाश्चात्य नाटक की इस अवधारणा के कारण परवर्ती नाटकों के विकास में नये आयाम जुडे। भारतीय साहित्य में अन्य विधाओं की तुलना में नाटक साहित्य पर पाश्चात्य नाट्य चिंतन का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में द्रष्टव्य है और प्रयोगधर्मिता के लिए नाटक के क्षेत्र में अनेक अवसर प्राप्त हुए।

वस्तु शिल्प, नाट्य शिल्प और रंग शिल्प की दृष्टि से साठोत्तर हिन्दी नाटक अत्यंत विलक्षण एवं प्रयोगधर्मी आयामों से समन्वित है। य।पि इस युग के नाटककारों ने वस्तु के क्षेत्र में कुछ सीमाओं तक पूर्ववर्ती नाटककारों की मान्यताओं तथा पूर्व निर्धारित प्रतिमानों का अनुसरण किया, किंतु परिवेश की माँग के अनुरूप व्यक्तिवादी चेतना की प्रबलता, संबंध– एचआईएनडीआई विघटन, मूल्यों के बदलाव के नेपथ्य में नई व्यवस्था के साथ स्वयं को जोडने में पुरानी पीढी की असमर्थता, मानव अधिकारों के प्रश्नों के नेपथ्य में नारी स्वातत्र्य का समर्थन, काम संबंधों की कमनीय यथार्थता, अस्तित्व सुरक्षा के प्रयत्न में व्यक्ति का संघर्ष, कुंठित विचारों तथा रूढिगत मान्यताओं का निम्न एवं निम्न मध्य वर्ग के सदस्यों पर प्रभाव, महत्वाकांक्षाओं के पीछे दौडने की प्रवृत्ति, पलायनवादिता, पुरुष की अहं चेतना और व्यसनाधीनता के कारण पारिवारिक संबंधों में तान–तनाव, रुचियों तथा विचारों में भिन्नता के कारण पति पत्नी के संबंधों में संघर्ष आदि कई अंशों को वस्तु बनाकर प्रभविष्णु ढंग से मंच के जरिए प्रस्तुत करने का जोरदार प्रयास हुआ है। नाट्य संवेदना की संप्रेषणीयता को बढावा देने हेतु इन नाटककारों ने मंच का उपयोग किया। इस युग के अधिकांश नाटकों में मध्यवर्गीय मानसिकता को प्रतिनिधि चरित्रों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए इस वर्ग पर स्थितियों की जटिलता और अभाव के प्रभाव को दर्शाया गया है। आधुनिकता–बोध को वस्तु–शिल्प के माध्यम से समर्थ ढंग से स्पष्ट किया गया है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के व्यापक प्रभाव को दर्शाने और जीवन के संवेदनात्मक पक्षों को अभिव्यक्ति देने मोहन राकेश, जगदीश चंद्र माथुर, विभुकुमार, नरेंद्र मोहन, मणि मधुकर, कुसुम कुमार, हमीदुल्ला आदि नाटककारों ने कोशिश की है।

**हिन्दी विभागाध्यक्ष, संत जोसफ महिला महाविद्यालय,विशाखपट्टनम आन्ध्रप्रदेश।*

हिन्दी नाटक और रंगमंच को परंपरागत रूढियों से मुक्त कराने, नये रंगमंचीय प्रतिमानों की स्थापना करने नाटक के वस्तु विधान में लोककथा के तत्वों और असंगत नाट्यतत्वों का समावेश कर नाटक को जन–साधारण से जोडने का प्रयत्न करने के कारण हिन्दी नाटककार प्रयोगधर्मी नाटककार के रूप में जाने जाते हैं, इनमें मणि मधुकर भी प्रसिद्ध हैं। विसंगति के जीवन दर्शन को नाटक की वस्तु से जोडते हुए मणि मधुकर ने मानवतावादी विचारों एवं मूल्यों को स्वर दिया है। अपने नाटकों में विसंगति के जीवन दर्शन को महत्व देते हुए नाटकों में विसंगति और लोकनाट्य के तत्वों का प्रभावी मिश्रण कर उन्होंने एक नई तलाश की शुरूआत की। व्यवस्था विरोध के नाटककार विभुकुमार के चारों प्रयोगधर्मी नाटक कथ्य के स्तर पर समसामयिकता की दृष्टि का परिचय देते हैं तथा कथ्य को आगे बढाने का सफल प्रयास करते हैं। इसलिए उनके नाटक परंपरा का विस्तार करते हैं।

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से कुसुम कुमार एक सक्रिय नाट्य लेखिका हैं। इन्होंने नाटक में नाट्यवस्तु का चयन समकालीन संदर्भ में किया है, यद्यपि इनका यह प्रयोग उनके अन्य समकालीन नाटककारों में भी देखा जा सकता है। कुसुमकुमार ने अपने प्रत्येक नाटक में नाट्यवस्तु के स्तर पर विषय को शिल्प से जोडा है। नाट्य शिल्प और रंगशिल्प दोनों ही दृष्टियों से ऐसे प्रयोगों की हिन्दी नाटकों में नई संभावनाएँ विकसित हुई हैं। कथ्य के अनुरूप सार्थक नाट्यभाषा की तलाश और रंगमंचीयता की पूर्ण संभावनाओं का प्रस्तुतीकरण इनके नाटकों के केंद्र में है। उनके नाटकों में प्रयोगधर्मिता की चर्चा करते हुए रीतारानी पालीवाल यों कहती हैं , "कुसुमकुमार ने एक स्वस्थ दृष्टिकोण से नाटकों में प्रयोग किए हैं। इनके नाटक "सुनो शेफाली", "ओम क्रांति क्रांति" और "रावण लीला" आदि में यह प्रयोगधर्मिता काफी हद तक सिद्ध हुई है। उन्होंने नाट्य प्रयोगों में ऐसे प्रतीकों और नाट्य बिम्बों का सृजन किया है, जिन्होंने नाटक के अभ्यस्त पाठकों को नए ढंग से स्थिति दर स्थिति सोचने विचारने के अवसर प्रदान किए हैं।

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में वस्तु का चयन स्वाधीन भारतीय समाज की समस्याओं तथा आम आदमी की जिंदगीसे जुडे ज्वलंत प्रश्नों पर विचार करने हेतु किया गया है। समकालीन जीवन की विसंगतियों को साठोत्तर हिन्दी नाटककारों ने यथार्थवत अंकित किया है। लोक कथा के तत्वों के समावेशन से इन नाटकों का शिल्प प्रभावशाली बन गया है। अंकों का विभाजन, दृश्य विधान, ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था, स्वगत–कथनों का सटीक प्रयोग, ऊब–निराशा एवं विवशता को प्रतिबिंबित व संप्रेषित करनेवाले संवादों की योजना, पात्रों की विश्वसनीयता, परिवारगत एवं पात्रानुकूल संवादों का प्रयोग, कथ्य को विकास के पर्याप्त अवसर देनेवाले शिल्पगत साधनों का सुंदर प्रयोग, पात्रों को विशिष्ट चरित्रों के रूप में रूपायित करनेवाला नाट्य शिल्प, साज सज्जा और अन्य मंचीय उपकरणों के सटीक प्रयोग में रुचि के कारण इस युग के नाटक न केवल पाठकीय, दर्शकीय संवेदना को उजागर करने में सफल बन पडे हैं, बल्कि सृजन एवं

प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में नये प्रतिमानों को भी स्थापित किया। हिंदी नाटककार विभिन्न रंग–आंदोलनों से प्रभावित हुए। कई नाट्य संस्थाओं ने समय समय पर प्रयोगधर्मी नाटकों का मंचन किया और इस दिशा में सृजन कार्य को प्रोत्साहित किया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी नाटक को व्यापक महत्व विशेषकर सन साठ के बाद प्राप्त हुआ। इन रचनाकारों ने नाटक और रंगमंच के बीच की खाई को पाटने और दृश्यत्व विहीन साहित्यिक नाटकों को दृश्यत्व की विशेषता प्रदान कर उन्हें रंगमंचीय नाटक बनाने का प्रयास किया। वस्तुतरू सन 60 से ही हिंदी नाटक अपने रंगमंचीय संस्कार के साथ पुनरू सृजित होकर सामने आया।

हिंदी के समान तेलुगु में भी नाटक साहित्य की विशेष परंपरा है। तेलुगु के आधुनिक नाटककारों ने भी साहित्यिक महत्व के नाटक लिखे और उन्हें रंगमंच से जोडने के सफल प्रयास किए। बीसवीं सदी में तेलुगु नाटक और रंगमंच का बहुमुखी विकास संपन्न हुआ है। विकास की प्रक्रिया में तेलुगु नाटक और रंगमंच का संबंध घनिष्ट हुआ है। सन 1960 के बाद तेलुगु नाटक और रंगमंच के क्षेत्रमें बहुत कुछ बदलाव की चर्चा की जाती है। समकालीन समग्र परिवर्तित संवेदना को नाट्यानुभूति के रूप में संप्रेषित करने का प्रयास तेलुगु नाटककार और निर्देशक करते रहे। सन साठ के लगभग, बुद्धिजीवियों की जो नयी, पुरानी पीढी सामने आई, उसने अपने आगे एक भयानक अंधकार को महसूस किया। अकर्मण्य सरकार, भ्रष्ट राजनीतिज्ञ तथा शोषित किसान व मजदूर वर्ग को देखकर उनका मोहभंग होना सहज था। साठ के बाद का नाटककार समकालीन परिवेश में स्वयं को नितांत अकेला पाता है तथा अस्तित्व के लिए संघर्ष करता दीखता है। समकालीन चेतना और यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रयास साठोत्तर तेलुगु नाटककी प्रमुख विशेषता है। पूर्ववर्ती नाटक से साठोत्तर तेलुगु नाटक का व्यक्तित्व भिन्न है। इसमें मुख्यतरू आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं को केंद्र में रखा गया और समस्याओं का समाधान वामपंथी दृष्टिकोण से खोजा गया। साठोत्तर तेलुगु नाटक अपने संपूर्ण वैविध्य के साथ वस्तु चयन के विस्तृत क्षेत्र का परिचय देते हैं। तेलुगु रंगमंच पर विभिन्न पाश्चात्य रंगशैलियों का प्रभाव दिखाई देता है। विभिन्न देशी व विदेशी भाषाओं में प्रचलित कई नाट्य प्रक्रियाओं के अनुसरण में विवेच्य काल का तेलुगु नाटक रूपगत वैविध्य को प्रदर्शित करता है।

सन 1960 के पश्चात रचित तेलुगु नाटकों में प्रयोग के नाम पर साहित्यिक मूल्यों की उपेक्षा करना, राष्ट्रीय विचारधारा का लुप्त हो जाना, अनुभूति के स्थान अभिव्यक्ति को ही प्राथमिकता देना जैसी प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती हैं। इन नाटकों में वस्तु वैविध्य के साथ साथ प्रयोगधर्मिता के गुण लक्षित होते हैं। तेलुगु नाटक पर पाश्चात्य चिंतन का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। तेलुगु में शेल्ली और कीट्स से प्रभावित कवियों की अपेक्षा गाल्सवर्दी से प्रभावित नाटककारों की संख्या अधिक है। नाटककार, रंगकर्मी और नाट्य प्रेमी दर्शक दृ इन तीनों के सहयोग से नाटक जीवन का अंग बन जाता है और रंगमंच से जुडकर उसका विकास संभव होता है। साठोत्तर तेलुगु नाटकों की सबसे

बडी उपलब्धि रंगमंच सापेक्षता है। साठोत्तर तेलुगु नाटक ने लेखन के साथ रंगशिल्प के क्षेत्र में प्रयोगशील वृत्ति को अपनाया है। आंध्र प्रांत के सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तित मूल्य संदर्भों को प्रतिबिंबित करते हुए साठ के बाद रचे गए तेलुगु नाटकों ने मंचीय संभावनाओं की दिशा में भी उल्लेखनीय प्रगति की है। पाश्चात्य नाटक व रंगमंच से प्रभाव को ग्रहणकर साठोत्तर तेलुगु नाटककारों ने नई रंग–युक्तियों को अपनाकर रंगमंच के विकास की सोद्धेश्यता को लेकर कई नये प्रयोग किए। पाश्चात्य रंगमंच के प्रभाव की स्वीकृति के संदर्भ में विवेच्य तेलुगु नाटककारों की यह विशिष्टता रही कि वस्तुचयन और नाट्य संवेदना की संप्रेषणीयता में अपने परिवेश की माँग को सदा दृष्टि में रखते हुए इन्होंने नाटक को अधिक प्रभावात्मक बनाने और नाट्यानुभूति का समर्थन करने के लिए ही पाश्चात्य प्रभाव से संप्राप्त रंग युक्तियों का उपयोग किया है।

साठोत्तर तेलुगु नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव की स्वीकृति और प्रयोग का लक्ष्य, नाट्य वस्तु को संप्रेषणीयता को सरल व प्रभावशाली बनाना, दर्शकों की सहभागिता को बढावा देना, प्रदर्शन की संश्लिष्टता से नाटक को बचाकर उसके अधिकाधिक प्रदर्शनों को संभव बनाना, समय, स्थान व संदर्भगत भिन्नता के बावजूद नाटक के विभिन्न दृश्यों के मंचीयकरण को आसान बना देना, वर्तमान जीवन स्थितियों की सहजता, विशिष्टता और विसंगति को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देने में नाटक विधा की सक्षमता का निरूपण करना, अभिनेयता को चुनौतीपूर्ण अवसर प्रदान करना आदि रहा। इस लक्ष्य के पीछे विवेच्य नाटककारों की नाट्य विधा के संवेदनशील रूप का शक्तिशाली ढंग से आविष्कार करने के प्रति समर्पणशीलता द्रष्टव्य है। पाश्चात्य प्रभाव की स्वीकृति के बावजूद इस कालावधि के नाटक अपनी मौलिकता को लेकर कई रूपों में प्रकट हुए। वीथि नाटक (स्ट्रीट थिएटर) की रंग प्रक्रिया का जोरदार स्वागत हुआ। अब्सर्ड थियेटर की शैली में रचे गए असंगत नाटक वर्तमान जीवन की विसंगतियों का जीता–जागता चित्रण प्रस्तुत करने में सफल हुए। सिम्बालिक थियेटर ने तेलुगु नाटक को अभिव्यक्ति के स्तर पर नये सुझाव देकर संश्लिष्ट जीवन स्थितियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति द्वारा इस विधा को सुरुचिपूर्ण बना दिया। अभिव्यंजनावादी नाटक (एक्सप्रेशनिस्टिक ड्रामा) के अंतर्गत रचे गए नाटकों और एकांकियों में समकालीन समस्याओं को इतिवृत्त के रूप में स्वीकार कर पात्रों के क्रिया व्यापारों के माध्यम से घटनाओं के विकास को दर्शाकर इन नाटककारों ने चित्तवृत्तियों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी है। साठोत्तर तेलुगु नाटक पर महाकाव्यात्मक रंगमंच (एपिक थियेटर) के प्रभाव को भी इस रचना में दर्शाया गया है। इस कालावधि में तेलुगु में लिखे गए एपिक नाटकों की वस्तु संरचना, शैली निर्माण, उद्देश्यात्मकता के प्रकाशन पर अधिक जोर दिया गया है। एलियनेशन को स्थान दिया गया है। दर्शकीय चेतना को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास किया गया है। दृश्यों की योजना कथा के विकास का ोतन नहीं करती है। एपिक थियेटर के प्रभाव को स्वीकार कर समीक्ष्य नाटककारों ने "तादात्म्य–विच्छेद" और "ऐतिहासिकता के आरोपण" को प्राथमिकता दी। इसके बाद तेलुगु में सिद्धांत–प्रचार–अभियान के नाटक (एजिट–प्राप–ड्रामा)

अवतरित हुए। युगीन राजनीतिक परिवेश के प्रभाव को स्वीकार कर इन नाटककारों द्वारा अपने आदर्शों व सिद्धांतों के प्रचार हेतु लिखे गए नाटकइस कोटि के अंतर्गत आते हैं। तेलुगु नाटक के विकास की इस बिंदु पर स्थानीय रंग शैलियों के समन्वित प्रयोग को देखा जा सकता है। ये प्रयोग मात्र प्रयोग के लिए नहीं बल्कि एक विशिष्ट सामाजिक प्रयोजन व विधागत विकास हेतु किए गए हैं।

तेलुगु नाटककारों ने पाश्चात्य रंग युक्तियों का उपयोग किया है । साठोत्तर तेलुगु नाटककारों की सफलता प्रेक्षागार का उपयोग करने में विशिष्ट प्रमाणित होती हैं । इन्होंने रंगमंच के विभाजन द्वारा नाट्य एवं संवेदना का सफल संप्रेषण करने और प्रदर्शन में तेजी लाने का प्रयास किया है।

पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति व सभ्यता में पर्याप्त वैविध्य होने के बावजूद व्यक्ति के सुख दुरूख को अभिव्यक्ति देने और समाज के साथ उसके संघर्ष को, व्यवस्था के विरुद्ध उसके विद्रोह को प्रकट करने में अन्य विधाओं की तुलना में पाश्चात्य एवं भारतीय नाटकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपनी विधागत विशिष्टता एवं प्रभाव क्षमता के कारण हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों ने भी सृजन धर्मिता और प्रयोगधर्मिता के नवीन संदर्भों को लेकर विकास को पाया।

संदर्भ

1. *डॉ0 कुमार सुधीन्द्र– हिन्दी नाटक : परम्परा और प्रयोग, संजय प्रकाशन दिल्ली, 1998।*
2. *डॉ0 दशरथ ओझा– आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1984।*
3. *डॉ0 एस0ए0 सूर्य नारायण वर्मा– साठोत्तर तेलुगु नाटक पाश्चात्य रंग दर्शन।*
4. *डॉ0 जयदेव तनेजा, तक्षशीला प्रकाशन नई दिल्ली वर्ष 2020 ISBN 81857278310*
5. *हिन्दी नाटक आज तक – डा. वीणा गौतम शब्द सेतु,, नई दिल्ली, 2002*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-67-73

भारत में राज्यों का पुनर्गठनः एक अनसुलझा मुद्दा

*डॉ० अन्जू**

भारतीय सघंवाद की एक अनूठी विशेषता 'राज्यों का पुनर्गठन' है। यद्यपि भारत में यह अन्य किसी परिपक्व तथा संघीय प्रणाली से हटकर है। तुलनात्मक संघीय व्यवस्था में राज्यों का गठन और पुनगर्ठन एक तरफा प्रक्रिया न होकर एक टेढ़ी खीर है। वहीं भारत में यह एक केंद्राभिमुखी प्रवृति को इंगित करता है। भारत में राज्यों के पुनर्गठन की मांग कोई नवीन मुददा नहीं है अपितु आजादी से लेकर आज तक यह भारतीय राजनीति के पटल पर जीवंत बना हुआ है। हाल ही में आंध्र प्रदेश का पुनर्गठन कर 29 वें भारतीय राज्य, तेलंगाना, के गठन ने एक बार फिर राज्यों के पुनर्गठन के मुद्दे को पुनः सक्रिय कर दिया है। गोरखालैंड, हरित प्रदेश, बुंदेलखंड, विर्दभ, कुर्ग, बोडोलैंड, तुलूनाडू आदि क्षेत्रों ने भी अपने–अपने मूल राज्यों से पृथक होने की मांग दोहरानी शुरु कर दी है। अलग–अलग आधारों भाषाई, नश्जातीयता एंव पिछड़ेपन पर राज्यों के पुनर्गठन के बावजूद निरंतर नई उठती मांगों ने गंभीर सवाल खड़े कर दिये हैं कि आखिरकार भारत में राज्यों के पुनर्गठन का पैमाना क्या हो ? क्या राज्यों का पुनर्गठन क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति है ? क्या द्वितीय पुर्नगठन आयोग का गठन अनिवार्य हो गया है ?

भारतीय संविधान के भाग– 1(अनुच्छेद 1 से 4 तक) संघ के स्वरुप तथा राज्यों के गठन एवं पुनर्गठन से संबधित है।[1] अनुच्छेद 1 कहता है भारत 'राज्यों का एक संघ' है, जिसका अभिप्राय है कि यह विनाशी राज्यों की एक अविनाशी यूनियन है। अनुच्छेद 2 निर्धारित करता है कि संघ विधि द्वारा नये राज्यों का निर्माण कर सकता है। अंत में अनुच्छेद 3 में व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति, अप्रत्यक्ष रुप से केंद्र सरकार, किसी राज्य से उसका राज्यक्षेत्र अलग कर, दो या दो से अधिक राज्यों का अथवा राज्यों के भाग को मिलाकर नये राज्य का निर्माण कर सकता है। राज्य के क्षेत्र को बढ़ा या घटा सकता है, राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकता है तथा राज्य के नाम मे भी परिवर्तन कर सकता है।

तथापि व्यवहार में भारतीय संविधान में इस अनुच्छेद का प्रयोग सशर्त ही किया जा सकता है। कहन का अर्थ है कि राष्ट्रपति की संस्तुति के बाद ही इससे संबधित प्रस्ताव संसद में पेश किया जा सकता है और विशेषतः संस्तुति के पूर्व राष्ट्रपति, प्रस्ताव पर संबधित राज्य विधानमंडल की राय मांगता है जिसे उसे निश्चित अवधि के अंदर देना होता है। हालांकि राष्ट्रपति इसे मानने के लिए आबद्ध नहीं है। इस तरह संविधान में

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.आर. आंबेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,नई दिल्ली।*

भारत के आंतरिक मानचित्रण हेतु अत्यंत ही लचीली व्यवस्था अपनायी गयी है। अनुच्छेद 4 इस तर्क को ओ पुख्ता बना देता है। यह अनुच्छेद व्यवस्था करता है कि अनुच्छेद 3 के संबध में लाया गया कोई भी प्रस्ताव अनुच्छेद 368 में वर्णित विशेष बहुमत का मोहताज नहीं है। अपितु इसके लिए सामान्य बहुमत ही काफी है।

स्वंतत्रता पूर्व राज्यों का पुनर्गठन

राज्यों के पुनर्गठन के इतिहास की ओर यदि गौर किया जाए तो यह बहुत पुराना है। प्राचीन काल में मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत मग्ध एकमात्र ऐसा प्राथमिक राज्य था जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसके अलावा साम्राज्य में अन्य चार प्रांत भी थे जिनको उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी, तथा पूर्वी प्रांत कहा जाता था जिनकी राजधानी क्रमशः तक्षशिला, स्वर्णगिरि, उज्जैन और वैशाली थी।[2]

मध्यकालीन भारत में, मुग्ल साम्राज्य में अकबर के शासनकाल में शुरुवात में 12 सूबे थे– इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली, काबुल, लाहौर, मुल्तान तथा मालवा किंतु बाद में बरार, खानदेश और अहमद नगर की विजय के साथ इनकी संख्या 15 हो गई और विशेषतौर पर इनकी अपनी–अपनी राजधानी थी।[3] इसी क्रम में आधुनिक भारत में रुख किया जाए तो ब्रिटिश साम्राज्य में मुख्य रुप से तीन प्रकार के प्रांत थे– ब्रिटिश भारतीय प्रांत, चीफ कमीशनरों के प्रांत तथा देसी रियासतें। ब्रिटिश भारतीय प्रांत में मुख्य रुप से मद्रास, अवध, एंव आगरा के संयुक्त प्रांत, बिहार, उड़ीसा, केंद्रीय प्रांत, बरार, बंबई, असम, उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत, बंगाल, पंजाब, एंव सिंध थे, जो स्पष्ट करता है कि मुग्ल एंव ब्रिटिश साम्राज्यों की प्रांतीय सीमाओं में कुछ हद तक निरंतरता बनी रही।[4]

उपरोक्त वर्णित तीनों ही साम्राज्यों की विशेषता यह रही कि राज्य की सीमाओं का निर्धारण सैन्य विजय तथा साम्राज्यवादी उद्देश्यों से किया गया अर्थात प्रांतों के गठन हेतु कोई तार्किक आधार नहीं अपनाया, जैसे–जैसे इनके साम्राज्यों का विस्तार हुआ वैसे–वैसे नए–नए प्रांत/राज्य बनते गए। यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्य ने राज्यों/प्रांतों के पुनर्गठन में प्रषासनिक सुविधा को भी अहमियत दी।

हैरत की बात यह थी कि 20वीं सदी के प्रथम दशक से धर्म तथा बाद में भाषा के आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन की प्रक्रिया आंरभ हुई। यह भाषा का ही कमाल था कि जिसने भारत में राष्ट्रवाद की नींव पुख्ता कर औपनिवेशिक षासन से निजा़त दिलवायी। 1905 में बंगाल विभाजन के अपने निर्णय को व्यापक विरोध के कारण ब्रिटिश हकूमत को 1911 में रद्द कर उसका एकीकरण करना पड़ा। किंतु इसके बावजूद भाशाई आधार पर बिहार की अलग प्रांत की मांग बंगाल प्रंसीडेंसी के विभाजन को रोक न पाई एंव उसके पश्चात 1936 में उड़ीसा भी एक पृथक प्रांत के रुप में निकलकर आया।[5]

1920 में कांग्रेस ने भाषा की महत्वता को भांपते हुए नागपुर अधिवेशन मेंन सिर्फ

(कन्नड़, आंध्र, तमिल, बंगाली और झारखंडी) भाषाई अस्मिताओं को रजामंदी दी थी अपितु अपना सांगठनिक पुनर्गठन भी इसी के अनुरुप किया। किंतु साइमन कमीशन की अध्यक्षता में आयोग ने साफतौर पर मात्र भाषा के आधार पर भारत के मानचित्र का पुनः रेखांकन करने के प्रति इंकार का दिया और तर्क दिया कि गैर–भाषाई कारक अर्थात धर्म, आर्थिक हित, नस्ल, भौगोलिकता जैसे कारक भी अहम् होते हैं।[6]

इस तरह स्वंतत्रता से पूर्व भारत में भाषाई आधार पर रेखांकन के मुद्दे को ज्यादा अहमियत नहीं दी गई मसलन् राज्यों का पुनर्गठन की समस्या ज्यों की त्यों ही बनी रही।

स्वंतत्रोत्तर राज्यों का पुनर्गठन

1947 में, स्वतंत्रता की बेला पर राष्ट्र–निर्माण की चुनौती भारत को विरासत में मिली थी और इसका एक पहलू सीधे तौर पर राज्यों के पुनगर्ठन से जुड़ा था। यह महज़ प्रशासनिक नज़रिये से ही महत्तवपूर्ण नहीं था अपितु भारत में व्याप्त विविधता के लिहाज़ से भी आवश्यक था। ब्रिटिश शासन से निजात तो मिली किंतु उसके समक्ष गंभीर समस्या थी कि किस प्रकार 565 देसी रियासतों का विलय भारत में किया जाए। कुछ रियासतों (जूनागढ़, हैदराबाद एंव कश्मीर) को छोड़कर अधिकत्तर लगभग सभी 552 को सरदार पटेल ने अपनी सूझबूझ तथा कूटनीतिक वार्ता के जरिए सहमति–पत्र द्वारा विलय करवा लिया। यद्यपि कुछ समय पश्चात जूनागढ़ और हैदराबाद को सहमतिपूर्ण कूटनीति एंव पुलिस कार्यवाही या सहायता से भारत का हिस्सा बना लिया गया और कश्मीर का विलय विशेष प्रावधानों एंव रक्षात्मक सैन्य कार्यवाही से किया।[7]

इस तरह स्वतंत्र भारत में क, ख तथा ग तीनों वर्गों के प्रांत अंग्रेजी प्रथा पर चलते हुए उभर कर आये। भाग 'क' के अंतर्गत पूर्व ब्रिटिश भारतीय प्रांत शामिल किये गये, भाग 'ख' में वे छोटे मूल भारतीय प्रांत थे जिन्होंने भारतीय यूनियन के साथ विलय करने में ज्यादा समस्याऐं नहीं खड़ी कीं तथा अंत में भाग 'ग' मे विलय या तो उनके शासकों द्वारा या तो अपनी स्वतंत्रता को मद्देनज़र रखते हुए किया गया या फिर उनके छोटे आकार, भौगोलिक रुप से बिखरे तथा विखंडित इतिहास के कारण।[8]

देसी रियासतों के विलय के साथ राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का अंत नहीं हुआ। लिहाज़ा भारतीय प्रांतों की आंतरिक सीमाओं का निर्धारण एक चुनौती बनकर उभरा जो महज़ न प्रशासनिक दृष्टि से अनिवार्य था ब्लकि भारत में व्याप्त विविधता भाषाई एंव सांस्कृतिक के दृष्टि से भी आवश्यक था।

स्वतंत्र भारत में नेहरु सरकार 1920 में कांग्रेस के भाषाई अस्मिताओं को मान्यता देने के वादे से मुकर गई और देश के ऐतिहासिक विभाजन अनुभव के बाबत इसे अनुचित करार दिया।अतः नेहरु ने मसले को अनदेखा कर दिया। विशेततः संविधान सभा में भी इस मुद्दे को अनसुलझा छोड़ दिया।[9] हालांकि भाषाई राज्यों की बढ़ती मांग तेलुगू, कन्नड़, मलयालम और उड़ीसा को ध्यान में रखते हुए धर आयोग गठित किया गया। आयोग ने भी अपनी रिपार्ट में भाषाई आधार पर प्रातों के गठन के विचार को स्वीकृति

नहीं दी तथा इसे राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा कहा।[10] तत्पश्चात् गठित जेवीपी समिति (नेहरु, पटेल एंव सीतारमैया) ने भी आयोग की रिपोर्ट से सहमति जताते हुए कहा कि 'भाषा न केवल जोड़ती है अपितु पृथकता भी लाती है, अतः घात पहुंचाने वाली प्रत्येक पृथकतावादी एंव विघटनकारी प्रवृति को हतोत्साहित करने की आवश्कता है।[11]

1948 एवं 1949 में एक बार फिर संयुक्त कर्नाटक, बंबई, मैसूर तथा हैदराबाद द्वारा भाषाई आधार पर स्वायत्ता की आवाजें गूंजने लगी। कांग्रेस द्वारा भाषाई राज्यों मामले की अनदेखी से लोगों में आक्रोश उमड़ पड़ा। मद्रास प्रांत के तेलुगू भाषी क्षेत्रों में विरोध की आग भड़क उठी जिसने शीघ्र ही एक आंदोलन का रुप ले लिया। आंदोलन की मांग थी कि तेलुगू भाषी इलाकों को पृथक करके एक नया राज्य आंध्र प्रदेश गठित किया जाए। जबकि तेलुगू भाषी क्षेत्र की लगभग समस्त राजनीतिक शक्तियां मद्रास प्रांत के भाषाई पुनर्गठन के पक्ष में नहीं थी। पोट्टी श्रीरामुलु की आमरण अनशन के दौरान हुई मृत्यु ने आंदोलन को जन आंदोलन में तब्दील कर दिया।

स्थिति की गंभीरता को देखते हुए नेहरु ने 1953 में फैज़लअली की अध्यक्षता में राज्य पुनर्गठन आयोग गठित किया जिसने 1956 में अपनी रिपार्ट पेश की। आयोग ने राज्यों का गठन हेतु चार सिद्धांत दिये[12]: 1) भारत की एकता एंव सुरक्षा को सृदड़ करना; 2) भाषाई और सांस्कृतिक समरसता; 3) वित्तीय एंव प्रशासनिक कसौटी तथा; 4) राज्य विकास योजनाओं का सफल संचालन।अंत में आयोग ने राज्यों के पुनर्गठन हेतु भाषाई कारक की महत्ता को स्वीकार किया किंतु यह कारक उन्हीं राज्यों पर लागू था जहां भाषाइ राज्यों की मांग सुलग रही थी तथा शेष के लिए आयोग ने बहुभाशी एंव बहु–सांस्कृतिक राज्य की बात मानी जिससे राष्ट्रीय एकता बुलंद रहे। लिहाज़ा 1 नवंबर, 1956 को राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित कर 14 राज्यों तथा 6 केंद्र–शासित प्रदेशों को घोषणा की गई।

आयोग ने स्वतंत्रता पश्चात् राज्यों की सीमाओं के पुनः रेखांकन का अच्छा प्रयास किया किंतु इस प्रक्रिया में उसने दो कारकों– जनसंख्या तथा राज्य के आकार को पूर्ण रुप से नकार दिया जिसे डॉ0 अंबेडकर प्रकाश में लेकर आए।[13] अंबेडकर का तर्क दिया कि जिस प्रकार दक्षिण का विभाजन किया गया उस तरह उत्तर का विभाजन नहीं किया गया। उन्होंने आयोग द्वारा आंदोलनकारी राज्यों में 'एक राज्य एक भाषा' के सिद्धांत को उचित बताया। किंतु जब 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित हुआ तो अंबेडकर के सुझावों को स्थान नहीं दिया गया।

ऐसा सोचा गया था कि SRC द्वारा राज्यों के सीमांकन के परिणामस्वरुप भाषावर राज्यों का मुद्दा प्रत्यक्ष रुप से नहीं उभरेगा। किंतु आंध्र प्रदेश को भाषाई आध ाार पर पृथक राज्य की मान्यता देते ही अन्य क्षेत्रों में भी भाषा के आधार पर पृथक आस्तित्व की मांग उठने लगी। 1960 में बाम्बे राज्य में गुजराती एवं मराठी भाषी लोगों की अपने–अपने पृथक आस्तित्व की मांग के परिणास्वरुप दो राज्य– गुजरात एंव महाराष्ट्र निकलकर आये। 10 वर्श पश्चात 1966 पंजाब का विभाजन कर दो अन्य राज्य

हरियाणा एंव हिमाचल प्रदेश निकलकर आये।

राज्यों के पुनर्गठन का सिलसिला यहीं नहीं थमा और 70 के दशक में पूर्वोत्तर में पृथक राज्यों की नृजातीयता के आधार पर मांग आंरभ हो गई। यद्यपि 1963 में असम से नागालैंड का विभाजन हो चूका था। किंतु इस दशक में असम का पुंनः विभाजन 1972 अन्य तीन राज्यों – मेघालय, मणिपुर तथा त्रिपुरा में किया गया तथा अगले दशक 1987 में दो ओर राज्य– अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम का भी जन्म हुआ। वास्तव में पूर्वोत्तर राज्यों के निर्माण ने यह सोचने पर विवश कर दिया कि भाषाई राज्यों के सिद्धांत को प्रत्येक क्षेत्र में अम्ल लाना संभव नहीं हैं। हालांकि पूर्वोत्तर राज्यों को विशेष राज्यों का दर्ज़ा देते हुए यहां क्षेत्रीय/जिला परिषदों का गठन कर इन्हें अन्य राज्यों की अपेक्षा ज्यादा स्वायत्ता दी गई किंतु अधिकांश परिषदें बेकार पड़ी हैं।[14] इस तरह पूर्वोत्तर क्षेत्र में सात बहनों का जन्म तो दिया गया किंतु इनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता पर ज्यादा गंभीरता से विचार नहीं किया गया और आज भी ये अपने आस्तित्व के लिए केद्रीय सहायता पर ही निर्भर हैं।

वास्तविकता की तरफ रुख किया जाए तो केंद्र सरकार ने इन तीनों राज्यों का निर्माण मात्र अपने राजनैतिक प्रभाव में विस्तार करने के उद्देदष्य से किया चूंकि सभी क्षेत्रों में गठन के समय कोई उग्र आंदोलन नहीं था। झारखंड में तो आंदोलन शिथिल हो चूका था तथा आंदोलन का थोड़ा जज़्बा उत्तराचंल में ही देखने को मिला। विशेष रुप से दोनों राज्यों, उत्तरांचल तथा झारखंड, के गठन ने ही छत्तीसगढ़ के गठन हेतु एक संवेदनशील आधार प्रदान किया अन्यथा वहां पर आंदोलन की झलक न के ही बराबर थी।[15]

इन तीनों नवगठित राज्यों की निष्पादनता का विशेलषण किया जा तो पता चलता है कि जहां उत्तरांचल जो गैर–जनजातीय बहुल है, बेहतर विकास की ओर अग्रसर है ओर वहीं झारखंड और छत्तीसगढ़ जो जनजातीय बहुल राज्य हैं, बीमारु राज्यों की संक्ष्या में इज़ाफा ही किया है।[16]उत्तरांचल में तो प्रजातांतत्रिक विकास कुछ हद तक हुआ भी है परंतु अन्य दोनों राज्यों ने तो आर्थिक विकास के रुपों को ही दर्ज़ किया है। इनमें माओवादी हिंसा, नक्सलवादी हिंसा तथा प्रशासनिक तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार तो एक आम बात हो गई है।[17] 2000 में झारखंड को पृथक राज्य का दर्जा देकर आदिवासियों को कुछ हद राजनीतिक अधिकार तो दिये गये परंतु अपने निर्माण के डेढ़ दशक से अधिक अवधि कि बाद भी आदिवासी अपनी अस्मिता या यूं कहें अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। राज्य में कम होती आदिवासी आबादी एक सुखद संकेत नहीं है। उतराखंड में विकास तो आया परंतु यह मैदानी विकास का ही संकेतक बन कर रह गया है। परिणामतः मैदानी एवं पर्वतीय अंतर जो राज्य बनने से पहले भी वि मान था राज्य बनने के बाद यह ओर भी बढ़ गया है। अतः वर्तमान अनुभव ने छोटे राज्यों के निर्माण पर सोचने के लिए विवश कर दिया है।

नये राज्यों के दावे

नवीन राज्यों की मांग अभी थमी नहीं है और यह सिलसिला अभी भी जारी है। वर्तमान में तेलंगाना की मांग पूरी होते ही और अन्य क्षेत्रों में भी इसी प्रकार के दावे कर रहे है। मायावती ने अंबेडकर की तर्ज़ पर ही उत्तर प्रदेश को तीन भागों– हरित प्रदेश, बुंदेलखंड तथा पूर्वांचल में विभाजित करने का प्रस्ताव रखा।[18] यद्यपि ज्यादा राजनीति बुंदेलखंड और हरित प्रदेश पर की जा रही है। बुंदेलखंड जो खनिज संपदा से भरपूर है, में बुंदेलखंड मुक्ति मोर्चा के अध्यक्ष का कहना है कि गरीबी, भुखमरी, पिछड़ापन तथा बुनियादी आवश्कताओं के अभाव में समस्त समस्याओं का निराकरण मात्र अलग राज्य की प्राप्ति में है। चूंकि यहां की जनता पैकेज की खोखली राजनीति से परेशान हो चूकि है।[19] वहीं रालोद के अध्यक्ष अजीत सिंह की हरित प्रदेश की मांग की वजह समृद्धि एंव सत्ता प्रेरित है। पश्चिम बंगाल में गोजम द्वारा गोरखालैंड की मांग, दार्जलिंग व आसपास के क्षेत्र के लोगो की आकाक्षांए पूरी न होने के कारण है।[20] असम में बोडोलैंडकी मांग की जा रही है। वृहत्तर नांगालैंड का मुद्दा उभरा है। कर्नाटक में कुर्ग अपनी सांस्कृतिक विष्टिता के कारण मांग उठा रहा है।

अतः कहा जा सकता है कि इतिहास से लेकर वर्तमान तक राज्यों के पुनर्गठन की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाई है और यदि राज्यों का पुनर्गठन किया भी गया है तो कोई एकमात्र कारक चाहें भाषा, नृजातीयता या पिछड़ापन हो प्रभावकारी तथा संतुष्टिपूर्ण नहीं रहा और राज्य निमार्ण की नित नई उभरती मांगों के मद्देनज़र एक दूसरे राज्य पुनर्गठन आयोग की आवश्कता है जो राज्य पुनर्गठन के मौजूदा आधारों ओर किसी सर्वमान्य मापदंड के इतर भी जाकर प्रत्येक क्षेत्र को उसकी समस्यायों के परिप्रेक्ष्य में गहन और गंभीर अध्ययन कर उनके समाधान का अनुमोदन करे। हालांकि दूसरे पुनर्गठन आयोग के इतर सवैंधानिक उपायों को भी अपनाने की आवश्यकता है ताकि केंद्र में बैठी सरकार अनुच्छेद 3 के माध्यम से अपने चुनावी हितों को भी न साध सके। विख्यात राजनीतिक विश्लेषक, प्रो. एम.पी. सिंह का कहना है कि चूंकि इस अनुच्छेद की प्रकृति गैर–लांकतांत्रिक है तथा संघवाद के प्रतिकूल है लिहाजा संविधान से या तो इसे निकाल दिया जाये अन्यथा इसे मृत–पत्र बना दिया जाए। इस तरह भले ही शक्ति केंद्र के पास रहे किंतु इसका प्रयोग अंतिम विकल्प या न के बराबर ही करे। हालांकि इसके लिए वैधानिक एवं राष्टीय सहमति जुटाना अत्यंत ही मुश्किल है। साथ ही अनुच्छेद 3 के प्रयोग के लिए अनुच्छेद 4 के साधारण बहुमत की प्रकृति में बदलाव कर इसे विशेष, बहुमत में तब्दील किया जाये।

संदर्भ

1. *भारत का संविधान, भारत सरकार, 2000।*
2. *M.P.Singh, A Borderless Internal Federal Space? Reorganisation of States in India, 2007, p 235, India Review.*
3. *सुषमा यादव और राम अवतार शर्मा, भारतीय राज्यः उत्पति एंव विकास, आकार*

प्रकाशन, नई दिल्ली 2000, पृ. 358, ।

4. *M.P.Singh, op. cit., p 236.*
5. *Ibid.*
6. *Ramchandra Guha, India after Gandhi, 2007, p 182, Picador, London. 2007, p 182.*
7. *M.P.Singh, op. cit., p 236.*
8. *Ibid.*
9. *M.P.Singh., Political Thought of B.R.Ambedkar: The Institutional Structure of State in India in S.N.Mishra 'Socio Economic & Political Vision of Dr. B.R.Ambedkar',, Concept Publishing House, New Delhi. 2010*
10. *Linguistic Province Commission Report, Indian Govt. Pub., 1948, p 131.*
11. *Ramchandra Guha., op. cit., NBT, p 1. p 183.*
12. *Ibid. State Reorganisation Commission Report, Indian Government, New Delhi, 1995, p 251.*
13. *डॉ0 अंबेडकर, संपूर्ण वांडमय, भाग–1, पृ. 174*
14. *महेंद्र प्रसाद सिंह., राज्यों का पुनर्गठनः क्या छोटे राज्य बेहतर हैं ? फरवरी, 2010, फारवर्ड प्रेस, पृ. 30*
15. *V.Venktesan, Chattisgarh: Quite Arrival, Frontline, Vol. 17, Issue 17, Aug. 19-Sep. 01, 2000.*
16. *इंडिया टूडे, उम्दा और बेहतर राज्य, 30 दिसंबर, पृ. 9*
17. *महेंद्र प्रसाद सिंह., op. cit., पृ. 301*
18. *NBT, p 1.*
19. *इंडिया टूडे,op. cit.*
20. *वही ।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-74-77

गीता में प्रतिपादित 'आत्मज्ञान' की प्राप्ति के विभिन्न मार्ग

*डॉ० भानु प्रकाश त्रिपाठी**

गीता के अनुसार आत्मा ईश्वर का अंश है। आत्मा जब अपने स्वरूप को समझ लेती है तब इसे आत्मज्ञान कहा जाता है। आत्मज्ञान होने पर व्यक्ति ईश्वर का साक्षात्कार कर लेताा है। गीता में व्यक्ति का चरमलक्ष्य आत्मा और परमात्मा का एकीकरण नहीं है। आत्मा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने पर ब्रह्मसदृश हो जाती है और इसमें ईश्वरीय गुण आ जाते हैं। आत्मा का ब्रह्म में लीन होने का यही अर्थ होता है। इस प्रकार, अपने को ब्रह्ममय समझ लेना ही जीवन का चरमलक्ष्य है। गीता में आत्मज्ञान की प्राप्ति के ज्ञान, भक्ति और कर्म के भेद से त्रिविध मार्ग हैं।

ज्ञानमार्ग

गीता के अनुसार अज्ञान बंधन का मूल कारण है। अज्ञान के कारण व्यक्ति आत्मा को शरीर, मन और इन्द्रिय समझकर आचरण करता है और परिणामस्वरूप बंधनग्रस्त होकर विभिन्न प्रकार के कष्ट झेलता है वास्तव में आत्मा, शरीर, मन एवं इन्द्रिय से सर्वथा भिन्न है। यह तो ईश्वर का अंश है। अतः मोक्ष के लिए ज्ञान मार्ग आवश्यक है। इस मार्ग पर चलकर व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

गीता के अनुसार ज्ञान के दो भेद हैं–साधारण ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान। बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान साधारण ज्ञान है। यह ज्ञान बाह्य उपाधियों पर निर्भर है और इससे ईश्वर के विषय में कोई ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक ज्ञान ईश्वर की प्राप्ति में सहायक है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों को बाह्य पदार्थों से अलग कर आंतरिक दृष्टि अपनानी पड़ती है। गीता में इस ज्ञान की प्राप्ति के कुछ प्रमुख सोपान हैं–

1. शरीर, मन एवं इन्द्रियों को शुद्ध रखना।
2. आत्मा को ईश्वर पर केन्द्रित रखना।
3. आत्मा और ईश्वर में तादाम्य होना।
4. आत्मज्ञान के लिए ईश्वर में अगाध श्रद्धा का होना।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध क्षेत्र में ज्ञानविषयक उपदेश दिया है। आत्मा, अजर–अमर, नित्य, अपरिवर्तनशील और विकार रहित है। आत्मा, शरीर, इन्द्रिय आदि से पूर्णतया भिन्न है। अज्ञानवश हम शरीर और इन्द्रिय के कष्ट को आत्मा का कष्ट मान लेते हैं। शरीर नष्ट होता है किन्तु आत्मा अमर है। यह आत्मा अजन्मा एवं शाश्वत है।[1]

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, सी0एम0पी0 डिग्री कालेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ0प्र0)*

आत्मा को न तो शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न पानी भिगो सकता है और न हवा सुखा सकती है।[2] जिस प्रकार व्यक्ति पुराने वस्त्र उतार कर नूतन वस्त्र पहन लेता है, उसी प्रकार आत्मा भी व्यक्ति की मृत्यु के बाद पुराने शरीर को छोड़कर नए शरीर में प्रवेश करती है।[3]

इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को पहचान लेना ही सच्चा ज्ञान है। ज्ञान की महत्ता बताते हुए गीता में कहा गया है, जो ज्ञाता है वह हमारे सभी भक्तों में श्रेष्ठ है।[4] जो हमें जानता है वह हमारी आराधना भी करता है।[5] आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थित हुए चित्त वाले, यज्ञ के लिए आचरण करते हुए व्यक्ति के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।[6] इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है।

भक्तिमार्ग

गीता में भक्तिमार्ग का अत्यधिक महत्त्व है। व्यक्ति ईश्वर की सच्ची साधना से उसका कृपापात्र बन जाता है। औरतें पापी एवं अन्य लोग भी ईश्वर में अखण्ड श्रद्धा रखकर चरमलक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।[7] भक्ति मार्ग सबके लिए सुलभ है सच्ची श्रद्धावश पत्र, पुष्प, जल, धूप एवं अन्य सामग्री ईश्वर को समर्पित करने पर व्यक्ति ईश्वर का कृपापात्र बन जाता है।[8] गीता में भक्ति का एक सरल उपाय बताया गया है। व्यक्ति अपने प्रत्येक कर्म को, ईश्वर के नाम पर अर्पित करके दैनिक जीवन में सच्चे भक्त के रूप में जीवन व्यतीत कर सकता है। यहां सर्वसमर्पण का भाव व्यक्ति को ईश्वर का अनन्य भक्त बना देता है।[9] गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अत्यधिक उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया है। उन्होंने कहा है–जो भक्त जिस देवता को श्रद्धा से पूजना चाहता है उसकी श्रद्धा को मैं उसी में दृढ़ करता हूँ और इससे वह अपने इच्छित भोगों को प्राप्त करता है।[10] श्रद्धा से युक्त होकर जो अन्य देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझे ही पूजते हैं। यद्यपि उनकी यह पूजा विधिवत नहीं है।[11] गीता की भक्ति में प्रेम और श्रद्धा अतिशय मात्रा में विद्यमान है। इसमें उपासक और उपास्य का द्वैत समाप्त हो जाता है। प्रेमी और प्रेम विषय एक हो जाते हैं नारद ने इसे अतिशयप्रेम कहा है। यहां भक्त, भक्ति में इतना रम जाता है कि वह मोक्ष के लक्ष्य को भी भूल जाता है और ईश भजन, पूजापाठ, ध्यान समाधि में ही अपने को पूर्णतया खो देता है। गीता में भक्त के चार भेद हैं–'चतुर्विधा भजन्ते माम् जनाः' आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और ज्ञानी। इनमें ज्ञानी भक्त उत्तम हैं क्योंकि अन्य भक्त सकाम भाव से भक्ति करते हैं जबकि ज्ञानी निष्काम भाव से। गीता में ज्ञानी भक्त की प्रशंसा की गयी है–'ज्ञानी विशिष्यते', 'ज्ञानिनः अहम् अत्यर्थम् प्रियः', 'ज्ञानी त्वात्मैव', 'सः महात्मा सुदुर्लभः' आदि। भक्ति मार्ग की प्रशंसा करते हुए तिलक जी ने कहा है–'गीता में जो मधुरता, प्रेम या रस भरा है, वह उसमें प्रतिपादित भक्ति मार्ग ही का परिणाम है।''

कर्ममार्ग

गीता की रचना का उद्देश्य किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को युद्धरत करना था इसीलिए कर्ममार्ग को गीता में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है। कर्म गीता का सार है। कर्मयोग दो शब्दों के सम्मेलन से बना है कर्म और योग। गीता में कर्म का अर्थ वर्णाश्रमधर्म तथा योग का अर्थ जोड़ना या अपने को लगाना है।

इस प्रकार कर्मयोग का अर्थ हुआ–सामाजिक कर्तव्यों या वर्णाश्रमधर्म के पालन में निष्ठा'। कर्म साधारणतः किसी फल की कामना रखकर किये जाते हैं। किन्तु कर्मयोग में कर्म साधन के रूप में नहीं बल्कि साध्य के रूप में है। कर्मफल की आशा रखे बिना ही कर्म करना कर्मयोग है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–केवल कर्म में ही व्यक्ति का अधिकार है। उसके फल में कदापि नहीं।[12] कर्ममार्ग निवृत्ति और प्रवृत्ति में समन्वय स्थापित करता है निवृत्ति त्याग का निषेधात्मक आदर्श है और प्रवृत्ति सक्रिय जीवन का विधानात्मक आदर्श। सभी कर्मों को त्यागकर सांसारिक जीवन से सन्यास ले लेना ही निवृत्ति का आदर्श है। सांसारिक कर्तव्यों का पालन ही प्रवृत्ति का आदर्श है। प्रवृत्ति के आदर्श में स्वार्थ की भावना का समावेश है। व्यक्ति अपनी किसी न किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए इन कार्यों का सम्पादन करता है। गीता न तो कर्म त्यागने की शिक्षा देती है और न कर्मफल के पीछे परेशान रहने का ही समर्थन करती है। कर्मयोग कर्म का अनुमोदन करता है और कर्मफल के त्याग का आदेश भी देता है। इस प्रकार गीता का कर्मयोग कर्म का त्याग नहीं करता बल्कि कर्म में त्याग की शिक्षा देता है। कर्मफल की आशा रखे बिना कर्म करना ही कर्मयोग है। इसे निष्काम कर्म कहते हैं। प्रो0 हिरियाना के शब्दों में गीता कर्मों के त्याग के बदले कर्म में त्याग का उपदेश देती है।[13] डॉ0 राधाकृष्णन ने कर्मयोग को गीता का मौलिक उपदेश कहा है।[14]

गीता में कर्म की अनिवार्यता पर जोर दिया गया है। कोई भी जीव बिना कर्म किए एक पल भी नहीं रहता। कर्म का बिल्कुल त्याग किसी भी मनुष्य के लिए संभव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने के लिए विवश है।[15] इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य की इस सहज कर्म प्रवृत्ति को सन्मार्ग पर लगाया जाय। अब प्रश्न है कि हमें कौन से कर्म करने चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर में गीता प्रत्येक व्यक्ति को अपने–अपने कर्तव्य के पालन का आदेश देती है। मनुष्य अपने सहज कर्म या स्वधर्म को चाहे वह उत्तम हो या अधम कदापि ने त्यागे।[16] स्वधर्म उस कर्तव्य को कहा जा सकता है जो समाज के विभिन्न वर्गों में प्रत्येक के लिए अलग–अलग निर्धारित किया गया हो।

गीता में वर्णित उपर्युक्त तीनों मार्गों में कोई विरोध नहीं है ये तीनों ही मोक्ष की प्राप्ति में सहायक हैं, एक ही ईश्वर तक पहुंचने के तीन रास्ते हैं। व्यक्ति अपनी प्रकृति एवं क्षमता अनुसार इनमें से किसी भी मार्ग का अनुसरण करके अपना आदर्श प्राप्त कर सकता है जिस व्यक्ति में ज्ञान की जिज्ञासा की प्रधानता है, उसके लिए ज्ञान मार्ग उचित है। जिसके हृदय में भक्तिरस की धारा बहती है, उसके लिए भक्ति मार्ग उपयुक्त है। जिस व्यक्ति का कर्म में विश्वास है, उसके लिए कर्म मार्ग उपयुक्त है।

इन तीनों में न कोई उच्चतर है न कोई निम्नतर। तीनों ही मार्ग एक ही मंजिल

तक पहुंचाते हैं। मोक्ष की प्राप्ति होने पर व्यक्ति को सम्यक् ज्ञान हो जाता है, ईश्वर के प्रति उसमें अगाध श्रद्धा एवं प्रेम दोनों रहते हैं और वह अपने ज्ञान एवं भक्ति को कार्यरूप में परिणत करता है। इस प्रकार, गीता के तीनों मार्गों में कोई मौलिक विरोध नहीं है।

संदर्भ

1. *श्रीमद् भगवत गीता–2/20*
2. *श्रीमद् भगवत गीता–2/23*
3. *श्रीमद् भगवत गीता–2/22*
4. *श्रीमद् भगवत गीता–8/2*
5. *श्रीमद् भगवत गीता–2/59*
6. *श्रीमद् भगवत गीता–4/27*
7. *श्रीमद् भगवत गीता–9/32*
8. *श्रीमद् भगवत गीता–9/26*
9. *श्रीमद् भगवत गीता–9/27*
10. *श्रीमद् भगवत गीता–7/21–22*
11. *श्रीमद् भगवत गीता–9/23*
12. *श्रीमद् भगवत गीता–2/47*
13. *In other words the Gita teacehing stands not for renunciation of action but for renunciation in action-outlines of Indian Phi. P. 121.*
14. *The whole Setting of Gita points out that it is an exhortation to action-Ind. Phil., Vol. I.P. 564.*
15. *श्रीमद् भगवत गीता–3/5*
16. *श्रीमद् भगवत गीता–18/47–48*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-78-90

भारतीय आस्तिक दर्शनों में प्रमाण मीमांसा

*डॉ० नीतू सिंह**

भारतीय दर्शनशास्त्र संसार में अपना एक महत्त्वपूर्ण एवं अनुपम स्थान रखता है। भूमण्डल के विद्वान इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। संस्कृत का 'दर्शन' पद यह व्यक्त करता है कि जिससे देखा जावे उसका नाम दर्शन है। इसका आधार यह व्युत्पत्ति है–''दृश्यते अनेन इति दर्शनम्। तात्पर्य यह निकला कि जिससे सत्–असत्, आत्म, अनात्म को जाना जावे उसका नाम दर्शन है। सांख्य और योग की प्रक्रियाओं में 'दर्शन' पद का व्यवहार मिलता है पंचशिखाचार्य ने अपने सूत्रों में एक सूत्र पढ़ा है जिसका अर्थ है कि प्रकृति[1] से पृथक् करके पुरूष के केवलपने को देखना 'दर्शन' है। आत्मा का प्रकृति से पृथक ज्ञान दर्शन है– ऐसा यहाँ पर भाव ज्ञात होता है। योग दर्शन में भी दर्शन पद का प्रयोग पाया जाता है। इस शास्त्र में द्रष्टा पुरूष द्वारा दृश्य देखने के साधन 'बुद्धि' तत्त्व को दर्शन कहा गया है। दृश्य जगत् है। द्रष्टा पुरूष है और देखने का साधन बुद्धि 'दर्शन' है। योग में दर्शन का अर्थ 'ज्ञान' भी है। अस्मिता का लक्षण करते हुए योग दर्शन में कहा गया है कि दृक्–पुरूष और दर्शन–बुद्धि इन दोनों को एक मानना अस्मिता नामक क्लेश[2] है।[2] व्यासभाष्य में अदर्शन को बन्ध का कारण कहकर दर्शन से उसकी निवृत्ति बतलायी गयी है। इसी प्रकार व्यासभाष्य 3/55 में लिखा गया है कि 'परमार्थ रूप में तो ज्ञान से अदर्शन–अज्ञान की निवृत्ति होती है पर पहले 2/24 में दर्शन से अदर्शन[3] की निवृत्ति कहकर पुनः 3/55 में[4] ज्ञान से अदर्शन की निवृत्ति कहना यह स्पष्ट करता है कि 'दर्शन' का अर्थ ज्ञान है। व्यास ने योग के भाष्य में 2/33 सूत्र का भाष्य करते हुये ''अदर्शन'' अज्ञान अथवा अविद्या के विशय में कई विकल्प उठाये हैं। अदर्शन क्या है? इसके समझने से दर्शन के समझने में कुछ सुविधा हो सकेगी। व्यास कहते हैं– यह अदर्शन[5] नाम की वस्तु क्या है? क्या सत्त्व्–रजस्–तमस्– तीनों गुणों का अपने कार्य को चालू रखने का सामर्थ्य अदर्शन है, अथवा द्रष्टा पुरूष को विविध दृश्यों को दिखलाने वाले चित्त का पुरूष के भेद और प्रकृति के भेद को दिखलाने वाले ज्ञान का न उत्पन्न करना अदर्शन है। क्या गुणों का पुरूष के प्रति प्रयोजन का बना रहना अदर्शन है? अथवा चित्त में रहने वाली अविद्या का प्रलयकाल में प्रकृति के साम्यावस्था में हो जाने से अपने स्थानभूत पूर्वचित्त के साथ विरूद्ध न होकर पुनः चित्त के उत्पन्न करने वाली वासना के रूप में बने रहना अदर्शन हैं। अथवा क्या प्रकृति के स्थिति संस्कार–साम्यावस्था के क्षय से गति संस्कार– विषमावस्था का प्रकट होना अदर्शन है। अदर्शनशक्ति–बुद्धिशक्ति ही अदर्शन है– ऐसा एक आचार्य का मत है। अथवा पुरूष और दृश्य दोनों का ही अदर्शन धर्म है यह अदर्शन है– ऐसा अन्य लोग कहते हैं। अथवा पुरूष और दृश्य दोनों का ही अदर्शन धर्म है यह अदर्शन है– ऐसा अन्य लोग कहते हैं। अर्थात् पुरूष को बुद्धिरूपी दृश्य की दर्शनमूल शक्ति के सम्पर्क के बिना पुरूष में दर्शन नहीं होता और द्रष्टा पुरूष

* *प्रवक्ता–संस्कृत विभाग आर0आर0पी0जी0 कालेज,अमेठी (उ0प्र0)*

के सम्पर्क के बिना अचेतन बुद्धि आदि में भी दर्शन का अभाव होता है। बुद्धि के द्वारा होने वाला दर्शन ज्ञान–दृश्य का ज्ञान अर्थात् शब्दाविज्ञान ही अदर्शन है– ऐसा कई लोग कहते हैं। अन्त में सब का सामान्यीकरण करते हुये अविद्या–विपर्यय ज्ञान वासना को व्यास ने अदर्शन कहा है। इस प्रकार अदर्शन का यह सूक्ष्मेक्षण दर्शन के अर्थ को बतलाने में सहायता करता है।

अस्तिक–नास्तिक विवेचन

भारतीय दर्शन का विभाजन दो प्रकार से किया जाता है किन्तु आस्तिक दर्शन का पर्याय वैदिक दर्शन है या अवैदिक दर्शन में नास्तिक दर्शन संग्रहीत किये जा सकते हैं? इस विषय पर विद्वानों में भारी मतभेद है। हरिभद्रसूरि के 'शड्दर्शन समुच्चय' इस ग्रन्थ के टीकाकार 'गुणरत्न' तथा वाल्मीकि कृत रामायण 2/109 में वर्णित नास्तिक मत के अनुसार जीव, परलोक तथा पुण्य–पाप के अस्तित्व को मानने वालों को आस्तिक कहा गया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के 'आस्तिनास्तिदिष्टं मतिः[6] सूत्र से 'आस्तिक' शब्द सिद्ध होता है। इस सूत्र की 'काशिकावृत्ति' के अनुसार 'परलोक अस्ति इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः' अर्थात् परलोक की सत्ता में विश्वास रखने वालों को आस्तिक तथा उसे न मानने वालों को नास्तिक कहा गया है। इसके विपरीत मनु की दृष्टि से वेद प्रामाण्य को न मानने वाले को नास्तिक समझना चाहिए–'नास्तिको वेदनिन्दकः''[7] प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय आस्तिक दर्शनों के प्रमाण विषयक विभिन्न वादों का निष्कर्श उनमें सामंजस्य की प्रवृत्ति का अन्वेषण भी है।

प्रमाण–विवेचन

यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के साधन को ही प्रमाण कहा गया है। न्याय दर्शन वात्स्यायन भाष्य में 'प्रमाणों द्वारा किसी अर्थ की परीक्षा को न्याय कहा गया है।''[8] अतः दार्शनिक विवेचना की मूलभित्ति प्रमाण विमर्श पर ही स्थिर है।

प्रमाण से अर्थ की सिद्धि होती है, इस मूल सिद्धान्त के स्वीकार करने से प्रमाण के अस्तित्व में किसी को आपत्ति नहीं है। परन्तु प्रमाणों की संख्या में विरोध का उद्भावन किया जाता है। चार्वाक (लोकायत) मतानुयायी केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं। बौद्ध और जैन आचार्य प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणों को मानते हैं। सांख्य और योग दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (वेद और तदनुकूल आप्तोपदेश) ये तीन प्रमाण माने गये हैं। वैशेषिक तथा नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान (सादृश्य अर्थात् गौ के सदृश्य गवय–नीलगाय) और शब्द इन चार प्रमाणों को मानते हैं। प्रभाकर भट्ट के मतानुयायी मीमांसक उक्त चारों प्रमाणों के साथ 'अर्थापत्ति' नामक पाँचवा प्रमाण भी मानते हैं। कुमारिलभट्ट की परम्परा वाले मीमांसक प्रत्यक्ष से लेकर अभाव तक शट्–प्रमाण मानने के पक्ष में है। वेदान्ती भी शट्प्रमाणवादी हैं। पौराणिकों को आठ प्रमाण–1, प्रत्यक्ष, 2–अनुमान, 3–शब्द, 4– उपमान, 5– अर्थापत्ति, 6– अभाव, 7–सम्भव और 8– ऐतिह्य मान्य हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण

न्याय दर्शन के अनुसार–'इन्द्रिय का अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान 'प्रत्यक्ष प्रमाण' कहलाता है। परन्तु इसमें तीन शर्तें बतलायी गयी हैं। प्रथम– वह ज्ञान 'अव्यपदेश्यम्' अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान, रूप, रस आदि के केवल शब्दजन्य न होकर वस्तुपरक ज्ञान होना अपेक्षित है। जैसे कि यह रस तिक्त है तो केवल तिक्त इस शब्द मात्र न होकर तिक्त रस की साक्षात् अनुभूति होना आवश्यक है इसी प्रकार दूसरा विशेषण ''अव्यभिचारी'' है अर्थात् वह ज्ञान व्यभिचरित नहीं होना चाहिए। जैसे कि मृगमरीचिका आदि के भ्रमात्मक ज्ञान से भिन्न ज्ञान होना अपेक्षित है। जैसे कि हमें दूर से जल प्रतीत हुआ, उसके समीप जाने पर भी जल ही का ग्रहण हो। त बवह ज्ञान अव्यभिचारी कहलायेगा। हमारी बौद्धिक–स्थिति प्रत्यक्ष ज्ञान में सन्देह रहित होनी चाहिए इसके लिए सूत्रकार ने ''व्यवसायात्मकम् अर्थात् निश्चयात्मक होना चाहिए। ''स्थाणुरेव, पुरूषएव'' का निश्चयात्मक ज्ञान व्यवसायात्मक कहलाता है।

सांख्य और योग दर्शन में प्रत्यक्ष ऐसा ज्ञान है जो विषय से सम्बद्ध होकर उसके आकार को धारण कर लेता है। विज्ञानभिक्षु की मान्यता है कि प्रत्यक्ष प्रमाण एक ऐसा ज्ञान अर्थात् बुद्धिवृत्ति है जो विषय से सम्बद्ध होती हुई सम्बद्ध वस्तु के विशय को धारण कर लेती है सांख्यकारिका ''प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्''[9] में अर्थात् प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से उसके विषय का निश्चयपूर्वक ज्ञान ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'अध्यवसाय' विशेषण में ही अव्यभिचारी आदि का अन्तर्भाव हो जाता है। सांख्य में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष के लिए अवश्य माना है किन्तु इन्द्रियाँ विषय के पास नहीं जाती। इन्द्रियाँ तो केवल द्वार है जिनके माध्यम से केवल बुद्धिवृत्ति बाहर जाकर विषय के सम्पर्क में आकर तदाकार हो जाती हैं। अद्वैत वेदान्त के अनुसार वेदान्त परिभाषा में प्रत्यक्ष प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष का लक्षण करते हुए दिङ्नाग ने कहा है कि कल्पना से रहित, नाम–जाति आदि से रहित ज्ञान प्रत्यक्ष है।[10] धर्मकीर्ति ने इसका परिस्कार करते हुए कहा–कल्पना से रहित अर्थात्–अभ्रान्त ज्ञान प्रत्यक्ष है।[11] इन्होंने प्रत्यक्ष का लक्षण इन्द्रियार्थजन्य नहीं किया है। धर्मोत्तर ने साक्षात्कारि ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। जिसका अर्थ है इन्द्रियाश्रित ज्ञान नहीं होना चाहिए।

अनुमान प्रमाण

अनुमान प्रमाण को भारतीय दर्शन में चार्वाक को छोड़कर सभी ने स्वीकार किया है। अनुमान प्रमाण के विषय में तथा उसके अवयव, लिंग, परामर्श, व्याप्ति आदि पर भारतीय दार्शनिकों ने विशद विवेचना प्रस्तुत की है। अनुमान की जिन समस्याओं पर विवाद है उनमें प्रथम पक्षता अर्थात् अनुमान ज्ञान के प्रमुख साधन; तश्तीय हेतु रूप, चतुर्थ–व्याप्ति और पाँचवी समस्या हेत्वाभस अर्थात् असत् हेतु है।

शब्द प्रमाण

भारतीय दर्शनों में चार्वाक, बौद्ध और वैशैषिक को छोड़कर सभी शब्द प्रमाण को स्वीकार करते हैं। मीमांसकों में प्रभाकर केवल श्रुति को ही स्वतंत्र शब्द– प्रमाण मानते हैं। बौद्ध और वैशैषिक दर्शन शब्द को प्रमाण नहीं मानते इसे अनुमान के अन्तर्भूत कर लेते हैं। चार्वाक दर्शन को प्रमाण नहीं मानता। न्याय दर्शन में शाब्द प्रमाण की परिभाषा करते हुए कहा है कि ''आप्तोपदेशः शब्दः''[12] जिस विद्वान ने जस विद्या को या ज्ञान को प्राप्त कर लिया है उस ज्ञान के विषय में उसके कथन को शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है। वात्स्यायन ने ऋषि, आर्य और म्लेच्छों में इसे समान रूप में स्वीकार किया है। सांख्य दर्शन में शब्द प्रमाण की दो रूपों में व्याख्या प्राप्त होती है। श्रुति वचन को शब्द प्रमाण कहा है और एक बालक अध्यापक और पिता आदि से शब्दार्थ सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करता है वह भी शब्द प्रमाण के अन्तर्गत माना गया है। भारतीय शड्दर्शनकार किसी न किसी रूप में वेद को स्वतः शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं।

उपमान प्रमाण

भारतीय दर्शनों में उपमान प्रमाण को मीमांसा, न्याय तथा अद्वैत वेदान्त द्वारा प्रमाण माना गया है। न्याय दर्शन में प्रसिद्ध साधर्म्य से साध्य सिद्ध किया जाना उपमान प्रमाण है।''13 जैसे कि किसी ने कहा कि जैसी गौ होती है वैसी गवय होती है। वन में जाने पर गौ–सादृश्य पशु को देखकर यह जाना कि यह गवय है। मीमांसक न्याय की उपमान परिभाषा का खण्डन करते हैं। सांख्य आदि अन्य दार्शनिक उपमान का अन्य प्रमाणों में अन्तर्भाव करते हैं।

अर्थापत्ति प्रमाण

मीमांसा दर्शन के दोनों सम्प्रदाय भाट्ट और प्रभाकर तथा अद्वैतवेदान्त– अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। ''अर्थादापद्यते इति अर्थापत्तिः' जो ज्ञान अर्थ से प्राप्त होता है वह अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है। जैसे कि देवदत्त मोटा हो रहा है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अर्थात् वह रात्रि को खाता है। दूसरे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि देव जीवित है, परन्तु वह घर में नहीं है अर्थात् देव का घर में अभाव है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अर्थात् घर से बाहर है। मीमांसा में छः प्रमाणों वाली छः प्रकार की अर्थापत्ति को माना गया है। इसी प्रकार वेदान्त परिभाषा में भी अथापत्ति को दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति– दो रूपों में स्वीकार किया है। अन्य दार्शनिक अर्थापत्ति को पश्थक् प्रमाण स्वीकार न करके अन्य प्रमाणों में उसका अन्तर्भाव स्वीकार करते हैं।

अभाव अथवा अनुपलब्धि प्रमाण

अद्वैत वेदान्त में अनुपलब्धि को अलग से प्रमाण रूप में प्रतिष्ठापित किया है। जैसे कि यहाँ घटाभाव है। घर के अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण से होता है। इस विषय में दार्शनिक आचार्यों में पर्याप्त मतभेद रहा है। मीमांसा, सांख्य, न्याय वैशैषिक आदि दर्शनो में अनुपलब्धि को स्वतंत्र प्रमाण नहीं स्वीकार किया जाता है। किसी अन्य प्रमाण

में ही उसका अन्तर्भाव स्वीकार किया जाता है।

ऐतिह्य प्रमाण

जिस प्रमाण के अन्तर्गत यह जाना जाता है कि इति अर्थात् ऐसा निश्चयपूर्वक हुआ है। जिस प्रमाण में समस्त इतिहास आता है। क्योंकि उपन्यास और इतिहास में स्पष्ट अन्तर होता है। जैसे कि दशरथ, राम आदि अनेक राजाओं का इतिहास, रामायण और महाभारत के युद्धों को हम प्रमाणिक रूप में स्वीकार करते हैं। परन्तु भारतीय दार्शनिक इसे अन्य प्रमाण रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि यह शब्द प्रमाण के अन्तर्गत ही माना जा सकता है।

इस शोध–पत्र में प्रामाण्यवाद के संदर्भ में आस्तिक शड्दर्शनों के मूल सूत्रकारों उनके व्याख्याकारों तथा अन्य प्रकरण ग्रन्थों के आधार पर शास्त्रीय विश्लेषण द्वारा विविध प्रमाणों की समन्वित समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

संदर्भ

1. *एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनं–योग दर्शन व्यासभाष्य 2/24*
2. *दश्गदर्शनशक्त्योरेकात्मते वास्मिता– योग दर्शन 2/6*
3. *तच्चादर्शनं बन्धकारणं दर्शनान्निवर्तते। व्यासभाष्य। 2/24*
4. *परमार्थतस्तु ज्ञानादर्षनं निवर्तते। व्यासभाश्य। 3/55*
5. *किंचेदमदर्शनं नाम? किं गुणानामधिकारः? आहोस्वित् दृशिरूपस्य स्वामिनो दर्शितविषयस्य प्रधानचितस्यानुत्पादः? स्वस्मिन्दृश्ये विद्यमाने दर्शनाभावः। किमर्थवत्ता गुणानाम्? अथाविद्या स्वचित्तेन सहानिरूद्धा स्वचित्तस्योत्पत्तिबीजम्।*
6. *प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः– वात्स्यायन न्याय भाष्य 1/1/1*
7. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृष्ठ–182*
8. *इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् न्याय दर्शन ।।4।।*
9. *प्रतिविषयाध्यसायो दृश्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्*
   तल्लिंगलिंगपूव्रकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु ।।5।। सांख्यकारिका
10. *'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुत्तम', प्रमाणसमुच्चय (दिङनाग)*
11. *''तत्रं कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम'' न्यायबिन्दु (धर्मकीर्ति)*
12. *आप्तोपदेशः शब्दः ।।7।। न्याय दर्शन प्रथमोऽध्यायः।*
13. *प्रसिद्ध साधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्।।6।। न्यायदर्शनम् प्रथमोऽध्यायः।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-83-89

संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व

डॉ० सत्येन्द्र नाथ तिवारी *

संसार में समग्र वाङ्मयों में संस्कृत वाङ्मयों अपना अप्रतिम स्थान रखता है। जिसके मूल में इसकी 'विश्वबन्धुत्व' की भावना ही दिखलायी पड़ती है, जो इसको अन्य वाङ्मयों से विशिष्ट बना देती है। इस वाङ्मयों मय के प्रत्येक भाग में यथा–वेद, उपनिषद पुराण, दर्शन व साहित्य सभी में विश्वबन्धुत्व की भावना पग–पग पर दिखलायी पड़ती है, जिसकी झलक हमें स्पष्टतया उपनिषद के इस उदघोष से मिल जाती है–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित्दुःखभागभवेत्''।।[1]

अर्थात् सभी लोग सुखी हों, सभी लोग निरोग रहे, सभी लोग कल्याण देखें एवं किसी को भी किसी प्रकार का दुःख न हो। ऐसी कामना जो हमारे संस्कृत वाङ्मयों मय में की गयी है, वह इसमें विश्वबन्धुत्व की भावना को और अधिक प्रमाणित कर देती है। चूँकि यह विश्वबन्धुत्व की भावना है, क्या ? इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर हम पाते हैं, कि– अखिल जगत के प्राणियों के प्रति जो बन्धुता की भावना होती है, उसे ही विश्वबन्धुत्व के नाम से अभिहित किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो सबके सुख की कामना ही विश्व बन्धुत्व की भावना है।

विश्व बन्धुत्व के बिना अखिल संसार में शान्ति एवं सौहार्द्र की स्थापना कभी भी नही किया जा सकता। वस्तुतः संस्कृत साहित्य विश्वबन्धुत्व की भावना से कतनी ओत–प्रोत है ? यह जिज्ञासा होने पर हमें ज्ञात होता है कि इस साहित्य में विश्वबन्धुत्व के अनेकानेक उदाहरण यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी गणना कर पाना अतिश्रमसाध्य है। क्योंकि इसके मूल में ही विश्वबन्धुत्व की भावना सन्निहित है। फिर भी सामान्यरूपेण हम संस्कृत साहित्य का अवलोकन करते हैं, तो यह पाते हैं कि इसमें जो मङ्लाचरण, नान्दी पाठ, भरतवाक्य आदि जो करने या लिखने की परम्परा दिखलायी पड़ती है, वह विश्वबन्धुत्व की ही भावना को पूर्णतया स्पष्ट करती है। इसके अतिरिक्त इस साहित्य के जो नीतिग्रन्थ व कथाग्रन्थ हैं, उनमें भी पग–पग पर सबके सुख, कल्याण व शान्ति के निमित्त ही बहुसंख्यक उदाहरण लिपिबद्ध मिलते हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में व्याप्त अनेकों विश्वबन्धुत्व की भावना प्रकट करने वाले उदाहरणों में से कतिपय उदाहरणों का अवलोकन वांछित है, जो कि पूर्णतया इस भावना को प्रकट करने में समर्थ है। इस क्रम में सर्वप्रथम''नाटकों में रम्य'' अभिज्ञानशाकुन्तलम् के मङ्लचरण पर दृटिपात करने पर हमें विश्वबन्धुत्व की झलक मिल जाती है–

**असिस्टेण्ट प्रोफेसर–संस्कृत श्यामेश्वर ,महाविद्यालय सिकरीगंज, गोरखपुर (उ0प्र0)*

'' या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'' ।।[2]

इस मङ्लाचरण में महाकवि कालिदास ने भगवान शिव की जो प्रत्यक्ष दिखने वाली जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी एवं वायुमयी अष्ट मूर्तियाँ हैं। उन सभी मूर्तियों से युक्त होकर भगवान शिव आप सभी लोगों की रक्षा करें, ऐसी कामना प्रकट की है। जो कि विश्वबन्धुत्व को ही प्रकट करता है। इसी प्रकार इसी ग्रन्थ के भरतवाक्य में भी विश्वबन्धुत्व की भावना को स्पष्ट देखा जा सकता है, जिसमेंः–

''प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वतीश्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।।[3]

महाकवि यह इच्छा प्रगट करते हैं, कि जो नीललेहित अर्थात भगवान शंकर हैं, वे हमारे सभी पूर्वजन्म को नष्ट कर दें। यहाँ पर हमारे से तात्पर्य हम सभी सहृदयों से ही अभीष्ट है। अतः यहाँ भी विश्वबन्धुत्व की ही भावना स्पष्ट होती है। साथ ही साथ हर्ष प्रणीत ''रत्नावली'' नाटिका का भरतवाक्य भी इसी भावना को व्यक्त करता हुआ दर्शनीय है–

उर्वीमुद्यामसस्यां जनयतु विसृजन् वासवोवृष्टिमिष्टा–
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः।
आकल्पानतं च भूयात्समुपचित्सुखः संगमः सज्जनानां,
निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः।।[4]

इस भरतवाक्य में कवि ने पृथ्वी के धन्धान्य से युक्त होने की कामना, दुष्टों के वज्र एवं दुर्जय के समान चुभने वाले वचनों को शान्त होने की कामना एवं सुख की वृद्धि होने की कामना के द्वारा विश्वबन्धुत्व की झलक प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है।

इसी प्रकार इसके (रत्नावली) मङ्लाचरण (नान्दी पाठी) में भी कवि ने शिव एवं पार्वती के बीच विखरती हुई पुष्पों की अंजली के द्वारा सबके रक्षा होने की कामना की है, जो कि विश्वबन्धुत्व को ही चरितार्थ करता हैः–

इसी क्रम में आधुनिक नाट्य संस्कृत साहित्य क मूर्धन्य विद्वान् शिवजी उपाध्याय प्रणीत 'नाट्यप×चरत्नम्' के विविध उद्धरण इसी भावना को पोषित करते हैं–

धातः!कथं नु तनया धनहीन गेहे,
सन्दीयते जगति दुःखशतानि सोढुम्।
कन्या भवेद् यदि तदा तु भवेत्समृद्धिः,
नो चेत्सुताविरहिताः पितरो भवेयुः।।[6]

इसमें कवि विधाता से कामना करता है कि किसी भी घर में यदि कन्या है, तो उस घर में समृद्धि भी हो, नही तो पिताओं को कन्याओं से रहित ही रने दिया जाय। इस प्रकार यहाँ पर व्यापक रूप से सभी पिताओं की सुखद स्थिति की कामना किये जाने से विश्वबन्धुत्व की भावना पूर्णरूपेण चित्रित होती है। इसी प्रकार 'नाट्यप×चरत्नम्' के 'कालकूटम्' इस दूसरे एकांकी रूपक के मङ्लाचरण में भी शिवजी उपाध्याय द्वारा इसी विश्वबन्धुत्व को चित्रित करने का सार्थक प्रयास किया गया है–

''विश्वं विष्वग विपन्नं ज्वलदिव परितः कालवत्कालकूट,
ज्वालोल्लीढं विमूढं सुरमुनिनिकरं वीक्ष्य मूर्च्छन्तमारात्।
मन्थानोत्थाम्बुराशि प्रखरतरकटूद्दामकल्पान्तकारि,
क्ष्वेडोऽधारि स्वकण्ठे सपदि कृतयुगे येनपायात्स ईशः।।''[7]

इस प्रकार अपनी इस कामना के द्वारा कवि ने अपने साहित्य में विश्वबन्धुत्व को ही उकेरने का सफल प्रयास किया है। संस्कृत साहित्य के अन्य नाट्य ग्रन्थों के अवलोकन के क्रम में जब हम भास प्रणीत ''स्वप्नवासवदत्तम'' नाटक पर दृष्टिपात करते हैं, तो वहाँ भी नान्दी पाठ में कवि ने इसी विश्वबन्धुत्व की कामना की है, जिसमें वह कहता है कि–

''उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्यत्वाम्
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तक्रमौ भुजौ पाताम्।।[8]

कमलों के समान कोमल और वसन्तऋतु के समान् मनोहर, बलराम की दोनों भुजाएं आप सभी लोगों की रक्षा करें। यहाँ पर कवि ने सभी लोगों के रक्षा करने की कामना के द्वारा ही विश्वबन्धुत्व को ही व्यक्त किया है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व के अवलोकन के क्रम में जब हम इसके अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं, तो पाते हैं, कि नीतिग्रन्थों में भी विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रकट करने वाले अनेकों उद्धरण सन्निहित हैं। जिसमें भर्तृहरि विरचित नीतिशतकम् अपना अप्रतिम स्थान रखता है। जिसके कुछ प्रमुख उदाहरण संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व और भी स्पष्ट कर देते हैं। यथा–

'येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।[9]

यहाँ पर भर्तृहरि जी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिसके पास विद्या नही, तप नही, ज्ञान नही, शील नही, धर्म नहीं, होता है, ऐसे लोग इस अखिल वसुन्धरा के लिए केवल भार स्वरूप ही होते हैं। इस प्रकार कवि सम्पूर्ण संसार के लोगों को यहाँ लक्षित करके अपने इसी विश्वबन्धुत्व की भावना की झलक देने का सफल प्रयास किया है।

इसी ग्रन्थ के एक अन्य उदाहरण में भी इसी भावना को चित्रित करने का प्रयास कवि द्वारा इस प्रकार किया गया है–

''जाड्यं धियो हरति सि×चति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपा करोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सa¼तिः कथय किं न करोति पुंसाम्''[10]

इसके द्वारा कवि यह स्पष्ट करना चाहता है कि विश्वबन्धुत्व की भावना को सत्स(ति के द्वारा ही अत्यधिक प्रगाढ़ एवं व्यापक बनाया जा सकता है। क्योंकि यह सत्स(ति सभी प्राणियों के बुद्धि की जड़ता को नष्ट करती है, एवं वाणी में विनम्रता का संचार करती है। मनुष्यों के दुष्कर्मों को नष्ट करती है। तथा चित्त को आहलादित करती है, जिसके फलस्वरूप यह किसी में किसी के प्रति विद्वेष की भावना शून्य करती है, जिससे सभी प्राणियों में भाईचारे की भावना विकसित होती है। इस प्रकार यह सत्स(ति ही सभी मनुष्यों के सभी कार्यों को सम्पादित करती हे, जिससे ही सभी में विश्वबन्धुत्व की भावना भी प्रगाढ़ होती है। ऐसे विशिष्ट उपायों को बतला करके कवि अपने ग्रन्थ में विश्वबन्धुत्व की भावना को ही प्रकट करता है।

इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण संस्कृत साहित्य में प्रचुर संख्या में देखने को सहज ही मिल जाते हैं, जो कि विश्वबन्धुत्व की भावना को चित्रित करते हैं। जैसे कहा भी गया हैः–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[11]

अर्थात यह अपना है और यह दूसरे का है, ऐसी गणना तो संकुचित हृदय वाले ही करते है। किन्तु उदार हृदय वालों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना परिवार के समान होता है। यहाँ सम्पूर्ण पृथ्वी को ही परिवार बतलाकर कवि संस्कृत साहित्य में व्याप्त विश्वबन्धुत्व की भावना की ही तरफ संकेत करना चाहता है। प्राचीनतम संस्कृत साहित्य स्वतंत्र भारत के चिन्तन की अभिव्यक्ति है, जिसमें हमारे देश की राष्ट्रीय भावना सुरक्षित है। इसी राष्ट्रीय भावना को आगे बढ़ाने वाला संस्कृत साहित्य ''स्व'' की संकीर्ण भावना को त्याग कर अपने युग के प्रत्येक प्राणी के मंगल की कामना करता है। संस्कृत साहित्य ही स्वतंत्र भारत के साहित्यिक चिन्तन की पूर्ण अभिव्यक्ति है, जो विश्व बन्धुत्व का संदेश संसार के सभ्य मानवों तथा जातियों को भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर कर रहा है। संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व का क्षेत्र बड़ा व्यापक रहा है।

वेदों में जो कि भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है, उसमें भी विश्व बन्धुत्व की भावना सहज दृष्टिगोचर होती है। जैसा कि ऋग्वेद में उल्लखित 'राष्ट्र' शब्द से आर्यों की समस्त भावना के साथ देश, राज्य, जाति व संस्कृति सभी का समग्र दृश्य उपस्थित हो जाता है। वेदों में जो पृथ्वी को माता–पिता के रूप में वर्णित किया गया है, उससे विश्व बन्धुत्व की ही भावना स्पष्ट होती है। इस भावना की उदात्त

कल्पना का प्रथम दर्शन हमें ऋग्वेद के मंत्रों में मिलता है। ऋग्वेद का नदी–सूक्त अपने देश की पवित्र नदियों के प्रति उच्च आग्रह, हार्दिक अनुराग तथा प्रगाढ़ प्रेम का प्रतिनिधित्व करता हुआ विश्व बन्धुत्व की भावना को ही प्रबलतम करता हुआ प्रतीत होता है, यथा–

इमं च गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता पुरूष्ण्या।
असिक्न्या मरूद्वृद्धे वितस्तयाऽर्जिकीये श्रुणृहया सुषोमया।।[12]

इसी प्रकार उपनिषदों व ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विश्वबन्धुत्व की अभिव्यक्ति अनेक स्थालों पर मिलती है। उपनिषदों में जाति–जीवन के उत्थान को संदेश देती हुयी निम्न पंक्ति को विस्मृत नही किया जा सकता–

त्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।[13]

अर्थात 'उठो जागो और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदा संघर्षशील रहो'। इस प्रकार विश्वबन्धुत्व की भावना व्यक्तिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य, अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य व धार्मिक मूल्य भी है। इस मूल्य को सच्चे मन से अपनाये बिना बन्धुत्व की भावना अधूरी चरितार्थ होती है तथा राष्ट्र और विश्व भी अधूरा परिलक्षित होता है।

इसी क्रम में पुराणों में भी विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्र भावना और भी मुखरित होती है तथा राष्ट्र के एकत्व और देश भक्ति का सरसराग स्पष्टतः सुनायी पड़ता है। इनमें जहाँ एक ओर जन्म भूमि के वन्दना के रूप में तद्युगीन बन्धुत्व की भावना दृष्टिगोचर होती है, वहीं दूसरी ओर इसी भूमि की रमणीयता, सुहानी ऋतुएं, सघन वन सम्पत्ति तथा पवित्र नदियों के गुणगान एवं सस्य श्यामला भूमि को ''देवभूमि'', ''स्वर्गभूमि'' आदि संज्ञाओं से अभिहित किये जाने के पीछे विश्वबन्धुत्व की भावना ही प्रतीत होती है। नानागुण सम्पन्न ऐसी धरती पर जन्म लेने के लिए देवताओं का लालायित होना स्वाभाविक ही है–

गायन्ति देवाः खलु गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वार्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।[14]

अर्थात भारत भूमि में जन्म लेने वाले धन्य हैं, देवता भी जिनके गुणगान करते हैं। इसमें भी जननी जन्मभूमि की स्तुति सर्वत्र विद्यमान है, जो इसी बन्धुत्व की भावना को प्रगाढ़ करती है।

इसी क्रम में बाल्मिकी ने जो राम के राज्य का सुखद तथा सुभग चित्रण किया है, वह राजनीति शास्त्र को एक अनुपम देन है, जिसमें आराजक जनपद में कृषि और गोरक्षा से जीने वाले सुरक्षित तथा धनी प्राणी दस्यु दानवों के भय से द्वार खोलकर कभी नही सोते थे। कालीदास भी हमारे भारतीय साहित्य के महनीय राष्ट्रीय कवि हैं। अतः उनके काव्यों में देशप्रेम एवं विश्वबन्धुत्व की छाप मिलना कोई बड़े आश्चर्य की बात नही है। कालीदास के शाकुन्तलम नाटक के चतुर्थ अंक में शकुन्ता के विदाई के समय जो वृक्षों द्वारा उन्हें भिन्न–भिन्न आभूषणों को प्रदान करना चित्रित किया गया है, वह

विश्वबन्धुत्व की भावना को ही प्रकट करता है यथा–

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरूणा माङ्ल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।[15]

इसी प्रकार इसी अंक में एक और स्थल पर शकुन्तला वृक्षों को बिना जो, बिना सीचे जल नही ग्रहण करती थी, आभूषणों के प्रिय होने पर भी उनके पल्लवों को नही तोड़ती थी, नवीन पुष्पों के प्रथम आगमन पर जो उत्सव आयोजित करती थी, ऐसी वह शकुन्तला आज आप सभी से जाने की अनुमति लेती है। ऐसा चित्रण विश्वबन्धुत्व की भावना को ही प्रसारित करता है, जो संस्कृत साहित्य में पग–पग पर चित्रित है–

पातुं न प्रथम् व्यवस्यति जलं युष्मासवपीतेषु या
नादत्ते पियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।[16]

एक अन्य स्थल पर विदायी के ही अवसर पर मृगियों द्वारा दुःखी होकर कुशों के ग्रास का निगीर्णन का दृश्य विश्वबन्धुत्व को ही प्रकट करता है, जिसमें मृगियों, वृक्षों आदि को बन्धुत्व के रूप में चित्रित किया गया है।

यह कवि समस्त विश्व को अखण्ड अविभाज्य के रूप में मानता तथा जानता है। इतना ही नही वह भारत वर्ष के भाव स्थल पर विराजमान हिमालय का प्रशंसक भी दिखलायी पड़ता है। तभी तो कुमारसम्भवम् महाकाव्य के मंगलाचरण में हिमालय की स्तुति करता हुआ दिखलायी पड़ता है। संस्कृत साहित्य के आधुनिक आशुकवि एवं नाटककार शिवजी उपाध्याय द्वारा प्रणीत 'नाट्यपंचरत्नम' एकांकी रूपक में यह विश्व बन्धुत्व की भावना और भी प्रबलतम् रूप में चित्रित हुई है, जिसमें राष्ट्रगौरवम् के प्रथम दृश्य मे समस्त राक्षकों के विनाश की भावना का चित्रण एवं समग्र दुष्टों के नाश की कामना करना इसी विश्वबन्धुत्व को प्रकट करता है–

रामीभूय समस्तराक्षसगणान् निन्ये क्षयं यत्पुरा,
कृष्णीकृत्य वपुश्च कौरवकुलं चक्रे कृतान्तातिथि।
गान्धीभूय च पारतन्त्र्यनिगडं चिच्छेद यत्स्वात्मन–
स्तद् वन्दे सुरवृन्दवन्दितपदं राष्ट्र परं दैवतम्।।[17]

इस प्रकार भारतीय साहित्य में बन्धुत्व की उन्नत कल्पना राष्ट्र के दर्शन हमें नाना युगों में प्राप्त होते हैं। भारतीय कवियों की मनोरम वाणी में बन्धुत्व का अपूर्व संदेश उल्लसित होता है। वे भारत को एक राष्ट्र ही नही मानते, प्रत्युत उसे स्वर्ग से भी बढ़कर मानते हैं। सामान्य दृष्टि से यह कहा जा सकता है, कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में बन्धुत्व की भावना, राष्ट्रीय भवना, देश भक्ति, देशोन्नति एवं देशप्रेम के रूप में मुखरित हुई है। संस्कृत साहित्य का उद्देश्य विश्वबन्धुत्व की भावना का गौरवगान करना स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। यह साहित्य संकीर्ण राष्ट्रीयता से उपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को लेकर चलने वाला, समष्टि के कल्याण की कामना करने वाला दिखलायी

पड़ता है। यही नही, यह साहित्य भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला इसी बन्धुत्व की भावना से प्रगाढ़तम् करता है, जो जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा एवं संस्कृति की भिन्नताओं से परे दिखलायी पड़ता है। तभी तो वैदिक युग से लेकर आजतक इस साहित्य में विश्वबन्धुत्व की भावना अखण्डित रूप में चली आ रही है, जो समग्र विश्व को एक सूत्र में बांधे हुए है। क्योंकि स्वातंत्रयोत्तर भारत में अनेकानेकों बार विदेशी आक्रमणों के बावजूद भी यहां कि एकता खण्डित न होने के पीछे इसी विश्वबन्धुत्व का प्रगाढ़ बन्धन ही है। फलतः संस्कृत साहित्य में राष्ट्रमण्डल की भावना एक राष्ट्र की कल्पना राष्ट्र को जीवित इकाई के रूप में देखने की भावना विश्वबन्धुत्व से ओतप्रोत दिखलायी पड़ती है।

अतः यह अनेकानेक उदाहरणों के द्वारा यह पूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाता है, कि अन्य साहित्यों की तुलना में संस्कृत साहित्य विश्वबन्धुत्व को प्रगाढ़ एवं व्यापक बनाने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है।

सन्दर्भ

1– वृहदारण्यक उपनिषद।

2– अभिज्ञानशाकुन्तलम्–1.1।

3– अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 7.35

4– रत्नावली–4.22

5– रत्नावली–1.1

6– नाट्यप×चरत्नम् यौतकम्–01

7– नाट्यप×चरत्नम् कालकूटम्–01

8– स्वप्नावासवद्त्तम्–1.1

9– नीतिशतकम्–13

10– नीतिशतकम्–23

11– हितोपदेश–1.69

12– ऋग्वेदन नदी–सूक्त–10/75

13– कठोपनिषद–अध्याय–1 वल्ली–3/14

14– विष्णु पुराण–2, 3, 25।

15– अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/5

16– अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/9

17– नाट्यपंचरत्नम्–राष्ट्रगौरवम्–प्रथम दृश्य–02

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-90-94

भर्तृहरि और वाक् तत्त्व

*डॉ० सुधीर कुमार**

वैय्याकरणों के समाज में जो एक सबसे बड़ी समस्या थी, उसको प्रकृति और प्रत्यय, ध्वनि और स्फोट दो विभागों में विभक्त करके एक को साधन और दूसरे को साध्य बताया है। स्फोट साध्य है, ध्वनि साधन है, प्रतिभा साध्य है, कर्म साधन है। भर्तृहरि ने वाक्यपीदयम् के द्वितीय काण्ड में वैय्याकरणों के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है कि समस्त शास्त्रों का विवेचन केवल व्यावहारिक उपयोगिता के लिए है, वे केवल अबुधों को बोध कराने के लिए है। शास्त्र तत्व को प्रकट करने में असमर्थ हैं, क्योंकि तत्व आत्म साक्षात्कार का विषय है, वह स्वानुभूति संवेद्य है। अतः शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से, विभिन्न पद्धति से, अविद्या का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार बालकों को शिक्षा देने के लिए रेखा आदि का प्रयोग करके, गाय आदि के चित्र के माध्यम से, जो वस्तुतः असत्य है उससे सत्य का बोध कराया जाता है, उसी प्रकार से अविद्या एवं असत्य प्रतिपादक शास्त्रों के विद्या एवं सत्य का ज्ञान कराया जाता है। परिणाम यह होता है कि अविद्या के द्वारा विद्या का, कर्म के द्वारा ज्ञान का, ध्वनि के द्वारा स्फोट का, बुद्धि के द्वारा प्रतिभा का निश्चित, नित्य, सत्य और निर्विकल्प स्वरूप ज्ञात और प्राप्त होता है–

व्यवहाराय मन्यते शास्त्रार्थ प्रक्रिया यतः।[1]
शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते।
अनागमविकल्पातुस्वयं विद्योपवर्तते।।[2]
उपायःशिक्षमाणानांबालानामपलापनाः।
असत्येवर्त्मनिस्थित्वाततः सत्यं समीहते।।[3]

भर्तृहरि के मत में अनित्य और नित्य के भेद से शब्द दो प्रकार का होता है। इनमें से प्रथम व्यावहारिक है। वाक्तत्व पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है। द्वितीय समस्त व्यवहारों का मूलभूत, क्रमरहित, सब के हृदय में सन्निविष्ट, कारण भूत एवं समस्त विकृतियों का आश्रय है–

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयोअस्य पादा द्वे शीर्षेसप्तहस्तासोअस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभोरोरवीतिमहोदेवोमर्त्यां आविवेश।।[4]

वहनित्य स्फोट रूप शब्द समस्त कर्मों का आधार है, समस्त तत्वों की परिणाम रहित प्रकृति है। वहसर्वेश्वर, सर्व शक्तिमान और महान् शब्द वृषभ है। वाग्योगवित् शास्त्रानुसार शब्द ज्ञान पूर्वक प्रयोग के द्वारा निष्पाप होकर, अहंकार की ग्रन्थियों को नष्ट करके शब्द ब्रह्म के साथ सायुज्य को प्राप्त होते हैं।[5]

वाक्य पदीयम् के ब्रह्मकाण्ड में वैखरी आदि चार वाणियों का स्पष्टीकरण किया

**सहायक आचार्य संस्कृत विभाग, पं0 महादेव शुक्ल कृषक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गौर, बस्ती, उ0प्र0।*

गया है। वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती इन तीन वाणियों का ही यह चमत्कार है, जो अनेक विभागों में विभक्त होने के कारण नाना रूपहै। महाभारत के अश्वमेध पर्व के अन्तर्गत 'ब्रह्मगीत' से उद्धरण दिया है कि वैखरी वाणी कंठ, तालु आदि स्थानों में वायु के विकृत होने पर जब विकृत वर्ण का स्वरूप धारण कर लेती है तब उस वाणी को वैखरी वाणी कहते हैं। इसमें प्राण वायु का संचालन रहने के कारण यह प्राणवायु से निबद्ध और सम्बद्ध रहती है–

स्थानेषुविवृतेवायौकृतवर्णपरिग्रहा।
वैखरीवाक् प्रयोक्तृणांप्राणवृत्तिनिबन्धिनी।।[6]

जो अन्तः संकल्प रूप है, बुद्धि ही जिसका उपादान कारण है, जो क्रमयुक्त है और प्राणवृत्ति से परे है, वह सूक्ष्म है, हृदयस्थ है, यद्यपि उसमें क्रमों का संहार है, फिर भी क्रम शक्ति से युक्त है, वह अभिव्यक्ति से रहित है, उसमें पदों का प्रत्यक्ष नहीं होता है, वह व्यवहार का कारण भूतहै–

केवलंबुद्धयुपादानाक्रमरूपानुपातिनी।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमावाक् प्रवर्तते।।

पश्यन्ती वाणी उसको कहतेहैं जिसमें न भेद है और न क्रम है। वह केवल प्रकाश रूप है, वहलोक–व्यवहारातीत है। वह अन्तःस्थल में प्रकाश रूप है। वह आकारों से रहित निराकर रूप है। वह असंख्य प्रकार की है–

1. परिछिन्नार्थप्रत्यवभास
2. संसृष्टार्थप्रत्यवभास
3. प्रशान्तसवार्थप्रत्यवभास

भर्तृहरि ने वाक्तत्व की उपयुक्त तीन अवस्थाओं में चतुर्थ अवस्था का समावेश किया है। भर्तृहरि ने जो वाक्त्रयी लिखा है उसका अभिप्राय यही है कि वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती तक ही वाक्तत्व का विवेचन सम्भव है। परा अवस्था में द्वैत बुद्धि का सर्वथा अभाव हो जाता है और वाक्तत्व के साक्षात्कार के कारण अधिकार की निवृत्ति हो जाती है–

वैखर्यामध्यमायाश्चपश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।
अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः पर पदम्।।[7]

शब्दतत्त्व से अर्थतत्त्व की निःसृति

वाक्य पदीयकार ने शब्द तत्व से समस्त अर्थ तत्व अर्थात् समस्त पदार्थत्मक जगत् की सृष्टि मानीहै। इसके समर्थन में हेलराज ने श्रुति का वचन उद्धृत किया है कि–समस्त ब्रह्माण्ड स्फोट रूप शब्दतत्व का ही परिणाम है, उसका ही विकास है। शब्द तत्व ही शब्द शक्ति के रूप में सृष्टि को निबद्ध और सम्बद्ध किये हुए है। वही सृष्टि से सम्बन्ध तत्व है। शब्द की मात्राओं से अर्थात् मूल प्रकृति के प्रतिभा तत्व से सृष्टि

प्रकाशावस्था में आती है, प्रत्यक्ष का विषय होती है। प्रलयावस्था में यह समस्त अर्थ तत्व उसी शब्द तत्व मेंलीन होजातेहैं–

ब्रह्मेदं शब्दनिर्माण शब्दशक्तिनिबन्धनम्।

विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते।।[8]

भर्तृहरि ने वेद और ब्राह्मणादि के मन्तव्य को उद्धृत करते हुए कहा है कि यह विश्व शब्दतत्व का ही परिणाम है। यह समस्त सृष्टि सर्वप्रथम छन्दों का अर्थात् प्रतिभा–तत्व से ही विकसित होताहै–

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याग्नायविदोविदुः।

छन्दोभ्य एवप्रथमेतद् विश्वं व्यवर्तत।।[9]

इसलिए श्रुति का कथन है कि वह सारे शब्दों और अर्थतत्वों का कारण मूल प्रकृतिहै–

'स हिसर्वशब्दार्थप्रकृतिः।'[10]

शब्दब्रह्म का व्यापकत्व

भर्तृहरि की विवेचन पद्धति सर्वथा दार्शनिक है। वाक्य पदीय में जो शब्द और अर्थ का विवेचन प्राप्त होता है वह व्याकरण तक ही सीमित नहीं है–

'प्रज्ञाविवेकलभतेभिन्नैरागमदर्शनैः।

कियद् वा शक्यमुन्नेतुंस्वतर्कमनुधावता।'[11]

शब्द ब्रह्म आदि और अन्त से रहित है, अक्षर है, उसका ही अर्थ के रूप में विवर्त होता है, जिससे इस संसार का कार्य चलताहै–

'अनादि निधनंब्रह्म शब्दतत्त्वंयदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेनप्रक्रियाजगतोयतः।'[12]

वाक्य पदीयकार के मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति का स्वरूप निम्न है। सृष्टि के आदि मेंअनादि–निधन, सर्व ग्राह्य–ग्राहकाकार–वर्जित पश्यन्ती वाणी रूप शब्द ब्रह्म रहता है। वह अपरिमित शक्तिशाली मायायुक्त होता हुआ प्रथम नाम रूपात्मक समस्त प्रपञ्च को बुद्धि में स्थापित कर यह संकल्प करताहै कि यह करूँगा। तब वह अपनी कलानामक स्वतंत्र शक्ति से युक्त होकर आकाश आदि पंचतन्मात्राओं को उत्पन्न करता है, उससे पञ्चभूतों की सृष्टि है और तद्नन्तर समस्त सृष्टि का विस्तार होता है। सृष्टि का विकास शब्द ब्रह्म से होता है और उसी में सृष्टि लीन हो जाती है–

तथेदममृतंब्रह्मनिर्विकारमविद्यया

कलुषत्वमिवापन्नंभेदरूपंविवर्तते

ब्रह्मेदं शब्दनिर्माणं शब्दशक्तिनिबन्धनम्

विवर्त शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते।[13]

भर्तृहरि कहते हैं कि शब्द संस्कार अर्थात् शब्दों का अपभ्रंशों से विवचेन परमात्मा की प्राप्ति का उपाय है। शब्दों के वास्तविक प्रवृत्ति तत्व को जानने वाला परब्रह्म को प्राप्त करताहै–

तस्माद् यः शब्दसंस्कारः सासिद्धिः परमात्मनः
तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञस्तद् ब्रह्मामृतमस्नुते।[17]

भर्तृहरि वेदों और ब्राह्मणों में प्रतिपादित वाक् शक्ति या शब्द शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि शब्दों में ही यह शक्ति है कि वह संसार को एक शृंखला में पिरोये हुए है–

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी
यन्नेवः प्रतिभात्मायंभेदरूपः प्रतीयते।[15]

वाक् शक्ति ही अर्थ निःसृत करती है अर्थात् वाक्तत्व ही बुद्धि रूप विवर्त को प्राप्त होता है फलतः अर्थविशेष का ज्ञान होता है। वाक् शक्ति ही समस्त व्यवहार का साधन भूत है। यही शक्ति ही अर्थ का विस्तार करती है और समस्त जगत् नाना रूपों को आत्मसात् करता हुआ उसी में निबद्ध है। उसी एकमात्र वाक् शक्ति का विभाजन ही सांसारिक व्यवहार के निष्पादन हेतु उत्तरदायी है–

वागेवार्थपश्यतिवागब्रवीतिवागेवार्थनिहितंसन्तनोति।
वाचैवविश्वंबहुरूपंनिबद्धं तदेतदेक प्रविभज्योपभुङ्कते।।[16]

भर्तृहरि ने वाक्य पदीय के प्रथम काण्ड में स्फोट का विस्तृत रूप से वर्णन किया। इनके अनुसार शब्द दो प्रकार का है, एक प्राण में अधिष्ठित, दूसरा बुद्धि मेंअधिष्ठित है। प्राण और बुद्धि में जो शक्ति विद्यमान है, वही शक्ति कंठ, तालु आदि स्थानों में विवर्त को प्राप्त होकर अक्षर भेद (क,ख..... इत्यादि) को प्राप्त होती है–

तस्य प्राणे च या शक्तिर्या च बुद्धौव्यवस्थिता
विवर्तमानास्थानेषुसैषाभेदंप्रपघते।[17]

अर्थ का लक्षण करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि जिस शब्द विशेष के उच्चारण से जिस अर्थ विशेष की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है–

यस्मिस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते
तमाहुरर्थतस्यैवनान्यदर्थस्य लक्षणम्।[18]

वाक्य पदीय कार ने अर्थ की प्रधानता को स्वीकार किया है। अर्थ की प्रधानता का भाव यह है कि जब शब्द से अर्थ का ज्ञान होता है, तब शब्द और अर्थ दोनों की उपस्थिति होने पर भी अर्थ को ग्रहण किया जताा है। शब्द अर्थ बोधन का साधन है, अर्थबोध का विषय है–

लोकेऽर्थाशस्यैवप्राधान्यम्।[19]

इन्होंने शब्द को लोक व्यवहार का साधन बताया है। जब वक्ता किसी अर्थ को दूसरे को बताना चाहता है तो सर्वप्रथम उसकी बुद्धि शब्दों का आश्रय लेती है। वह अपनी बुद्धि में जिन अर्थों को व्यक्त करना चाहता है, उन अर्थों के बोधक शब्दों के ज्ञान से ही अर्थ का ज्ञान होगा, शब्दों को ध्यान पूर्वक सुनता है। शब्द ही वक्ता के भाव को श्रोता के हृदय में निर्धारित करता है–

यथाप्रयोक्तुः प्राग् बुद्धिः शब्देष्वेवप्रवर्तते।
व्यवसायोग्रहीतृणामेवंतेष्वेव जायते।[20]

शब्द बोध में शब्द और अर्थ दोनों का ज्ञान होता है। अतः जिस प्रकार अर्थ का क्रियाओं में उपयोग होता है, उसी प्रकार शब्द का भी उपयोग क्यों नहीं होता। इसके उत्तर में वाक्य पदयीकार कहते हैं कि शब्द का उपयोग है अर्थ का बोध कराना, अतः अर्थ मुख्य और शब्द गौण होकर रहता है। जिस प्रकार विशेषण का कार्य विशेष्य की गुण बोधता है, उसी प्रकार शब्द भी अर्थ का विशेषण है–

अर्थोपसर्जनीभूतानभिधेयेषुकेवुचित्
चरितार्थान् परार्थत्वान्नलोकः प्रतिपद्यते।[21]

शब्द दो प्रकार का होता है, एक बोध्य और दूसरा बोधक। शब्द में बोध्य और बोधक शक्ति होने के कारण यदि वह शब्द कार्य में उपयोग किया गया तो उसकी बोधकता अर्थात् अन्य अर्थ को बोधित करने की शक्ति को नहीं रोका जा सकता है, अतएव लोक व्यवहार में शब्द के उच्चारण करने पर उसके अर्थों को कार्य में लाया जाता है–

यो य उच्चार्यते शब्दोनियतं न स कार्यभाक्
अन्यप्रत्यायने शक्तिर्नतस्य प्रतिबध्यते।[22]

संदर्भ

1. *वाक्य पदीयम् 2.234*
2. *तदैव, 2.235*
3. *तदैव, 2.240*
4. *ऋग्वेद, 4.58.3*
5. *पुण्यराज वाक्य पदीयम्, 1.32*
6. *तदैव, 1.44*
7. *तदैव, 1.44*
8. *वाक्य पदीयम् टीका, 1.1*
9. *वाक्य पदीयम्, 1.8*
10. *तदैव, 1.128*
11. *तदैव, 1.119*
12. *तदैव, 2.492*
13. *तदैव, 1.1*
14. *तदैव, 1.333*
15. *तदैव, 1.119*
16. *तदैव, 1.4*
17. *तदैव, 1.120*
18. *तदैव, 1.121*
19. *तदैव, 2.123*
20. *तदैव, 1.245*
21. *तदैव, 2.31*
22. *तदैव, 2.32*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-95-98

तिहरे तलाक की समाप्ति : एक विधिक अध्ययन

*राज देव सिंह**

सारांश

स्वतन्त्रता तब तक प्राप्त नही की जा सकती है जब तक कि महिलाओं को सभी प्रकार के उत्पीड़न से मुक्त नही किया जाता।—नेल्सन मंडेला सारांष वैयक्तिक विधि के एक भाग के रूप मेंतलाक का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि निक़ाह। निकाह के मामले मेंमुस्लिम वैयक्तिक विधि काफी उदार है और वह पति—पत्नी दोनों को एक समान पायदान पर रखती है। किन्तु जब तलाक की बात आती है तो मुस्लिम वैयक्तिक विधि की यह उदारता कहीं खो सी जाती है क्योंकि पति को तलाक के असीमित एवं अप्रतिबंधित अधिकार दिये गये है। तलाक—उल—बिद्दत भी तलाक का एक घृणित किन्तु मान्यता प्राप्त रूप है जो सुन्नी सम्प्रदाय में बहुत प्रचलित है जिसमें पति बिना कारण एक झटके में ही अपने वैवाहिक सम्बन्धो को तोड़ देता है और पत्नी मूक दर्षक बनी रहने के सिवाय कुछ नहीं कर सकती। जहां पिछले दिनों माननीय सर्वोच्चय न्यायलय ने इस अमानवीय प्रथा को असंवैधानिक घोशित कर मुस्लिम महिलाओं के गरिमा व आत्म सम्मान का मार्ग प्रषस्त किया है। वहीं संसद ने कानून बनाकर इस क्रूर प्रथा को अपराध घोशित कर विधि के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की एक और अनूठी मिसाल पेष की।

प्रस्तावना

दुनिया में इस्लाम धर्म का अभ्युदय हुए लगभग 1400 वर्ष गुजर गये हैं। इतनी दीर्घ अवधि व्यतीत हो जाने के बावजूद भी इसमें देश,काल एवं परिस्थितियों के हिसाब से बहुत कम परिवर्तन हुए हैं। पैगम्बर मोहम्मद साहब के जन्म से पूर्व अरब में अनेक कुरीतियाँ व बुराईयाँ व्याप्त थी। पैगम्बर साहब एकउद्धारकके रूप में सामने आये और उन्होंने समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों पर काफी हद तक अंकुश लगाया। चूंकि एकाएक किसी बुराई को पूर्णतयः प्रतिबन्धित करना इतना आसान नहीं होता है अतः पैगम्बर साहब ने बहुत सी बुराईयों को इस आशय के साथ मौन स्वीकृति दी कि मुस्लिम जगत आगे चलकर स्वयं इस पर अंकुश लगायेगा किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि पैगम्बर साहब के पश्चात उनके अनुयायियों ने उनके वचनों, कथनों व आचरण को ही अन्तिम सत्य मान लिया तथा उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन अपने लिए असह्म माना। वे यह भूल गये कि पैगम्बर साहब ने जिन परिस्थितियों में इन बुराइयों को मौन स्वीकृति प्रदान की थी वे आज विद्यमान नहीं हैं। इस्लाम धर्म का तथा कथित कट्टर पंथी वर्गइन बुराईयों के प्रति अपनी आँखें मूँद लेता हैं। इन बुराइयों में मुख्यतः बहुविवाह, पति को तलाक देने की असीमित व अनिबंन्धित शक्ति,तलाक—उल—बिद्दत का प्रयोग, नाबालिग की संरक्षकता मेंमाता की उपेक्षा, भरण—पोषण विधि का कठोर होना आदि है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तिहरा तलाक, तलाक का एक मान्यता प्राप्त किन्तु निंदित रूप है जिसेतलाक—उल—बिद्दत या तलाक—उल—बेन के नाम से भी जाना जाता है। इसकी विशेषता यह है कि एक बार उच्चारण मात्र से ही तलाक पूर्ण हो जाता है और इसे प्रति संहरित नहीं किया जा सकता है। हैरानी की बात यह है कि इसे न तो पवित्र कुरान

**सहायक प्राध्यापक,विधि विभाग, के0जी0के0 (पी0जी0) कॉलेज, मुरादाबाद (उ0प्र0)*

का संबल प्राप्त है और नही पैगम्बर साहब की परम्परा या सुन्नत का, फिर भी सुन्नियों में तलाक का यह प्रचलित रूप है। द्वितीय खलीफा हजरत उमर के शासन के शुरूआती दो वर्षो के बाद ही मुस्लिम जगत पहली बार तिहरे तलाक से अवगतहुआ।

इस्लाम एक प्रसारवादी धर्म था। इसी क्रम मेंअरबों ने शीघ्र ही सीरिया, मिस्त्र व पर्शिया पर विजय प्राप्त कर ली और वहाँ की स्त्रियों से निकाह का प्रस्ताव किया जिसे उन्होंने इस शर्त पर कबुल किया कि वह पहले अपनी मौजूदा पत्नियोंको एक साथ तीन तलाक कह कर तलाक लें। अरबों ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया क्योंकि वे जानते थे कि इस्लाम में तलाक दो अलग–अलग तुहर काल में ही दिया जा सकता है और एक साथ तीन तलाक के उच्चारण मात्र से तलाक सम्भव नहीं था और इस तरह वे अपनी मौजूदा पत्नियों के साथ–साथ इन सुन्दर स्त्रियों को भी रख सकते थे। ऐसा करना धर्म का दुरूपयोग व इस्लाम की मूल भावना के साथ छल करना था। खलीफा उमर को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने इस आपातिक समस्या के समाधान व धर्म के दुरूपयोग को रोकने के लिए एक साथ तीन तलाक के उच्चारण को मान्यता दे दी जबकि उनका कदापि इसे स्थायी विधि बनाने का आशय नहीं था किन्तु दुर्भाग्य से यह सुन्नी विधि का अभिन्न अंग बन गया जो तब से लेकर आज तक प्रचलित है और जिसका दंश मुस्लिम स्त्रियों को झेलना पड़ रहा है।

तिहरे तलाक के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण तीन तलाक की वैधता के सम्बन्ध मेंन्यायिक दृष्टिकोण की बात की जाये तो उसने शायरा बानो के निर्णय के पूर्व इसे शरीया विधि के अनुकूल, विधिपूर्ण एवं प्रभावी माना है। बम्बई उच्च न्यायालय ने साराबाई वनाम रबिया वाई (1905) 30 बाम्बे 537 के शुरूआती मामले में तीन तलाक को अन्तिम तलाक माना। न्यायाधीश बेचलर ने कहाकि यह विधि में तो सही है किन्तु व्यवहार में बुरा है;प्ज पे हववक पद सूं इनजइंकपद जीमवसवहलद्ध। शरीयत अधिनियम आने से 5 वर्ष पूर्व रशीद अहमद बनाम मुसम्मात अनिशा खातून। प्ल 1932 पी0सी0 के मामले में प्रिवी कौंसिल ने पूर्णतः तीन तलाक पर ही विचार किया और लार्ड थंकर्टन ने तीन तलाक को हनफी विधि का एक अंग मानते हुए इस विषय पर सर आर0के0 विल्सन की पुस्तकष्क्पहमेज वि।दहसव दृडवींउउंकंदसूं 5जी म्कदण् च्हम 136ष् के उद्धरण का समर्थन किया और निष्कर्षित किया कि तीन तलाक पाप पूर्ण है फिर भी सुन्नी वकीलों के द्वारा विधिक रूप से वैध माना जाता है। शमीम आरा वनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य (2002) 7 स0सी0सी0 518 में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ''जैसा कि पवित्र कुरान के द्वारा आदेशित है तीन तलाक की सही विधि है कि तलाक किसी युक्ति युक्त कारण से हो और तलाक के पूर्व पति और पत्नी के बीच सुलह समझौते का प्रयास किया जाना चाहिए और ऐसा प्रयास दो मध्यस्थों, जिसमें एक पत्नी के परिवार का और दूसरा पति के परिवार का हो,के द्वारा किया जाना चाहिए और यदि ऐसा प्रयास विफल हो जाये, केवल तब ही तलाक प्रभावी होगा। ''22 अगस्त 2017 का दिन मुस्लिम महिलाओं के जीवन में एक नई रोशनी लेकर आया जब सर्वोच्च न्यायालय की

संवैधानिक पीठ ने 3:2 के बहुमत से शायरा बानो वनाम भारत संघ और अन्य(2017) 9 एस0सी0सी0 1 के मामले में तीन तलाक को पवित्र कुरानिक विधि के विरूद्ध मानते हुए असंवैधानिक घोषित कर दिया। इस मामले में कई रिट याचिकाओंको एक ही में समाहित करते हुए न्यायालय ने भारत सरकार व आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड; ।प्डच्स्ठद्ध को भी इस मामले में पक्षकार बनाया। केन्द्र सरकार ने जहाँ तलाक–उल–बिद्दत को संविधान के उपबन्धों के विरूद्ध घोषित किये जाने की वकालत की वहीं आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने इसे वैयक्तिक विधि का एक अभिन्न अंग बताया तथा कहा कि यह न्यायालय के परिधि के बाहर है। बहुमत ने निर्धारित किया कि राशिद अहमद वनाम अनीशा खातून (1932)ै 9 1ण् ।21 के मामले में प्रिवी कौंसिल का यह निर्णय कि तीन तलाक वैध है भले ही यह बिना युक्ति युक्त कारण के दिया गया हो, शमीम आरा वनाम उत्तर प्रदेश राज्य(2002) के निर्णय के बाद अच्छी विधि नहीं रह गया है। ऐसा इसलिए क्योकि तलाक का यह प्रारूप इस भाव मे मनमाना पूर्ण है कि वैवाहिक बन्धन को एक मुस्लिम पुरूष के द्वारा उसे बचाने का कोई प्रयासकि ये बिना सनक और मनमौजी रूप से तोड़ा जा सकता है। इस तरह के तलाक को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला अभिनिश्चित किया जाना चाहिए। इसलिए शरीयत अधिनियम 1937की धारा 2, जहाँ तक तीन तलाक की मान्यता देने और प्रवर्तित होने की अपेक्षा करती है, अनुच्छेद 13(1) में विधि के अन्तर्गत आता है और उस विस्तार तक शून्य घोषित करते हुए निरस्त किया जाता है जितने तक वह तीन तलाक को मान्यता देता और प्रवर्तित करता है। हर्ष का विषय यह है कि इस बार सरकार भी बिना दवाब में आये हुए मुस्लिम महिलाओं के पक्ष में खडी रही। सरकार ने तत्परता से कार्य करते हुए 28 दिसम्बर 2018 को मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) विधेयक 2017लोक सभा मेंप्रस्तुत किया जहाँ पर वह पारित भी हो गया किन्तु सरकार की संख्या बल कम होनेके कारण राज्य सभा में अटक गया था। अन्ततः अपने तीसरे प्रयास में यह विधेयक 30 जुलाई 2019 को राज्यसभा से भी पारित हो गया, और 1 अगस्त 2019 को राष्ट्रपति की मंजूरी मिलते ही इसने अध्यादेष का स्थान ले लिया। इसमें तीन तलाक यानि तलाक का कोई भी ऐसा रूप जो तुरन्त प्रभावी हो जाता है, को अपराध घोषित किया गया है जो तीन वर्ष के कारावास और जुर्माने से दण्डनीय होगा। ऐसा अपराध संज्ञेय ;ब्वहदप्रंइसमद्ध होगा यदि अपराध किये जाने की सूचना/रिपोर्ट पीड़ित महिला द्वारा स्वयं या उससे विवाह या रक्त सम्बन्ध से जुड़े रिश्तेदार द्वारा की जाती है। ऐसे किसी मामले में मजिस्ट्रेट पीड़ित महिला को सुनने के पश्चात मामले के शमन;ब्वउचवनदकद्ध की इजाजत दे सकेगा। साथ ही ऐसे किसी अपराध में मजिस्ट्रेट अभियुक्त को तब तक जमानत ;ठंपसद्ध पर मुक्त नहीं करेगा जब तक वह पीड़ित महिला को सुनवाई का अवसर न दे दे और वह मामले की परिस्थितियों पर भी सम्यक् विचार करेगा।

शोध निष्कर्ष

आज जब विश्व के अनेक मुस्लिम राष्ट्रों जैसे मिस्र, ईराक, जार्डन, कुवैत,

लेबनान, मोरक्को, सूडान, सीरिया, यमन, फिलीपींस और पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान व बांग्लादेश में तीन तलाक को या तो गैर इस्लामिक घोषित कर दिया है या उसे समाज की अपेक्षा के अनुरूप संशोधित करते हुए तीन बार के तलाक के रूप में कर दिया है तो भारत जैसे पंथ निरपेक्ष लोकतांत्रिक देश में इसे कैसे जारी रखा जा सकता है। स्त्रियाँ एवं बच्चे समाज की कमजोर कड़ी होते हैं। यदि उन्हें उचित संरक्षण, समानता, स्वतन्त्रता व न्याय प्रदान नहीं किया गया तो ऐसा समाज अनेक प्रकार की बुराईयों की गिरफ्त मेंआ सकता है एवं विधि व्यवस्था के सम्मुख एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अतः समय की मांग थी कि यह विधेयक यथा शीघ्र संसद से पारित होकर विधि का रूप लेता कि 21वीं सदी की मुस्लिम स्त्री भी अन्य समुदाय की स्त्रियों की भांति गरिमा, सम्मान एव ंसमानता का अनुभव कर सके। बढ़ते भारत, शिक्षित भारत और सबको समान अधिकार वाले भारत के संसदीय इतिहास में 30 जुलाई 2019 का दिन (तत्काल तीन तलाक विधेयक राज्यसभा से पारित) स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज हो गया। मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम 2019 समाज सुधार की दिशा में एक बड़ी पहल है। तिहरे तलाक की कुप्रथा उन सामाजिक बुराईयों में से है जो महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक साबित करती है। पति चाहे तिहरा तलाक का प्रयोग न भी करे फिर भी पत्नी हमेषा इसी भय के साथ जीती है कि कहीं अनजानें में भी उससे कोई गलती हो गई तो उसका पति उसे तिहरा तलाक दे देगा। यह डर एक महिला के सर्वांगीण विकास में बहुत बडी बाधा है और सबसे खराब बात यह थी कि जब उन्हें एक झटके में तीन तलाक दे दिया जाता था तो वे एक तरह से सड़क पर आ जाती थी और शायद ही कोई उनकी मदद करने को आगे आता था। जब समाज सामाजिक बुराईयों को खत्म करने में सहयोग न दे तो फिर विधिक उपायों का सहारा लेना जरूरी ही नही अपरिहार्य हो जाता है। अब उम्मीद की जानी चाहिए कि मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम के विधि बन जाने के बाद तत्काल तीन तलाक देने की प्रवृति पर रोक लगेगी।

सन्दर्भ

1. *फैजी, आसफ ए0ए0 –आउट लाइंस ऑफ मोहम्मडन लॉ (ivth Edi) (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)*
2. *मुल्ला डी0 एफ0 –प्रिंसिपल्स ऑफ मोहम्मडन लॉ (19th Edi)*
3. *अली फिरासत व अहमद–डाईवोर्स इन मोहम्मडन लॉः दी फुरकान लॉ ऑफ ट्रिपल डाइवोर्स दीप एवं दीप पब्लिकेशन्स नई दिल्ली*
4. *अहमद अकील–मुस्लिम विधि (2010) सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद*
5. *सिहां डा0 आर0 के0 –मुस्लिम विधि(2014) सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद*
6. *मौर्या डा0 आर0 आर0–मुस्लिम विधि (2017) सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स इलाहाबाद*
7. *जजमेंट एण्ड लॉ टुडे (इलाहाबाद) –जनवरी, 2017*
8. *जजमेंट एण्ड लॉ टुडे (इलाहाबाद) –अगस्त, 2017*
9. *जजमेंट एण्ड लॉ टुडे (इलाहाबाद) –सितम्बर, 2017*
10. *जजमेंट एण्ड लॉ टुडे (इलाहाबाद) –जनवरी, 2018*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-99-105

मुस्लिम महिलाओं के अधिकार : मुस्लिम वैयक्तिक विधि तथा भारतीय संविधान

*डॉ० अमित कुमार श्रीवास्तव**

सारांश

वर्तमान में मुस्लिम वैयक्तिक विधि में महिलाओं के अधिकार अत्यंत विवादास्पद हैं। विशेषकर बहुविवाह तथा तलाक के अधिकार भारत के परिपेक्ष्य में अत्यंत विभेदकारी होने के कारण बहस का मुद्दा रहें हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान नें समता, लिंग व धर्म के आधार पर भेदभाव के विरूद्ध व जीवन की स्वतंत्रता आदि अनेक अधिकार प्रदान किए। इसके वावजूद रूढ़िवादी संस्कृति के कारण मुस्लिम महिलायें अपेक्षित प्रगति नहीं कर पा रहीं हैं। इसका कारण यह रहा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चाश्त भी मुस्लिम विधि का समुचित रूप से संहिता करण नहीं हो पाया। न्यायालय कुरान, हदीस तथा प्रथाओं के आधार ही पर निर्णय देने के लिए बाध्य रहे हैं। इसके अतिरक्त अनेक ऐसी प्रथायें भी हैं, जोकि पवित्र कुरान तथा हदीसों व संविधान के सिद्धांतों के विरूद्ध हैं। अतः यह पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि विवाह तथा विवाह विच्छेद के मामले में मुस्लिम वैयक्तिक विधि का महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर कैसा प्रभाव पड़ा है तथा उन उपायोंपर भी प्रकाश डालता है, जिनसे उनके साथ सामाजिक भेदभाव समाप्त होकर उनका शशक्तीकरण हो सके और वे पुरूषों के समान विना भेदभाव के गरिमामय जीवन ब्यतीत कर सकें।

प्रस्तावना

इस्लाम पूर्व अरब समाज में महिलाओं की स्थिति सम्मान जनक नहीं थी, अपितु उन्हें भोग विलास तथा सन्तानोंत्पत्ति की समग्री ही माना जाता था। इस्लाम के अविर्भाव के साथ ही महिलाओं की दशा में परिवर्तन आया। इस्लाम नें अनगिनत विवाह की परंपरा को समाप्त कर चार से अधिक महिलाओं से विवाह वर्जित कर दिया। पवित्र कुराननेंकेवल विवाह को ही मान्यता दी, किन्तु अपवाद स्वरूप विशेष परिस्थितियों में बहु–पत्नी प्रथा को भी मान्य किया। इसके वावजूद भारत के मुस्लिम पुरूष चारपत्नियों को रखना अपना अधिकार समझनें लगे।

दूसरी मुस्लिम महिलाओं की महत्वपूर्ण समस्या तलाक है। पवित्र कुरान तलाक हेतु उचित प्रक्रिया का उल्लेख करती है, किन्तु लोग इस प्रक्रिया को नजरंदाज कर तलाक–उल–विद्दत को अपनातें है, जो कि मनमानी होती है और उसे कुरान से भी मान्यता प्राप्त नहीं है। पति को विवाह विच्छेद हेतु असीमित अधिकार हैं, किन्तु पत्नी को नगन्य अधिकार हैं। अतः ब्रिटिश भारत में मुस्लिम विवाह–विच्छेद अधिनियम, 1939 पारित हुआ, जिसके अनुसार महिलाओंको भी न्यायालय के माध्यम से विभिन्न आधारों पर विवाह–विच्छेद संबंधी विस्तृत अधिकार मिले। मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) लागू करण अधिनियम, 1937 भी पारित किया गया, जिसके अनुसार अनेको मनमानी

**सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, बाबू शिव नाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा (उ0प्र0)।*

प्रथाओं के स्थान पर,मुस्लिमों पर बैयक्तिक विधि के रूप में केवल 'शरियत' लागू की गयी। चूंकि यह अधिनियम संविधान लागू होने के तत्काल पूर्व का था, अतः वैयक्तिक विधि के रूप में शरियत भारत क्षेत्र में अभी तक लागू है। भारतीय संसद ने मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारो का संरक्षण) अधिनियम, 2019 पारितकिया, जो दिनांक 19 सितम्बर 2018 से समस्त भारत में लागू हुआ,जिससे तलाक–उल–विद्दत की प्रथा समाप्त हो गयी। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान नें समता, लिंग व धर्म के आधार पर भेदभाव के विरूद्ध व जीवन की स्वतंत्रता आदि अनेक अधिकार प्रदान किए। इसके वावजूद मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया है।

मुस्लिम वैयक्तिक विधि तथा भारतीय संविधान

भारत में सभी मुस्लिमों पर मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) लागू करण अधिनियम, 1937 के अनुसार *'शरियत'* की विधि लागू है। इस अधिनियमके अनुसार किसी प्रतिकूल रूढ़ि या आचार के होते हुए भी, विवाह, विवाह विच्छेद (जिसमें तलाक, इला, जिहार, लियन, खुला और मुबारत शामिल हैं) आदि सब प्रश्नों में विनिश्चय की विधि मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) होगी। शरियत क्या है? शरियत किसी मुस्लिम के जन्म से मृत्यु तक जीवन की मार्ग दर्शक विधि, नीतिव शिष्टाचार संबंधी सभी नियमों का संग्रह है। इस्लामिक विधि के चार श्रोत है : कुरान, हदीस, इज्मा, तथा कयास। प्राथमिक श्रोत पवित्र कुरान है, शेष तीनोंश्रोत कुरान के पूरक हैं तथा जो कुरान में नहीं हैउसकी पूर्ति करतें है। कुरान मेंवर्णित विषय के लिए कोई हदीस, इज्मा तथा कयास नहीं हो सकता है। इस्लाम कुरान के विरूद्ध नहीं हो सकता है।

भारतीय संविधान के अनुसार संविधान लागू होने के तत्काल पूर्व भारत क्षेत्र में लागू सभी विधियां संविधान के अन्य प्राविधानों के अधीनता की शर्त पर ही लागू हो सकती हैं; इसके अतिरिक्त ऐसी लागू सभी विधियां, यदि वे भारतीय संविधान के भागतीन के प्राविधानों के विरोध में हैं, तो विरोध की सीमा तक शून्य होंगी;राज्य भारत क्षेत्र के अंतर्गत किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता तथा विधि के समान संरक्षण से मना नहीं करेगा, मनमाना पन(arbitrariness) विधि के शासन की धारणा में समाहित है; राज्य किसी व्यक्ति के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म के स्थान या इनमें से किसी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा; किसी व्यक्ति को उसके जीवन या दैहिक स्वतंत्रता से बंचित नहीं किया जायेगा जीवन की स्वतंत्रता में मानव प्रतिष्ठा व अच्छे रहन सहन के साथ रहने, जीविकावृत्ति प्राप्त करने, स्वस्थ पर्यावरण में रहने आदि के अधिकार भी सम्मिलित है; कुछ प्रतिबंधों के साथ प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से अंतःकरण तथा अपने धर्म के स्वतंत्र रूप से मानने व प्रचार करने का अधिकारी है।

शायरा वानों बनाम भारत संध निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय नें तलाक–उल–विद्दत को निरस्त कर दिया। न्यायमूर्तिगण नारीमन तथा ललित ने धारित किया कि मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) लागू करण अधिनियम, 1937 संविधान लागू

होने के तत्काल पूर्व भारत क्षेत्र में लागू विधि है, अतः वह संविधान के अनुच्छेद 13(1) के अंतर्गत सीधे आयेगी और साथ ही साथ वह अनुच्छेद 13(3) (बी) मे ंनिहित शब्दावली ''लागूविधियों (laws in force)'' के अंतर्गत होगी, तथा यदि वह संविधान के भाग तीन के प्राविधानों के विरोध में है, तो वह विरोध की सीमा तक अनुच्छेद 13(1) के अंतर्गत शून्य होगी। जहां न्यायमूर्ति जोसेफ नें तलाक–उल–विद्दत को कुरान के सिद्धांतों के विपरीत होने के कारण मनमाना घोषित किया, वहीं न्यायमूर्ति गण नारीमन तथा ललित नें इसे स्पष्ट मनमाना होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 14 के प्राविधानों के विपरीत घोषित किया। अतः मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) लागू करण अधिनियम, 1937, सहित भारत की किसी विधि की संवैधानिकता कोसंविधान के प्राविधानों के विरूद्ध होने के आधार पर चुनौती दी जा सकती है।

मुस्लिम विधि में बहु–विवाह (निकाह)

विवाह एक संस्था है। यह संस्था मानव सभ्यता का आधार है। विवाह का अर्थ है कि स्त्री पुरूष के समागम को वैध बनाने और सन्तान उत्पन्न करने के प्रयोजन के लिए की गई संविदा होता है। मुस्लिम विवाह में विवाह एक संविदा है, जिस कान तो लिखित होना और न किसी धार्मिक अनुष्ठान की आवश्यकता है। विवाह के पक्षकारों की क्षमता, प्रस्तावव साक्षियों के समक्ष उसकी स्वतंत्र स्वीकृति होना आवश्यक है। महिला विवाह की शर्तो को स्वीकार कर सकती है तथा कुछ शर्तो को अस्वीकार कर सकती है। व्यावहारिक बात यह है कि भारत में महिला को परिवार के दबाव मे ंही विवाह की सम्मति देनी पड़ती है। पवित्र कुरान में संदर्भित है ''तुम उन स्त्रियों से विवाह करो–दो या तीन या चार–जो तुन्हें सुन्दर लगतीं हो। लेकिन यदि तुम्हें डर है कि तुम उनमें न्याय नहीं कर सकते तब केवल एक विवाह करो, यही उचित है कि तुम सही रास्ते से न भटको''। ''और तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि तुम सब पत्नियों के साथ न्याय कर सको, यद्यपि तुम अति उत्सुक हो सकते हो, लेकिन तुम एक के लिए दूसरे का त्याग न कर दो और न ही किसी को संदेह की स्थिति में छोड़ो .....। इस प्रकार पवित्र कुराननेंकेवल एक विवाह को ही मान्यता दी, तथा बहु–पत्नी प्रथा को विशेष परिस्थितियों में ही मान्यता दी।

भारत का समाज विभिन्न प्रकार के धर्मों और आस्थाओ का संगम है। यहां पर हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन, मुस्लिम, पारसी तथा इसाई आदि अनेक धर्मों के लोग रहतें हैं, और सभी की अलग–अलग वैयक्तिक विधियां हैं। भारतीय दण्ड संहिता, 1860 द्वारा सम्पूर्ण भारत में बहुविवाह की प्रथा का अंत पहले ही किया जा चुका है और बहुविवाह को दण्डनीय घोषित किया जा चुका है। कोई भी व्यक्ति जीवित पति या पत्नी के होते हुए यदि दूसरा विवाह करेगा वह सात वर्ष तक के कारावास या जुर्माने से दण्डित किया जायेगा। किन्तु मुस्लिम पुरूष अपनी वैयक्तिक विधि के अंतर्गत एक समय में चार विवाह कर सकता है, और उस पर भारतीय दण्ड संहिता के यह प्राविधान लागू नहीं होगें, किन्तु मुस्लिम महिलाओं पर लागू होगे और वे एक पति के होते हुए दूसरे पति से विवाह नहीं

कर सकतीं। यह व्यवस्था भी मुस्लिम महिलाओं के मामले मेंलिंग के आधार पर विभेदकारी है।

मुस्लिम पुरूष यद्यपि एक समय में चार पत्नियों की सीमा के अंतर्गत, शेष पत्नियों को तलाक देकर अनेंको विवाह कर सकता है, जबकि मुस्लिम महिला को यह अधिकार नहीं है कि वह एक समय में चार पुरूषों से विवाह कर सके। यह व्यवस्था लिंग के आधार पर विभेदकारी है और भारतीय संविधान में अंतर्निहित समानता के अधिकार के विरूद्ध है। इसके अतिरिक्त पवित्र कुरान के अनुसार ही किसी भी पुरूष से एक समय मेंसभी पत्नियों के साथ न्याय करने की आशा नहीं की जा सकती। इसके वावजूद मुस्लिम पुरूष आये दिन अपना विवाह करता है और एक से अधिक पत्नियों का सुख भोगता है, किन्तु धार्मिक निदेशों के साथ साथ उन पत्नियों की मनःस्थिति, सामाजिक स्थिति, उनकी प्रतिष्ठा को नजरंदाज करता है और वे बदतर स्थिति में रहने को मजबूर होती है। अतः बहुविवाह हेतु संहिता करण अनिवार्य है। लगभग सभी मुस्लिम देशों नें इस प्रथा के संहिताकरण के लिए कार्य किया है तथा वहुविवाह के प्रचलन को प्रतिबंधित करने का प्रयास कियाहै।

तलाक शुदा महिला से पुनः विवाह (निकाह हलाला)

यदि कोई मुस्लिम पुरूष तलाक देने के पश्चात अपने किए पर पश्चाताप कर रहा है और वह उसी महिला से पुनः विवाह करना चाहता है, तो ऐसी महिला को 'हलाला' की प्रक्रिया का पालन करना पड़ेगा। इस प्रक्रिया के अंतर्गत विवाह विच्छेद के पश्चात पत्नी को इद्दत का पालन करना पड़ता है। इद्दत के पश्चात उसे किसी अन्य पुरूष से विवाह करना पड़ता है, जोकि मात्र औपचारिकता ही नहीं है, अपितु उस दूसरे पुरूष से सम्भोग भी करना आवश्यक है। संभोग के पश्चात वह पति स्वेच्छा से जब उस पत्नी को तलाक देगा, तत्पश्चात पत्नी को पुनः इद्दत का पालन करना पड़ेगा। इस इद्दत की अवधि के समाप्त होने के पश्चात ही पत्नी पूर्व पति से पुनः विवाह कर सकती है। यद्यपि मुस्लिम विधि में इस प्रक्रिया का उद्देश्य पति को दण्डित करना है, पर वास्तविकता यह है कि पति द्वारा किए गये कार्य की सजा तो प्रक्रिया के पालन की अवधि में हलाली ही भोगती है।

हलाला में प्रायः तलाक शुदा पत्नी दूसरे पति के चयन में स्वतंत्र नही होती है अपितु उसे पतित था पति के परिवार की इच्छानुसार व्यक्ति से विवाह तथा सम्भोग करना पड़ता है। इसके वावजूद यदि दूसरा पतित लाक न दे तो न चाहते हुए भी उसके साथ अपना नरकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में ऐसी महिलाओ के साथ ठगी और धोखा भी हो सकता है और उसका जीवन नरक हो जाता है। यह प्रक्रिया मुस्लिम महिलाओ की गरिमा व प्रतिष्ठा के विरूद्ध है।

विवाह का पंजीकरण

मुस्लिम विवाहों में पंजीकरण अनिवार्य नहीं है। *सीमा बनाम अश्विनी कुमार* के

मामले में उच्चतम न्यायालय नें धारित किया है कि सभी व्यक्तियों के विवाह, जो भारतीय नागरिक है, चाहे उनका संबंध किसी भी धर्म से हो, अपने अपने राज्य में जहां उनका विवाह सम्पन्न हुआ है, का पंजीकरण करवाना अत्यंत आवश्यक है।

भारत के विधि आयोग नें *''विवाह एवं विवाह–विच्छेद के पंजीकरण पर विधियां : एकीकरण एवं सुधार हेतु प्रस्ताव''* संबंधी अपनी 211वीं रिपोर्ट दिनांक 17 अक्तूबर, 2008 को तत्कालीन विधि एवं न्याय मंत्री, भारत सरकार को प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारतीय संविधान के अंतर्गत पारिवारिक मामले समवर्ती सूची में है, अतः भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए, चाहे वे किसी भी धर्म या वैयक्तिक विधि से शासित हो,बिना किसी प्रकार के अपवाद के, विवाहो व विवाह–विच्छे दो का पंजीकरण अत्यंत आवश्यक है,जोकि समस्त भारत में लागू हो। ऐसे विधायन के अंतर्गत राज्य अपने अपने क्षेत्र हेतु आवश्यकतानुसार नियम बना सकतें है। दुर्भाग्य है कि इस रिपोर्ट के अनुसार अभी तक कोई विधायन नहीं बन सका है।

विवाह व विवाह–विच्छेद का अपंजीकरण मुख्यतः महिलाओं के हितों को अत्यंत प्रभावित करता है। विवाह के पंजीकृत होने की दशा में, पंजीकरण इस बात का साक्ष्य है कि पक्षकारों के मध्य विवाह हुआ है। अतः विवाह का पंजीकरण आवश्यक है।

मुस्लिम विधि में विवाह विच्छेद (तलाक)

तलाक का अर्थ वैवाहिक बंधन से मुक्त करना होता है। पैगम्बर साहब नें कहा कि ''यदि कोई स्त्री अपने विवाह से दुखी है तो उस संबंध का विच्छेद हो जाना चाहिए'' तथा ''ईश्वर की दृष्टि में विवाह विच्छेद सबसे बुरा है।'' पैगम्बर साहब नें कहा है कि ''जो मनमानी रीति से पत्नी को अस्वीकार करता है वह खुदा के शाप का पात्र होता है।'' तलाक की प्रक्रिया को पूरी करने के संबंध में कुरान में उल्लखित है कि ''यदि उनके मध्य वैवाहिक संबंध के भंग की आशंका हो तो एक निर्णायक पति के पक्ष से और एक पत्नी के पक्ष से नियुक्त करो। इस प्रकार यदि वे अपने संबंध सुधारना चाहेंगे, तो अल्लाह उन्हें (पति–पत्नी को) एक मत कर देगा।'' इस प्रकार कुरान में 'तलाक–उल–सुन्नत'को मान्यतादीगईहै। यह 'अहसन' तथा 'हसन' दो प्रकार का होता है। अहसन तलाक को सर्वोत्तम माना गया है,जब कि हसन तलाक को उत्तम माना गया है। मुस्लिम विधि में सबसे निकृष्ट तलाक तलाक–उल–विद्दत अर्थात तिहरा तलाक होता है। कुरान इसे मान्यता नहीं देता है। हनफी विधि वेत्ताओं ने इसे न्याय युक्त घोषित किया और इसे धार्मिक मान्यता दी। इस तलाक की विशेषता यह है कि एक ही बार में तलाक शब्द को तीन बार उच्चारित कर दिए जाने पर तलाक तत्काल पूर्ण हो जाता है और पति पत्नी में समझौता हो पाने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। मुस्लिम पत्नियों के लिए मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939, पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार कोई भी मुस्लिम पत्नी अधिनियम की धारा 2 में वर्णित आधारों पर न्यायालय के माध्यम से अपने पति से विवाह–विच्छेद करा सकती है। इस प्रकार अब भी मुस्लिम पतिकोअपनी इच्छानुसार विवाह विच्छेद के असीमित अधिकार है, जबकि मुस्लिम पत्नी अपनी

इच्छानुसार अपने पति को तलाक नहीं दे सकती। उसे विवाह विच्छेद हेतु न्यायालय के समक्ष ही जाना पड़ता है। यह व्यवस्था भी विभेदकारी है।

शायरावानों बनाम भारत संघ के मामले मेंउच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ नें तलाक–उल–विद्दत की संवैधानिकता के प्रश्न पर विचार किया और 3 : 2 के बहुमत से उसे निरस्त कर दिया। उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय को प्रभावी बनान हेतु भारतीय संसद ने मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारो का संरक्षण) अधिनियम, 2019 पारित किया, जो दिनांक 19 सितम्बर 2018 से समस्त भारत में लागू हुआ। इस अधिनियम के अनुसार 'तलाक' से तात्पर्य तलाक–उल–विद्दत या मुस्लिम पति द्वारा उच्चारित किए गये तुरंत तथा अप्रति संहरणीय तरीके से प्रभाव रखने वाले समस्त प्रकार के तलाक से है। तलाक–उल–विद्दत का मुस्लिम पति द्वारा शब्दों में या लिखित रूप में या इलेक्ट्रानिक तरीके से उच्चारण शून्य तथा अविधिमान्य होगा। ऐसा मुस्लिम पति जो धारा 3 में संदर्भित तलाक का उच्चारण करता है, उसे ऐसे कारावास से दण्डित किया जायेगा जिसकी अवधि तीन वर्षों तक विस्तृत हो सकती है और अर्थदण्ड देने हेतु भी दायित्वाधीन होगा। इस प्रकार भारत में तलाक–उल–विद्दत को पूर्ण रूप से अवैध घोषित करते हुए दण्डनीय अपराध घोषित का दिया गया है।

तलाक–उल–विद्दत के अबैध हो जाने से मात्र से मुस्लिम महिलाओं के प्रति निर्दयता समाप्त नहीं हो जाती। उल्लेखनीय है कि मुस्लिम विधि में पति को तलाक के अब भी असीमित अधिकार हैं, और वह अपनी इच्छानुसार जब चाहे तलाक देकर अधिकतम चार महीनें में विना न्यायालय के हस्तक्षेप के अपनी पत्नी से मुक्ति पा सकता है, जबकि मुस्लिम पत्नी अपनी इच्छानुसार विवाह विच्छेद नहीं कर सकती है, अपितु उसे इस हेतु न्यायालय के समक्ष जाना पड़ता है। अतः मुस्लिम पुरूष के तलाक संबंधी अधिकारों का भी मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 के अनुसार संहिता करण होना आवश्यक है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में व्यवस्था की थी कि ''राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि भारत के क्षेत्र के अंतर्गत नागरिको के लिए एक समान नागरिक संहिता हो।'' यद्यपि इसे अभी तक सुनिश्चित नहीं किया जा सका है। प्रगतिशील मुस्लिमसमुदाय नें यद्यपि महिलाओं की उन्नति और प्रतिष्ठा स्थापित करने हेतु प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया है, जिससे अन्य महिलाओं की तरह मुस्लिम महिलाएं भी शिखर तक पंहुच सकें। किन्तु कुछ रूढ़िवादी लोग मुस्लिम वैयक्तिक विधि को आधार बनाकर उनकी प्रगति में बाधक बन रहें हैं। अतः शिक्षित और प्रगतिशील मुस्लिम व्यक्तियों को जनसामान्य के बीच ऐसा जनमत बनाना चाहिए, जिससे सभी धर्मों के व्यक्तियों के लिए एक समान नागरिक संहिता का निर्माण हो सके।

महिलाओं के हित के विरूद्ध बहुविवाह का प्रचलन तथा अपनी तलाक शुदा पत्नी

से पुनः विवाह का संहिताकरण उचित रूप से किया जाना चाहिए व संहिताकरण के माध्यम से 'हलाला' का प्रचलन समाप्त होना चाहिए। मुस्लिम पुरूष के तलाक संबंधी अधिकारोंको भी मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 के अंतर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत में प्रत्येक नागरिक के विवाह एवं विवाह–विच्छेद के पंजीकरण अनिवार्य करने हेतु भारत के विधि आयोग द्वारा भारत सरकार को *''विवाह एवं विवाह–विच्छेद के पंजीकरण पर विधियां : एकीकरण एवं सुधार हेतु प्रस्ताव''* संबंधी दिनांक 17 अक्तूबर, 2008 को प्रस्तुत 211वीं रिपोर्ट के आधार पर अधिनियम निर्मित किया जाना चाहिए। जिससे विवाह व विवाह–विच्छेद के पक्षकारो लिए विवाह का समुचित साक्ष्य तथा संतान की अभिरक्षा, पक्षकारों की विवाह के समय आयु आदि सुनिश्चित की जा सके और इन मामलों में पक्षकारों द्वारा महिलाओं के विरोध में दुरूपयोग व मनमानी न कर सके।

संदर्भ

1. *भारतीय संविधान धारा 2।*
2. *धारा 2।*
3. *अनुच्छेद 372 (1)।*
4. *धारा 2।*
5. *न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ : शायरावानों वनाम भारत संध आदि*
6. *ए0आई0आर0 2017 एस0सी0 4609 (निर्णय का प्रस्तर 7)।*
7. *अनुच्छेद 372(1)।*
8. *अनुच्छेद 13(1)।*
9. *अनुच्छेद 14।*
10. *अनुच्छेद 15।*
11. *अनुच्छेद 21।*
12. *अनुच्छेद 25।*
13. *ए0आई0आर0 2017 एस0सी0 4609 (3 : 2 के बहुमत से)।*
14. *वेलीसार संग्रह का पृष्ठ 94 (Baillie : Digest, page 94)*
15. *सूरा(IV:3)।*
16. *सूरा(IV: 129)।*
17. *भारतीय दण्डसंहिता की धारा 494।*
18. *अनुच्छेद 14 व 15।*
19. *(2006) 2 एस0सी0सी0 578।*
20. *List III, Entry 5.*
21. *सूरा(IV-35)।*
22. *ए0आई0आर0 2017 सु0को0 4609।*
23. *धारा 2 (सी)।*
24. *धारा 3।*
25. *धारा 4।*
26. *अनुच्छेद 44।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-106-110

ऋतुधर्म की हिन्दू धर्म–शास्त्रीय व्याख्या

*डॉ० अनुपमा**

संवेदना वह भाव है जो मनुष्य को पशु से भिन्न करता है। मनुष्य का अगर वर्गीकरण किया जाए तो यह पाया जाता है कि सर्वश्रेष्ठ मनुष्य सर्वाधिक संवेदनशील होता है। संवेदना के अभाव में मनुष्य केवल दो पैरों वाला पशु बन जाता है। इतिहास साक्षी है कि ये दो पाया नर पशु युगों से महिलाओं के प्रति असंवेदनशील रहा है। अगर कोई काव्य रचनाओं का हवाला दे कर यह कहे कि नर–पशु नहीं पुरुष–मनुष्य के ह्रदय में महिलाओं के विचार तो बहुत श्रेष्ठ हैं। मेरा इस दशा में उत्तर होगा की महिमा मंडित कर कुछ कृत्यों का वर्णन व रूप–लावण्य की स्तुति को छोड़ कर और लिखा ही क्या है। कहीं पर भी महिला के अंतरभाव को समझने का प्रयास नहीं मिलता। इस संवेदना के निर्वेद ने युगों से महिला को वेदना से ग्रस्त कर रखा है।

महिला को दूसरे दर्जे का जीव मानकर (नागरिक तो शायद आज भी नहीं माना जाता) उससे पूछे बगैर कई प्रकार के नियमों के जाल में उसे बांध दिया है। महिला पढ़ नहीं सकती। महिला रोजगार नहीं कर सकती। महिला किसी पर पुरुष से अगर बात करती है तो निश्चित ही उसका चरित्र संशय के घेरे में आ जाता है। महिला माँ, बहन, बेटी, पत्नी व बहू के रूप में तो स्वीकार्य है लेकिन घर की प्रशासक, प्रथम अभिभावक व स्वात्म संपूर्ण रूप में नितांत अस्वीकार्य है।

केवल इतना ही नहीं परिवार के लिए एक पैर से खड़ी और हर क्षण सेवा में तत्पर महिला जब मऋतुशीला होती है तब तो वह सब कुछ खोकर महा अछूत हो जाती है। उस काल में महिला न तो किसी के साथ उठ–बैठ सकती है, न वह पूजा कार्य में सम्मिलित हो सकती है, न वह घर के सामान्य कर कर सकती है और तो और उसे घर के एक कोने में पशु से बदतर स्थिति में अपने शुद्ध होने की प्रतीक्षा करनी होती है। इस संदर्भ में विचार तो बहुत से प्रकटकिए जा सकते हैं लेकिन संवेदनहीन समाज के त्रास की वेदना केवल उस क्षण उस परिस्थिति में जी रही महिला ही जान सकती है।

यह परम आवश्यक है की ऋतु–धर्म की धर्म शास्त्र क्या व्याख्या करता है वह समाज में सबको पता चले।

वैदिक विवेचन

सुकृतमितिश्रीर्हवाएषास्त्रीणांयन्मलोद्वासातस्मान्मलोद्वाससं

स्त्री के वस्त्र पर मल के चिन्हों से यह स्पष्ट है की ऐसी स्त्री श्रीमती है।

सामान्य जनमानस की भाषा में विवाहित स्त्रियों को श्रीमती कह कर संबोधित किया जाता है लेकिन यह किसी को ज्ञात नहीं है की ऐसा क्यों किया जाता है।

**असिस्टेण्ट प्रोफेसर हिन्दी दीन दयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सीतापुर (उ०प्र०)*

मूल–रूप से रजस्वला स्त्री को ही श्री या श्रीमती की उपाधि प्राप्त है। अतरू ऐसी स्त्री जो की संतान उत्पन्न कर सके वही श्रीमती होती है। सामान्य रूप से कहा जाता है की रजस्वला स्त्री धार्मिक कार्यों में सम्मिलित नहीं हो सकती लेकिन मूल वैदिक युग ऐसा कोई बंधन नहीं था। इस विषय पर विस्तृत चर्चा से पूर्व संक्षेप में वैदिक साहित्य का स्वरूप समझना आवश्यक है।

वेद के दो प्रधान विभाग बनते हैं संहिता व ब्राह्मण। संहिता में मूल रूप से वेद के मन्त्रों संग्रह है। ब्राह्मण के पुनरू तीन खण्ड हैं यथा ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद। वैदिक धर्म में मनुष्य जीवन चार आश्रम में विभक्त है। ब्रह्मचर्य जिसमें समस्त शास्त्रों का कठोर नियमों का पालन करते हुए अध्ययन किया जाता है। गृहस्थ जीवन जिसमें कर्मकाण्ड किए जाते हैं, कर्मकाण्ड के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ के ब्राह्मण खण्ड आधार हैं। वानप्रस्थ जीवन वन में व्यतीत करना होता है इसलिए इनके शास्त्र आरण्यक हैं। सन्यासी जीवन में केवल निर्विकल्प साधना का व ब्रह्म से एकाकार का प्रावधान है इसलिए ब्रह्म के ग्रन्थ उपनिषद सन्यास आश्रम के ग्रन्थ हैं। इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त ग्रन्थों का विश्लेषण यहाँ पर आवश्यक नहीं है।

गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते ही स्त्री व पुरुष का प्रथम दायित्व अग्निहोत्र करना होता है इसके लिए अग्न्याधेय किया जाता है। अग्न्याधेय करने के बाद हर माह पूर्णिमा व अमावस्या पर दर्शपूर्णमासेष्टि करनी होती है। इसके बाद चातुर्मास्य व अग्निष्टोम करने के बाद अश्वमेध यज्ञ या राजसूय यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त होता है। यह क्रियाएं पति व पत्नी को मिल करनी होती है। अगर क्रिया के मध्य में स्त्री रजस्वला हो तो कोई दोष नहीं होता। यों भी कह सकते हैं की स्त्री का रजस्वला होना या न होना कोई चर्चा का विषय ही नहीं है। परवर्ती काल में जब रजो धर्म की नई व्याख्या हुई तब भी इस परंपरा को नहीं छेड़ा गया। इस संबंध में पूर्व मिमांसा के सर्वकालीन देशिक प्रवर श्री कुमारिल भट्ट के ही शब्दों में–

भूमिशयन –अस्नान –अमांसभक्षण –अनभ्यङ्ग–अनञ्जन–अकर्तन–अदन्त–धावन–अनख छेदन–अरज्जु संसर्जना दीनां त्रिरात्र विषयाणां दर्शपूर्णमास प्रकरणाति रिक्त स्त्री धर्मत्वं।

यहाँ यह जानना आवश्यक है की अग्न्याधान दो प्रकार का होता है। त्रिकुण्डीय व पञ्चकुण्डीय। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद त्रिकुण्डीयअग्निहोत्री के यज्ञ अधिकार वैसे ही क्षीण हो जाते हैं जैसे विधवा स्त्री का शृंगार।केवल इतना ही नहीं वेद की तमाम ऋचाएं स्त्री ऋषियों द्वारा लिखी गई हैं। वैदिक काल में पुरुष ऋषि ब्राह्मण व महिला ऋषि ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। ब्रह्मवादिनी गार्गी व ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी के अलावा तमाम ब्रह्मवादिनीयों के वर्णन ब्रह्माण्ड पुराण प्रभृत्ति शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

इन सब से यह स्पष्ट है की वैदिक युग में ऋतुकाल वर्जना न हो कर एक जैविक प्रक्रिया मात्र रही है। इन क्रियाओं को करने के लिए विदुषी कन्या प्राप्त करने विधान भी वहीं पर दिया है।

अथ य इच्छेद् दुहिता में पण्डिताजायेत....।

यह व्याख्या आगे चल कर रंजित हूई। कलियुग के नाम पर आयुर्वेद के वैज्ञानिक स्वास्थ्य संबंधी परामर्श को धर्म से जोड़ दिया गया। इसके लिए सर्वप्रथम स्त्री के वेद अध्ययन को निषिद्ध किया गया। किसी ने यह नहीं सोचा कि वेद का अध्ययन किए बिना क्लिष्ट ब्राह्मण क्रियाएं वे कैसे कर पाएंगी। प्रैष (निर्देशात्मक मंत्र) कैसे समझेंगी।

परवर्ती हिन्दू धर्म में ऋतु धर्म

परवर्ती–काल एक संक्रमण काल था जिसमें धर्म सेवक की जगह धर्म के ठेकेदार हथियाने में लगे थे। वे लोग समाज के बड़े वर्ग को धर्म से अलग कर धर्म को अपनी निजी संपत्ति व एकाधिकार का विषय बना रहे थे। ऐसे काल में शास्त्र के नाम पर तमाम ग्रन्थ मनमाने तरीके से लिखे गए। उनमें धर्म के ये ठेकेदार अपनी मनमानी बातें लिखने लगे। यहाँ तक लिख दिया की अगर व्रत के काल में रजस्वला स्त्री की ध्वनि भी सुनाई पड़ जाए तो एक हजार आठ गायत्री मन्त्र का जप करें। त्रिपाद गायत्री मन्त्र का प्रथम पाद है तत्सवितुर्वेर्ण्यं, इसका शाक्ती अर्थ होता है,"मैं उन सवित्त करने वाली अर्थात जन्म देने वाली देवी का वरण करती हूं"। यह सर्वज्ञात है की जो देवी रजस्वला हो सकें वही जन्म दे सकती हैं। ऐसे में रजस्वला दर्शन संबंधी यह प्रायश्चित्त नितांत हास्यास्पद है। मूल रूप से यह उन देवी का ही अपमान है व शास्त्रीय रूप से निरक्षर जनता को पढ़ाया गया अनाप–शनाप पाठ है।

ये प्रयास बहुत हद तक सफल हुए लेकिन वैदिक परंरपराओं को नहीं मिटा पाए। निर्णय सिन्धु में ही प्रथम परिच्छेद में कहा है की रजो दर्शन के उपरांत भी स्त्री एकादशी का व्रत कर सकती है।

रजोदर्शनेऽपि कार्यम। एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यापि।

वहीं ग्रन्थकार ने वसिष्ठ को उद्धृत कर कहा है कि उपाकर्म, उत्सर्ग, प्रेतस्नान व ग्रहण काल में रजोदोष नहीं होता। मध्य कालीन धर्म शास्त्रों के ये विरोधाभास यह इंगित करते हैं की संक्रमण के बाद भी वैदिक मान्यताएं पूर्ण रूप से दरकिनार तो नहीं हूईं लेकिन निरक्षर बना दी गई नारी के प्रति शास्त्रीय रूप से निरक्षर समाज की बरबरता बहुत बढ़ गई। ये नियम अन्य कई मानवीय संवेदनाओं के निर्वात में स्त्री समाज पर एक अक्षम्य आघात सिद्ध हुए।

स्नान न करने की सलाह आयुर्वेद के आधार पर थी। कार्य न करने देना मूल रूप स्त्री को आराम देने के लिए था। आज–कल फिर से कार्य स्थलों पर रजो–दर्शन के अवसर पर स्त्री को अवकाश प्रदान करने मांग उठी है। आशा है की समाज तथ्य व रूढ़ि में भेद कर सकने में सक्षम होगा।

ऋतुशील महिला की तन्त्र मार्गीय व्याख्या

काशी में एक बार विद्वत–वर्ग पद्मविद्मभूषण महमहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज जी का पास पहुंचा। चर्चाओं के प्रसंग में प्रश्न आया–महिलाएं ऊँ का उच्चारण

क्यों नहीं कर सकतीं? प्रश्न सुन कर महानुभाव बोले–

ऐसा नहीं है की महिलाएं पुरुष से तुच्छ हैं। वे तो हर अवस्था में पुरुष से श्रेष्ठ हैं। इस निषेध का कारण मन्त्र के मूल में है। ऊँ नाद ध्वनि है। इसका उच्चारण मूलाधार से उठी वायु के मणिपूर चक्र में (नाभि देश में) पहुंचने पर होता है। ऐसे में अगर महिलाएं सतत ऊँ का उच्चारण करेंगी तो उनका गर्भाशय कमजोर होने की संभावना है।

यह विचार उस परंपरा के हैं जो सबसे ज्यादा विकृत रूप में लोगों को पता है। भारतीय दर्शन वाड्मय में वैदिक परंपरा का निर्वहन सर्वाधिक यही विचार धारा करती है। जहाँ वेदों ने महिलाओं को किसी भी रूप में तुच्छ नहीं माना वहीं इस मार्ग ने महिला को हर स्वरूप में पूजनीय माना है। यह विचार धारा तान्त्रिक विचार धारा है।

तन्त्र मार्ग में ऋतुशीला महिला साक्षात देवी स्वरूपा मानी जाती हैं। तन्त्र मार्ग में जाति के बंधन से परे,युवा स्त्री को कुल स्त्री बताया गया है। कहागया है की अगर स्त्री दुष्ट हो तो भी साधक को उससे दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए। उसका नाम नहीं लेना चाहिए। उसके भोग ग्रहण करने के बाद खाना चाहिए। यह सत्य की काल क्रम से कुछ दोष तन्त्र मार्ग में भी आए व प्रचार न करने की परंपरा के कारण कई ढ़ोंगी आज खुद को तान्त्रिक बता रहे हैं व लोगों में गलत तथ्यों का प्रचार कर रहे हैं लेकिन यह भी सत्य है की तन्त्र–मार्ग की इस परंपरा को जहाँ कहीं पर भी शुद्ध रखा गया है,वहाँ पर यह मूल सिद्धांतो के साथ स्थापित है।

सामान्य रूप से कहा जाता है की ऋतुशीला महिला को पूजा नहीं करनी चाहिए या ऋतुशीला महिला को भोजन नहीं पकाना चाहिए लेकिन तन्त्र ऐसी बातों पर न जाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देवी स्वरूपा महिला के हर रूप की वंदना करता है व किसी भी कार्य से एकदम विलग नहीं करता। यह विश्व प्रसिद्ध है की देवी श्री कामाख्या की वर्ष में एक बार ऋतुकाल में विशेष पूजा होती है। अन्नदाकल्प तन्त्र में यह स्पष्ट उल्लिखित है की माँ श्री अन्नपूर्णा की पूजाके दौरान माँ को समर्पित पान रजस्वला स्त्री के द्वारा तैयार किया गया होना चाहिए–

नारीं रजोऽन्वितां कृत्वा पर्णानां शतकं सुधीः।
प्रत्येकं दशधा जप्त्वा होमयेत्तदनतरमघ।।२४।।

इतना ही नहीं रजस्वला स्त्री को देवी मान कर उसकी स्तुति श्री रजस्वला स्तोत्र इत्यादि से की जाती है। श्री रजस्वला स्तोत्र में कहा गया है कि अगर कोई सोलह वर्षीया रजस्वला स्त्री को देखे तो दंडवत प्रणाम करे। ऐसा करने से वह स्वयं भी तर जाता है व दूसरों को भी तार देता है–

षोडशाब्दातुसुंदरी रजोयुक्ता भगंदृष्ट्वा।
नमस्तत्यचदंडवत् तरंति तारयंतिच ।।

स्त्री को हर रूप में पूज्य मानना सनातन धर्म की मूल परंपरा है। सनातन धर्म की यह विचार धारा को बौद्ध इत्यादि धर्मों ने भी अपनाई है। सनातन धर्म में जीव का परिचय

जन्म की योनि से प्राप्त होता है। इसलिए जगद की कारण भूता योनि तक की उपासना की गई है–

अतिसुललितगात्रां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्रां जितजलदसुकान्तिं पट्टवस्त्रप्रकाशाम्।
अभयवरकराढ्यां रत्नभूषतिभव्यां सुरतरुतलपीठे रत्नसिंहासनस्थाम।।1।।
हरिहरविधिवन्द्यां बुद्धिशुद्धिस्वरूपां मदनरससमाक्तां कामिनीं कामदात्रीम।।
निखिलजनविलासोद्धामरूपां भवनीं कलिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि।।२।।

मैं कलि–कलुष का ध्वंस करने वाली योनि रूपा श्री भवानी का सदैव भजन करती हूं। आप श्री सुन्दरी सदा त्रिनयन मण्डित मुख पर मुस्कान लिए हुए रेशमी वस्त्र धारण कर कल्प वृक्ष की छांव में रत्न–जटित सिंहासन पर विराजमान हैं। नाना रत्नों को धारण करने वाली आप वरद–मुद्रा पूर्वक हम सबको वर प्रदान कर रही हैं व अभय–मुद्रा पूर्वक हमारी रक्षा कर रही हैं। हरि, हर व ब्रह्मा सदैव आपकी स्तुति में संलग्न हैं। हे बुद्धि व शुद्धि स्वरूपा देवि! मदन आप के रस में आकण्ठ मग्न है। हे कामिनी समस्त जनों की उद्धाम कामना को शान्त करने वाली आप ही हैं।

इन सब व्याख्यानों से यह सिद्ध है की रूढ़ीवाद से आगे बढ़ कर किसी महिला का तिरस्कार केवल ऋतुशीला होने के करने के अपराध को अब बन्द करना चाहिए। समाज अगर आधी आबादी पूरी शक्ति से आगे आने का अवसर देगा तो निश्चित ही विश्व प्रगति पथ पर आगे बढ़ेगा।

संदर्भ

1. *बृहदारण्यकोपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर।*
2. *निर्णयसिन्धु, महामहोपाध्याय दौलतराम गौड़, ठाकुर प्रसाद बुकसेलर्स, वाराणसी।,*
3. *तन्त्रवार्तिक।*
4. *श्रीकालीतन्त्रम्, एस० एन० खण्डेलवाल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।*
5. *श्रीसिद्धिविद्यारजस्वलास्तोत्रम्, पाण्डुलिपि, रघुनाथ मन्दिर जम्मु।*
6. *श्रीयोनितन्त्रम, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-111-115

हिन्दी कथा–साहित्य पर वैश्वीकरण का प्रभाव

*डॉ० नियति कल्प**

सारांश

वैश्वीकरण से जो आशय हम ग्रहण करते हैं वह है कि एक ऐसी विश्व–बाजार–व्यवस्था जिसके तहत प्रत्येक देश को दूसरे देश में जाकर अपने उत्पादो और सेवाओं को बेचने की छूट हासिल होती है । जहाँ तक भारत के संदर्भ में वैश्वीकरण की बात है तो भारत सदा से "वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को स्वीकार करने वाला देश रहा है । विदित है कि बहुत पुराने समय से ही भारत के व्यापारिक संबंध विश्व के अन्य देशों से भी रहे हैं । इतना ही नहीं धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से भारत के परस्पर संबंध विश्व के अन्य देशों से थे । भूमंडलीकरण ने मनुष्य के सोचने–समझने के तरीके को बदल दिया। मोटे तौर पर कहा जाए तो आदमी के मन की बुनावट बदल गई और सारी कलाओं, जिसमें साहित्य भी है, का संबंध सीधे तौर पर इसी बुनावट से है। फलतरू साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा । इस दौर के कथाकारों की कहानियों का शिल्प और कथ्य पहले से भिन्न है। इनके यहाँ बड़ी समस्याएँ अपेक्षाकृत कम हैं । प्रभात रंजन, कुणाल सिंह, गीता चतुर्वेदी, दीपक श्रीवास्तव, मनोज रुपड़ा, आरती झा, रणेन्द्र, महुआमा जी, अल्पना मिश्र, कैलाश बनवासी आदि कथाकारों ने वैश्वीकरण के दौर मेंहिन्दी कथा–लेखन के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है । वैश्वीकरण के फलस्वरूप उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार से जिस तरह के संकट गहराये हैं उनमें नये संदर्भों के समाज की प्रस्तुति भी व्यापक तौर पर हुई है । बदलते हुए समय के साथ अभिव्यक्ति की जरूरतें और उस के तरीके बदलते रहते हैं । साहित्य उनको आत्मसात करता चलता है । संभवत रूचार्ल् सडार्विन का सिद्धांत" सरवाइवल ऑफ दि फिटेस्ट" साहित्य पर भी लागू होता है । बचेगा वही जो समय की कसौटी पर खरा उतरेगा । बचने का अर्थसाहित्य के स्थायित्व और लोकप्रियता से है । मन–मस्तिष्क को बेहतरीन खुराक पहुँचाने वाला साहित्य ही जीवंत और समाज–देश के लिए सदैव मानक बना रहता है।

वैश्वीकरण से जो आशय हम ग्रहण करते हैं वह है कि एक ऐसी विश्व–बाजार–व्यवस्था जिसके तहत प्रत्येक देश को दूसरे देश में जाकर अपने उत्पादों और सेवाओं को बेचने की छूट हासिल होती है । इस व्यवस्था के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू हैं, जिसके माध्यम से अपने उत्पाद बेचकर अधिक से अधिक उपार्जन किया जा सकता है । "वैश्वीकरण को 'भूमंडलीकरण' भी कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं अथवा क्रिया कलापों का विस्तार पूरे विश्व में करना" ।[1]

वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया को गति प्रदान करने में सबसे अहम् भूमिका आज सूचना प्रौद्योगिकी की है । यहाँ यह भी जानना जरूरी है कि सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार के पूर्व ही अमेरिकी और पश्चिमी देशों के कुछ एक बुद्धि जीवियों ने 'इतिहास का अंत' और 'विचारधारा का अंत' जैसी घोषणाएँ की, जिनका मूल उद्देश्य रहा कि वैश्वीकरण एक अनिवार्य प्रक्रिया है और इसकी छतरी के बाहर किसी का भी

**सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग राँची विश्वविद्यालय,राँची (उ०प्र०)*

कल्याण नहीं हो सकता । 'इतिहास का अंत' और 'विचार धारा का अंत' की घोषणा के साथ–साथ उत्तर–आधुनिक अवधारणा भी प्रचारित की गई, जिसके अंतर्गत वैश्वीकरण और स्थानीयकरण की प्रक्रिया साथ–साथ चलती है । उत्पादन भले ही स्थानीय स्तर पर होता हो, लेकिन उसकी निर्माता कंपनी उससे संबंधित नीतियों का निर्माण एक स्थान पर बैठकर करती है । संक्षेप में, हर चीज कोबाजार के आधार पर तौलकर खरीदने. बेचने का नाम ही वैश्वीकरण है, जिसके लिए कार्ल मार्क्स ने बहुत पहले कहा था कि पूँजी पति वर्ग का जहाँ भी पलड़ा भारी हुआ वहाँ उसने सभी सामंती–पितृ सत्तात्मक और काव्यात्मक संबंधों का अंत कर दिया । उसने मनुष्य को स्वाभाविक रूप से बाँधे रखने वाले नाना प्रकार के संबंधों को निर्ममता से तोड़ डाला और नग्न स्वार्थ के लिए नकद पैसे–कौड़ी के हृदय शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया।

वैश्वीकरण ने मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को उसका विनिमय मूल्य बना दिया है और पहले प्रदत्त नागरिक अधिकारों की जगह अब उसने एक अंतरूकरण– शून्य स्वतंत्रता की स्थापना की, जिसे मुक्त व्यापार कहते हैं । मुक्त व्यापार की इस व्यवस्था को सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति ने सबसे अधिक तीव्रता प्रदान की है । बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया मुक्त बाजार के अधीन हो जाती है जो कई मायने में मानवीय संबंधों का निर्धारण करने लगती है । "इस बात में कोई संदेहन ही कि आज का बाजार स्थानीय, अथवा राज्यीय न होकर इसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय है" ।[2]

इस भूमंडलीकरण को और अधिक धारदार बनाने के क्रम में कम्प्यूटर और इंटरनेट की अहम् भूमिका रही है । संचार के विविध माध्यमों के नए–नए आविष्कारों ने इस पूरी व्यवस्था को गति और मजबूती प्रदान की । 1999–2000 में पूरे विश्व के समक्ष कम्प्यूटर से संबंधित एक विकराल समस्या उपस्थित हुई. वाय टू के । इस अवसर ने भारत की एक ' कम्प्यूटर शक्ति', एक 'सॉफ्ट्वेयर पॉवर हाउस' के रूप में पहचान बना दी । फिर बी.पी.ओ या कॉलसेंटर का चलन बढ़ा । भारत पूरे विश्व का ' आउट सोर्सिंग हब' बनने लगा । इसके साथ–साथ भारत एक बहुत बड़े बाजार के रूप में दुनिया के सामने उपस्थित होने लगा । एक तरफ तो भारत श्रम का संसाधन बना तो दूसरी तरफ संभावना पूर्ण उपभोक्ता । इन सब के साथ बहुत स्वाभाविक रूप से हिन्दी एक आसान और सर्वग्राह्य भाषा के रूप में अपना स्थान बनाने लगी । यों भी देखें तो जो रोजमर्रा के व्यवहार–व्यापार की जो भाषा होती है वही जीवित रहती है। "आज के युग में उसी भाषा का अस्तित्व रहेगा जो व्यापक दृष्टि को अपना कर स्वयं को विकसित कर सकेगी" ।[3]

विश्व–पटल पर हिन्दी की धमक पहली बार तब महसूस हुई जब सन् 1977 में अटल बिहारी वाजपेयी जी ने संयुक्त राष्ट्र में अपना अभिभाषण हिन्दी में दिया । इस उद्बोधन में भी उन्होंने' वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा से प्रतिबद्धता को दुहराया । भाषण का अंत भी उन्होंने 'जय जगत' के उद्घोष के साथ किया । उसके बाद सुषमा

स्वराज ने भी एकाधिक बार संयुक्त राष्ट्र की सभा को हिन्दी में संबोधित किया । वाजपेयी जी के अभिभाषण के दो वर्ष पूर्व, 10जनवरी 1975 ई. को विश्व हिन्दी सम्मेलन की शुरुआत हुई। दुनिया भर के देशों में, बारी–बारी से, इस सम्मेलन के अब तक ग्यारह संस्करण हो चुके हैं । 2006 में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के सम्मान में विश्व हिन्दी दिवस की शुरुआत हुई , जो हर वर्ष10 जनवरी को मनाया जाता है ।

भूमंडलीकरण के दौर में कई सारे विदेशी और निजी चैनलों ने भारत में काम करना शुरु किया । समाचारों और मनोरंजन के अलावा खेलों की कमेंट्री भी लोगों को सुलभ होने लगी । यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह भी रही कि आम तौर पर अंग्रेजी में होने वाली कमेंट्री भी हिन्दी में होने लगी । बाजार का सच यही है कि "दुनिया की विविध भाषाओं के और यहाँ तक कि अंग्रेजी के चैनलों को भी झक मारकर हिंदी में अपना रूपान्तरण करना पड़ा है क्योंकि वे उपभोक्ता की मंडी का सच जान गए हैं" ।[4]

भूमंडलीकरण के दौर में जब दूसरे देशों के बीच हर तरह का विनिमय बढ़ा तो साहित्यिक–सांस्कृतिक विनिमय भी बढ़े । इसका लाभ हिन्दी को भी मिलाहै । इस संबंध में दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं । कुमार विश्वास आज भारत के जाने–माने कवि हैंजोमंचीय कविता के प्रसार–विकास के लिए सतत प्रयासरत हैं । उन्होंने हिन्दी और हिन्दी कविता को सुगमता पूर्वक विश्व के विभिन्न मंचों तक पहुँचाया है । चाहे वो दुबई में होने वाला इंटर नेशनल मुशायरा हो, चाहे वो गूगल के हेड् क्वार्टर में हिन्दी में उनका भाषण हो । प्रह्लाद सिंह टिपान्या कबीर को गाने वाले एक लब्ध प्रतिष्ठित लोक गायक हैं । हाल के वर्षों में उनके कबीर के भजनों के सफल कार्यक्रम अमेरिका में आयोजित किए गए हैं । ये दोनों उदाहरण हिन्दी की ताकत को दर्शाते हैं । इसी दौर में यह भी हुआ कि समाज का वह तबका जिसकी आवाज नहीं सुनी जाती थी, जो अंग्रेजियत के साहबी पन से आतंकित था, उसका भी सर उठने लगा । " समाज में वर्चस्व वाले लोग देसी हो गए" ।[5]

भूमंडलीकरण का एक दूसरा पक्ष भी है । इसने भौतिक सुविधाओं में तो बढ़ोत्तरी की लेकिन सामाजिक और पारिवारिकता ने–बाने को चोट भी पहुँचाई । मनुष्य के सोचने–समझने के तरीके को इसने बदल दिया । उसके भाव–पक्ष में आमूल बदलाव आने लगे । आदमी व्यक्ति–केंद्रित होता चला गया । मोटे तौर पर कहा जाए तो आदमी के मन की बुनावट बदल गई और सारी कलाओं, जिसमें साहित्य भी है, का संबंध सीधे तौर पर इसी बुनावट से है । देखा जाए तो " वैश्वीकरण भी एक तरह की वृहद सामजिक–आर्थिक परिघटना है जिसने विश्व–समुदाय के विभिन्न अवयवों के साथ–साथ भाषा को भी प्रभावित किया" ।[6] फलतरू साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा । सोशल मीडिया ने भी जहाँ संवाद को सुलभ किया वहीं उसका अतिरेक भी हुआ । संजय कुंदन अपनी 'सोशल मीडिया' कविता में कहते हैं " एक साथ इतने सारे शब्द पहले कभी नहीं दिखायी पड़े थे। शब्द ही शब्द थे पर कोई किसी को सुन नहीं पा रहा था" ।[7]

बीसवीं शताब्दी के आखिरी दशक में उदय प्रकाश, शिवमूर्ति, सृंजय, अखिलेश, संजय खाती, सारा राय आदि वैश्वीकरण के उत्पाद से निर्मित स्थितियों के दुष्प्रभाव और लुप्त होते मानव मूल्यों की कथा कह रहे थे तो इधर प्रभात रंजन, कुणाल सिंह, गीत चतुर्वेदी, दीपक श्रीवास्तव, मनोज रुपड़ा, आरती झा, रणेन्द्र, महुआ माजी, अल्पना मिश्र, कैलाश बनवासी आदि कथाकारों ने वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी कथा–लेखन के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है । इन कथाकारों की कहानियों का शिल्प और कथ्य पहले से भिन्न है। इनके यहाँ बड़ी समस्याएँ अपेक्षाकृत कम हैं । 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' शीर्षक कहानी में ऐसी ही एक घटना जिसमें चलती ट्रेन में बैठने की जगह बनाने के लिए की गई चालाकियों का विवरण देते हुए कहानीकार पंकज सुबीर कहतेहैं " ..किस तरह ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में आयी, फिर धीरे–धीरे भारत में फैली और अन्तत रूपूरे भारत पर कब्जा कर लिया , तब उसे समझन हीं आता था कि ऐसा कैसे हो सकता है , इतिहास का वो सबक आज जाकर उसे समझ मेंआया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने किस तरह भारत पर कब्जा किया होगा" ।[8] बड़े–बड़े स्लोगन नहीं मिलने पर छोटी–छोटी लेकिन आवश्यक जीवन–स्थितियों को इन कथाकारों ने नये संदर्भों में सुलझाया और रचाहै । धर्म के कारण, आधुनिक समझे जाने वाले बड़े शहरों में भी, मकान ढूँढने की समस्या उतनी ही विकट है । ममता सिंह की कहानी 'आखिरी कॉन्ट्रैक्ट' की मुख्य पात्र इसी समस्या से दो–चार होने पर कहती है" तमाम जिरह के बावजूद मकान मालिक ने घर देने से इंकार कर दिया। मेट्रोपॉलिटन शहर का यह मेरे लिए पहला झटका था" ।[9]

अगर हम उपन्यासों की बात करें तो बीसवीं सदी के आखिरी दशक और इक्कीसवीं सदी से गुजर रहे आरंभिक दशक में हिन्दी उपन्यासों का परिदृश्य भी आशा की नई उम्मीदों से रूबरू कराता है । ऐसे उपन्यासों में भगवान दास मोरवाल का 'काला पहाड़' , संजीव का 'जंगल जहाँ शुरु होता है' , श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' , तेजिन्दर का 'काला पादरी' , शिवमूर्ति का 'आखिरी छलाँग' , रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' व 'गायब होता देश' आदि कुछ ऐसे नाम हैं जो वैश्वीकरण की जद में आये भारतीय समाज की विविध स्थितियों का चित्रण करते हैं । इन और इन जैसे अन्य उपन्यासों में जिस प्रकार की चिंता मिलती है वह इसके आगत खतरों और मानवीय मूल्यों पर छाये संकट के बादल इनमें दीख जाते हैं । कथा कारनी लाक्षी सिंह के सद्य–प्रकाशित उपन्यास 'खेला' मेंभी इस आधुनिक व्यवस्था को केंद्र में रखा गयाहै । वरिष्ठ लेखिका ममता कालिया ने उपन्यास पर इस तरह से टिप्पणी की है. "प्रस्तुत उपन्यास 'खेला' विश्व बाजार की उठा पटक और इनसान की जद्दोजहद का जीता–जागता तमाशा प्रस्तुत करता है ।[10]

ध्यातव्य है कि जिन कहानियों और उपन्यासों की चर्चा यहाँ की गई है , वे सिर्फ कुछ उदाहरण भर हैं । इसकी अवधारणा और साहित्यि कम हत्त्व को रेखांकित करने के लिए हमें आधुनिक काल के शुरूआती दौर के कथा–साहित्य और उसके विकास की पृष्ठ भूमि को समझना आवश्यक होगा । हिन्दी कथा–साहित्य के विकास परंपरा के

निरूपण क्रम में वैश्वीकरण के दौर में रचे गये कथा–साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण और उनके सामाजिक सरोकारों की परख हिन्दी साहित्य के बदलते हुए परिदृश्य को समझने में हमारी मदद करते हैं । परिवर्तन तो अवश्यंभावी हैं, हिन्दी साहित्य भी उनसे अछूता नहीं रह सकता । बदलते हुए समय के साथ अभिव्यक्ति की जरूरतें और उस केतरी के बदलते रहते हैं । साहित्य उनको आत्मसात करता चलता है । संभवत रूचार्ल् सडार्विन का सिद्धांत " सरवाइवल ऑफ दि फिटेस्ट" साहित्य पर भी लागू होता है । बचेगा वही जो समय की कसौटी पर खरा उतरेगा । बचने का अर्थ साहित्य के स्थायित्व और लोकप्रियता से है । मन–मस्तिष्क को बेहतरीन खुराक पहुँचाने वाला साहित्य ही जीवंत और समाज–देश के लिए सदैव मानक बना रहता है ।

संदर्भ

1. *क्या वैश्वीकरण ने सचमुच हिंदी को कुछ दिया है ?, पृ. 189ए विश्व हिंदी पत्रिका 2020ए संजय कुमार,*
2. *डिजिटल मीडिया में हिंदी और वैश्विक बाजार, पृ. 80ए विश्व हिंदी पत्रिका 2020ए डॉ संजय सिंह बघेल*
3. *भारतीय तथा वैश्विक पटल पर हिंदी में रोजगार की संभावनाएँ, पृ 134ए विश्व हिंदी पत्रिका 2020ए डॉ पद्माकर पाण्डुरंग घोरपड़े*
4. *वैश्विकहिंदी रू विकास और विस्तार, पृ 21ए विश्व हिंदी पत्रिका 2020 प्रो. खेमसिंह डहेरिया,*
5. *जब तो पमुका बिलहो, प्रभाश जोशी, पृ. 152ए राजकमल प्रकाशन*
6. *क्या वैश्वीकरण ने सचमुच हिंदी को कुछ दिया है ?, पृ. 189ए विश्व हिंदी पत्रिका 2020ए संजय कुमार,*
7. *तनी हुई रस्सी पर, संजय कुंदन, पृ 95ए सेतु प्रकाशन 2019*
8. *ईस्ट इंडिया कम्पनी, पंकज सुबीर, पृ 58ए भारतीय ज्ञानपीठ , 2011*
9. *राग मारवा, ममता सिंह, पृ 147 एराज पाल प्रकाशन, 2018*
10. *खेला, नीलाक्षी सिंह, बैककवर, सेतु प्रकाशन, 2021*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-116-120

प्राचीन भारतीय मंदिरों का वर्गीकरण : आधार एवं भिन्नताएं

*डॉ० राजेश कुमार तिवारी**

नागर–द्रविड़–वेसर शैलियां

गुप्तयुग के पश्चात मंदिर वास्तु के इतिहास में क्रांतिकारी विकास परिलक्षित होता है। पूर्व मध्य युग मेंदिर वास्त्ु का स्वर्णिम युग कहलाता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक मंदिरोंका ऐसा क्रम उपलब्ध होता है कि जैसे संपूर्ण भारत ही धार्मिक अनुष्ठान का केंद्र बन गया है। विविध शैलियों के मंदिर अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ कलाकार की आत्मा को शरीर प्रदान कर रहे हैं। दुर्भाग्य ही था कि मुस्लिम आक्रामकों ने अपनी धर्माँधताके कारण भारत की धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक उन मंदिरों को अपना लक्ष्य बनाया उत्तर भारत के अधिकांश मंदिर इनके द्वारा ध्वस्त कर दिए गए इनकी दृष्टि से परे पर्वत श्रेणियों के कुछ मंदिर अवशिष्ट हैं जिनमें वास्तुकला का इतिहास जीवित है। दक्षिण भारत मूर्ति भंजक आक्रामको से वञ्चित था। फलतः वहां के मंदिर अपने मूलरूप में अपनी पुरागाथा का गुणगान कर रहे हैं। उत्तर एवं दक्षिण के मंदिरो में बाह्य स्वरूप में अनेक भिन्नताएं हैं इस युग में विरचित वास्तुशास्त्रों में मूलतः इन्हें नागर, द्राविड़ तथा वेसर नामों से संबोधित किया गया हैं जो मंदिर वास्तु की तीन शैलियों के नाम से विख्यात है।

उपर्युक्त मंदिर वास्तु के आधार पर विद्वानों ने निम्न मत प्रकट किये है। उपलब्ध क्षेत्र के आधार पर फर्गुसन[1] ने इन्हें भारतीय आर्य द्रविड़ तथा चालुक्य शैलियों के नाम से सम्बोधित किया है। डॉ०पी०के० आचार्य[2] ने मानसार को इस वर्गीकरण का आधार स्वीकार करते हुए नागर, द्रविड़ एवं वेसर को ही औचित्यवूर्ण माना है। कुमार स्वामी[3] ने फर्गुसन के भौगोलिक विभाजन के सिद्धांत में संदेह व्यक्त करते हुए भूमि योजना एवं विकास को विभाजन के आधार पर प्रदान किया है। फर्गुसन की यह मान्यता है कि विंध्य के उत्तर के मंदिरों को नागर, पश्चिम भारत दक्कन तथा मैसूर क्षेत्र के मंदिरों को वेसर तथा तमिल के मंदिर को द्राविण नाम क्षेत्रीयता के आधार पर प्रदान किया गया है। वेसर मंदिर चालुक्य साम्राज्य में ही विकसित हुई इसलिए उन्हें चालुक्य शैली भी कहा जाता है। डॉ0 पी0के0 आचार्य ने भूमि योजना, विकास एवं शिखर की भिन्नता तथा भौगोलिक सीमाओं को समवेत रूप से मंदिरों के वर्गीकरण के आधार के रूप में स्वीकार किया है। उन्होनें ऐहोल एवं पट्टदकल में द्राविण एवं वेसर मंदिरों की सह–उपलब्धि के आधार पर मात्र भौगोलिक कारण को महत्वहीन कहा है। भट्टाचार्य[4] तथा सौंदर राजन्[5] ने भागोलिक आधार की अपेक्षा योजनागत विभेद को अधिक महत्वपूर्ण माना है। विभाजनाधार

**असिस्टेंट प्रोफेसर प्राचीन इतिहास विभाग, पंडित महादेव शुक्ल कृषक पी.जी. कॉलेज गौर बस्ती (उ०प्र०)*

के सम्बन्ध में इतने अधिक विवाद हैं कि किसी सर्वसम्मत आधार की कल्पना निरर्थक होगी। सर्वाधिक औचित्यपूर्ण वास्तुशास्त्रों में विर्णित विभाजनाधार का विवेचन एवं उपलब्ध मंदिरों का वास्तुगत विभेद स्पष्ट करना होगा जिनसे इन शैलियों की विभिन्नताएँ स्वयं प्रकट होगी। मयमत, तंत्रमुच्चय, सुप्रभेदागम, कश्पपशिल्प, कामिकागम, समरांगणसूत्रधार तथा ईशानशिवगुरुदेवपद्धति इत्यादि शिल्पशास्त्रों में नागर एवं द्राविड़ शैली की ही उल्लेख है। डॉ0 सास्वती[6] ने ठीक ही उन्हें प्राचीनतम ग्रंथ बृहत्सहिता में नागर एवं द्राविड़ शैली पर कोई स्वतंत्र शैली नहीं है। साथ ही उसका विकास भी 10वीं शताब्दी के पश्चात ज्ञात होता है। आधार ग्रंथोंमेंभौगोलिक विभाजन को स्पष्ट करते हुए विन्ध्य एवं हिमालय के मध्य में नागर, कृष्णा एवं कन्याकुमारी के मध्य द्राविड़ तथा विन्ध्य एवं कृष्णा के मध्य वेसर मंदिरों की प्रधानता है।

नागरीमध्य. देशेतुद्राविडी– दक्षिणेभागे। द्राविड़ीस्योचितो देशो द्रविडस्यान्न चान्यथा द्राविड़ी कृष्णादि कन्यान्तम[7]। उसके साथ ही स्थानीय मंदिरों के भी उल्लेख हैं जैसे लाटी शौवी लाट देश वैराट सेवैराटी इत्यादि। शिल्पशास्त्रकार इस तथ्य से पूर्णतः अवगत थे कि कलाकार सौंदर्य वृद्धि के लिए किसी भी क्षेत्र से किसी प्रकार के मंदिर का निर्माण कर सकता है। यही कारण है कि ऐहोल एवं पट्टदकल में नागर एवं द्राविड़ मंदिरों का निर्माण बादमी के चालुक्य के शासन काल में साथ–साथ हुआ। सभी मंदिरों के सर्वत्र निर्माण की स्वतंत्रता पदान की गई–

सर्वाणि सर्वदे शेषु भवन्तित्यापि केचन । सर्व सर्वत्र सम्मतम् ।

भूमि योजना एवं विकास के आधार पर मंदिरों का विभाजन वास्तुोशास्त्रों में वर्णित है। तंत्रसमुच्चय, काामिकागम, मयमत तथा अन्य शिल्पशास्त्रों के आधार से स्तूपी तक वर्गाकार मंदिर को नागर, अठपहलू मंदिरों को द्रविड़ तथा वृत्ताकार मंदिरों को वेसर कहा गया है। कामिकागम में नागर मंदिरों के सम्बन्ध में उक्ति है। चतुरस्रायतास्रम पन्नागरम् परिकीर्तितम्। यहाँ चतुरस्र एवं आयतास्र के आधार पर वर्गाकार एवं आयताकार नागर मंदिरों की धारणा व्यक्त की गई है। आयताकार मंदिर योजनाएँ अत्यअल्प प्राप्त होती है। डॉ0 सरस्वती[8] ने विवेकपूर्ण ढंग से उसकी व्याख्या करते हुए यह बतलाया है। कि नागर मंदिरों का वर्गाकार आधार दीवारों के मध्य बड़े अंश के कारण शुद्ध वर्गाकार नहीं वरन क्रास आकार में बन जाता है। यह चतुरास्ररायतास्र का तात्पर्य उन्हीं क्रुसीफ्रॉर्म मंदिरों से है। जो उत्तर भारत के अधिकांश मंदिरों में शिखर के विभिन्न भूमियों में विभाजित करने का विधान है।

नागर एवं द्राविड मंदिरों में भिन्नता

अधिष्ठान–द्राविड़ मंदिरों में अधिष्ठान आवश्यक नहीं है। किंतु नागर मंदिरों में अधिकतर मंदिर उच्च चबूतरे पर बने हुए हैं। जिसे अधिष्ठान या जगती कहा गया है। पंचायतन मंदिरों में तो यह अनिवार्य अंग है।

गर्भगृह– दोनों ही शैलियों के मंदिर में गर्भगृह सामान्यता वर्गाकार हैद्य नागर

मंदिरों में गर्भगृह के चारों ओर ढाका प्रदक्षिणा पथ कुछ ही मंदिरों में हैद्य अधिकांश उच्च अधिष्ठान प्रदक्षिणा पथ के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इनके विपरीत दक्षिण के मंदिर अधिकतर ढके प्रदक्षिणा पथ से युक्त हैंद्य

गर्भ गृह की दीवारें– नागर एवं द्राविड़ मंदिरों के गर्भगृह की दीवारों में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती हैद्य नागर गर्भगृह की दीवारों के बाह्यभाग के अनेक अंश बाहर निकले हुए हैं जो दीवार की ऊंचाई तक जाते हैं उन्हें रथ कहा गया है।

क्षैतिज विभाजन–विकसित नागर मंदिर में गर्भगृह के सामने क्रमशरू अंतराल, मंडप, अर्द्धमंडप प्राप्त होते हैं। एक ही अक्ष पर एक दूसरे से संलग्न इन भागों का निर्माण किया गया है। द्राविड़ मंदिरों में गर्भगृह ,मंडप, नाटमंडप तथा भोगमंडप एक ही अक्ष पर संयुक्त रूप से या अलग–अलग प्राप्त होते हैं।

शिखर–नागर एवं द्राविड़ मंदिरों का सर्वाधिक स्पष्ट अंतर उनके शिखरों में दिखाई देता है। यद्यपि दोनों शिखरों का उद्भव राजप्रासादों या भव्यभवनों से हुआ है। किंतु आर्य एवं द्राविड़ वास्तुकला की परंपरागत विशेषताओं के आधार पर इनका विकास भिन्न रूपों में हुआ है। द्राविड़ शिखर आधार खंड का क्रमशरू घटता हुआ रुप विभिन्न खंडों में प्राप्त होता है जिन्हें भूमि या रत्न कहा गया है।

इसके विपरीत नागर मंदिर गर्भगृह का ही क्रमशरू घटता हुआ रूप है किंतु इसमें खंड ना होकर ढलुआ घटाव होता है जिससे हास्तिकार की तरह शिखर का रूप निरूपित होता है इसीलिए उसे रेखा शिखर के नाम से भी संबोधित किया गया है। घटते हुए शिखर में लंबवत रेखाओं का निर्माण होता है। कभी–कभी मुख्य शिखर के सटे उसके चारों तरफ उसी की लघु अनुकृतियाँ बनी होती है जिसे पुरुष उरुश्रृंग या अंग शिखर कहा जाता है। शिखर के ऊपर मस्तक भाग भी द्राविड़ शैली से भिन्न होता है। नागर मंदिरों के काष्ठ पर विशाल आमलक या अमलसार होता है इसके कई साहित्यिक साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं ।

जैसे– 1– वेद्याश्र्वोपरि यच् छेषम् कण्ठाश्वामलसारकः।[10]

2– तदूध्र्वन्त भवेद्वदी सकण्ठा मानसारकम्।[11]

3– तदूध् र्वंतु भवेदशःकण्ठ श्वामल सारकान्।[12]

4– शुकनासानि प्रकूर्वीत तृतीये वेदिका मता।
कण्ठमलसारं चचतुर्थे परिकल्पयेत्।।[13]

5– चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामुलसाधनम्।14

अंग शिखरों पर भी लघु आमलक बनाए जाते हैं। अंग शिखर विहीन शिखरों के आधार चतुष्कोणों पर आमलक की परंपरा प्रचलित है। आमलकं चतुष्कोणे ।

नागर एवं द्राविड़ शिखरो में लंबवत अलंकरण की विभेदाधार हैं। द्राविड़ शिखर में हर दो खंडों के मध्य कुछ अंश अंदर घुसे होते हैं जिनमें आले या चौत्यतोरण बने होते

हैं इन्हें ही कुडु कहा गया है। नागर शिखरों में कहीं–कहीं मध्य अंग शिखर में आले ही प्राप्त होते हैं जिनमें मूर्ति–मुख स्थापित होती है।

प्रवेश द्वार –नागर एवं द्राविड़ मंदिरों के प्रवेश द्वार से ही इनकी पहचान सरल हो जाती है द्राविड़ मंदिरों के प्रवेश द्वार को गोपुरम कहा जाता है। इनमें प्रवेश द्वार के ऊपर द्वितीय खंड तोरण द्वार बना होता है। यह तोरण गाय के सींग की भांति होता है, इसीलिए संभवतः इसे गोपुरम नाम से संबोधित किया गया है। शिल्परत्न में इसे 5,6,या 7 भूमियों का बताया गया है।

द्वारगोपुरकं कुर्यात् पंचषट सप्तभूमिकम् [15]

ईशानशिवगुरुदेवपद्धति में एक से सात भूमियों तक के गोपुरम का विधान किया गया है ।

एकादिपंचभूम्यन्तमलपाना गोपुराणिह

दिभौमात् षटतलान्तानि मध्यानां गोपुरा ण्यपि ।

द्वितलातत सप्त भौमन्तमुत्तामानां तु गोपुरम **?**[16]

द्राविड़ मंदिरों के गोपुरम का विकास कैसे हुआ ? इस संबंध में गहनता से उसकी वास्तु गत विशेषताओं का अध्ययन किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि द्राविड़ भारतीय वास्तुकारों ने प्रवेश द्वार को भी विमान का स्वरूप प्रदान किया है इससे मंदिर की भव्यता एवं उसके सौंदर्य में पूर्ण वृद्धि होती है प्रवेश द्वार के ऊपर द्वितीय भूमि देव स्तुति के लिए संभवत बनी थी जो बाद के युग में प्रवेश द्वार का अनिवार्य अंग बन गई।

वेसर शैली–मंदिरों की बेसर शैली कोई भिन्न शैली नहीं है बल्कि नागर एवं द्रविड़ शैलियों का मिश्रित रूप है बेसर से तात्पर्य खच्चर अर्थात मिश्रित। इसीलिए ग्रंथों में इसे वृत्ताकार मंदिर कहा गया है उपलब्ध मंदिरों में ज्ञात होता है कि प्रारंभिक चालुक्यों के काल मे नागर एवं द्राविड़ मंदिर साथ–साथ निर्मित हुए। बाद में चालुक्यों के काल मे इन दोनों का सम्मिलित रुप विकसित हुआ।ऐसे मंदिर चालुक्यों के साम्राज्य की सीमा मे अधिक प्राप्त होते हैं, इसीलिए इसका एक नाम चालुक्य शैली भी है। महाराष्ट्र और कर्णाटक इसके प्रमुख क्षेत्र है। कर्जिंस के अनुसार– वेसर शैली कोई स्वतंत्र शैली नही थी बल्कि प्रारंभिक द्रविड़ मंदिरों का पश्चिमी वास्तुकारों द्वारा परिष्कृत रूप है। इनमें कहीं–कहीं नागर रेखाएँ एवं अलंकरण प्रयुक्त होने से इसे पूरी तरह द्रविड़ शैली का भी नहीं कहा जा सकता है।इसके पिरामिडाकार शिखर में उपर नीचे निर्मित आले रेखाओं का निर्माण करते है। दीवारें नागर रक्षाकार रूप मे बनी है किंतु बीच बीच मे अंदर घुसे भाग पर द्राविड़ शैली का प्रभाव है। विमान, मंडप एवं अर्ध मंडप उसके प्रमुख अंग हैं इसमें द्रविड़ विशेषताओं की ही प्रधानता है किंतु नागर विशेषताओं के मिश्रण से यह मंदिर सौंदर्य की दृष्टि से अधिक आकर्षक है इसके स्तंभ ,प्रवेश द्वार ,दीवारें तथा शिखर विभिन्न अलंकरण से सुसज्जित है जिस प्रकार होयसल मूर्तियां अपने अधिक अलंकरण के लिए विख्यात है उसी प्रकार वेसर मंदिर भी अलंकरण के लिए विदित है वेसर शैली

का पूर्ण परिपक्व रूप भी होयसल युग में दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार नागर,द्राविड़ एवं वेसर मंदिर अपनी वास्तुगत विशेषताओं के कारण ही एक दूसरे से अलग हैं द्यपदि उत्तर भारत की नाग जाति ने नागर मंदिरों के विकास में योगदान किया तो दक्षिण के द्रविडों ने भी स्वतंत्र मंदिरों के सृजन में मौलिकता का परिचय दिया नागर एवं द्राविड़ नामकरण का यही मुख्य आधार प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1. *हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर।*
2. *इंडियन आर्किटेक्चर पृष्ठ 110–120 और 160–169 ।*
3. *हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड एसोसिएशन आर्ट पृष्ठ 107 ।*
4. *इंडियन आर्किटेक्चर पृष्ठ 130–132 ।*
5. *कैनन ऑफ इंडियन आर्ट पृष्ठ 153–165 ।*
6. *इंडियन टेंपल स्टाइल पृष्ठ 15–21 ।*
7. *इंडियन कल्चर 184 कश्यपशिल्प, कामिकागम, ईशानशिवगुरुदेवपद्धति ।*
8. *स्ट्रगल फॉर एंपायर पृष्ठ 531।*
9. *मत्स्य पुराण पृष्ठ 269–13 ।*
10. *मानसर पृष्ठ 169 ।*
11. *विश्वकर्मा प्रकाश पृष्ठ 6–73 ।*
12. *गरुण पुराण पृष्ठ 47,5 ।*
13. *शिल्प रत्न पृष्ठ 37,110 ।*
14. *विष्णुधर्मोत्तरम पृष्ठ 88 ।*
15. *चालुक्य आर्किटेक्चर ऑफ कनारीज डिस्ट्रिक्ट पृष्ठ 17 ।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-121-125

साहित्य और हिन्दी सिनेमा

*डॉ० रिंकी सिंह**

कहा जाता है कि एक विधा के रूप में सिनेमा, नाटक की कोख से ही जन्मा। नाटक में नश्वर जीवन होता है और फिल्म में कैमरे की मदद से निर्देशक द्वारा गढ़ी गयी अनश्वर जीवन छवि। अब तक की अपनी सतत यात्राओं में हमने अनगिनत कस्बों, नगरों, महानगरों में रामलीला, रासलीला, नौटंकी, नाटक, पारसी थियेटर के नाटक, विभिन्न क्षेत्रों के लोकनृत्य नाट्य, सुगम और शास्त्रीय संगीत की महफिले, आदि का आनन्द लोगों का लेते देखा। उन्हें सिनेमा देखना नसीब ही नहीं होता था, आज के बच्चों को यह समझने में कठिनाई होगी कि आज से पचास साल पहले करोड़ों बच्चों को सिनेमा देखने का कोई अवसर था ही नहीं और जिन्हें था भी उन्हे महीने दो महीने में कभी सिनेमा देखने का अवसर मिलता था। पर अब तो प्रतीक्षा का युग ही समाप्त हो गया। तत्काल का जमाना आ गया है। अब कौन कबूतर से खत भेजता है या पत्र लिखता है। अब तो सीधे मोबाइल पर बात होती है और सही कहा जाये तो वह भी अब पुराना हुआ अब तो मनुष्य सीधे इन्टरनेट की जकड़ में है। अब तो गली–गली में युवा हाथों में लैपटॉप झुलाते हुए अपने साथ अपना सिनेमाहाल लेकर चल रहे हैं।

भारत में फिल्मों की विकास यात्रा देखें तो इसका पहला युग सन् 1896 से 1930 तक है। यह मूक सिनेमा का समय था। मूक फिल्मों के निर्माता दादा साहब फाल्के को भारतीय सिनेमा का जनक कहा जाता है। इन्होने पहली मूक फीचर फिल्म हरिश्चन्द्र बनायी। यह फिल्म अब उपलब्ध नही। सन् 1931 में जब बोलती फिल्में आर्देशर ईरानी की आलम–आरा और तेलुगू में भक्त प्रहलाद तथा तमिल में कालिदास बनी तो फिल्मों का दूसरा उत्थान शुरू हो गया। सन् 1931 में सन् 1960 तक इस कला का बहुत विकास हुआ।

हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार राही मासूम रज़ा जी साहित्य और हिन्दी सिनेमा का सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते हैं–"फिल्म कला है या केवल व्यापार ? मैं फिल्म को साहित्य का अंग मानता हूँ। आज के मानव की आत्मा की पेचीदगी को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्य के पास उपन्यास और फिल्मों के सिवा कोई साधन नही है। मैं यहाँ यह बहस नही छोड़ना चाहता कि कविता क्या बनेगी।

काव्य को साहित्य मानता हूँ, और मैं उपन्यास और फिल्म को भी काव्य का ही एक रूप मानता हूँ। जैसे–जैसे जीवन पेचीदा होता गया, वैसे ही वैसे काव्य वरन बदलता गया। महाकाव्य उपन्यास बना और नाटक फिल्म। कुछ लोग यह कहते हैं कि अच्छी फिल्म केवल वही हो सकती है जो असाहित्य हो। मैं यह बात नहीं मानता। आप कह सकते हैं फिल्म दृष्टि की कला इसलिए वह साहित्य नही हो सकती। साहित्य भी अब

**असिस्टेण्ट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, सर्वोदय विद्यापीठ पी.जी. कालेज सलोन, रायबरेली (उ.प्र.)*

दृष्टि ही की कला है। हमने जिस दिन लिखना सीखा था, साहित्य ने उसी दिन बोलना बंद कर दिया था। फिल्म भी एक किताब है जिसे डायरेक्टर हमारे सामने खोलता भी जाता है और पढ़े–लिखे है तो उसके सुनाए बिना भी हम इस किताब को पढ़ सकते हैं।" [1]

जनता और कला का रिश्ता हमेशा साधारणीकरण के निष्कर्ष पर टिका रहा है। दृश्य काव्य की प्रतिज्ञाएं लोकधर्मी रही है। फिल्में क्या है ? डॉ. महेन्द्र मित्तल अपने शोधग्रन्थ में लिखते हैं – "कला के विभिन्न रूपों को आत्मसात करके जीवन की सजीव और मार्मिक चित्राभिव्यक्ति करने वाली विधा का नाम ही चलचित्र है।"[2] हिन्दी की लोकप्रियता ने इस विधा को फिल्मों की ओर खूब खीचा है।

फिल्म मौसम कमलेश्वर के ही लघु उपन्यास 'आगामी अतीत' पर आधारित है। इसी तरह स्वामी फिल्म शरतचन्द्र के उपन्यास पर आधारित बासु चटर्जी निर्देशित शबाना आज़मी, गिरीश कर्नाड, विक्रम, शशिकला, उत्पल दत्त अभिनीत 'स्वामी' सौदामिनी की कथा है। इसके लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक और नायिका का पुरस्कार मिला। इसकी संवाद लेखिका थी सुप्रसिद्ध कथाकार–मन्नू भण्डारी, गीतकार–अमित खन्ना और संगीतकार–राजेश रोशन।

इसी क्रम में केशव प्रसाद मिश्र का उपन्यास 'कोहबर की शर्त' जिस पर आधारित फिल्म 'नदिया के पार' छोटी सी साधारण कहानी पर बनी असाधारण फिल्म है। फिल्म का लोकजीवन से जुड़ा मानवीय पक्ष रहन–सहन का स्तर, वेशभूषा, गीतों की लोकनृत्य, शब्द विन्यास सहज–सरल–सीधे संवाद और गवई संवेदन ही इसकी शक्ति और सफलता का कारण है।

प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों पर अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ, फिल्म सद्गति यह मूल रूप से टेलीविजन के लिए बनायी गयी थी। स्वयं सत्यजीत राय भी इसके पहले 'शतरंज के खिलाड़ी' बना चुके थे, लेकिन कोई भी फिल्म इस अप्रतिम कथा शिल्पी के साथ न्याय नहीं कर सका। सत्यजीत राय की पचास मिनट की यही एकमात्र फिल्म है जिसने प्रेमचन्द के साहित्य को पूरी सजगता के साथ पर्दे पर प्रस्तुत किया। जिस तरह प्रेमचन्द ने 'सद्गति' में ब्राह्मणनाद पर गहरी चोट की थी उसी प्रकार सत्यजीत राय ने भी उतनी ही तीव्र अभिव्यंजना की है।

फिल्म सूरज का सातवाँ घोड़ा श्याम बेनेगल की धर्मवीर भारती के इसी नाम के उपन्यास पर बनायी गयी मनमोहक फिल्म। जो उपन्यास के घुमावदार कथानक को उतने ही रोचक ढंग से प्रस्तुत करती है। शमा जैदी की पटकथा कृति के साथ कलाकारों का अभिनय भी। रजत कपूर, नीना गुप्ता, के.के. रैना, अमरीशपुरी, पल्लवी जोशी, रघुवीर यादव ने कथा के विभिन्न मूडों को खूबसूरती से जिया है।

महाश्वेता देवी के उपन्यास पर आधारित फिल्म रूदाली कल्पना लाजमी की यह काव्यात्म अभिव्यक्ति सही मायनों में स्त्रीत्व को श्रद्धांजलि के समान है। डिम्पल

कपाड़िया और राखी ने रूदाली के चरित्र को दो पीढ़ियों के प्रतिनिधित्व द्वारा जीवन्त कर दिया है। सनीचरी की भूमिका को डिम्पल ने बड़ी गहराई से जिया है। इस भूमिका के लिए उन्हे राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला।

गोविन्द निहलानी निर्देशित 'हजार चौरासी की माँ' महाश्वेता देवी के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित है। नक्सलवाद की पृष्ठभूमि पर बनायी गयी इस फिल्म में जया बच्चन ने शीर्षक भूमिका में एक आतंकवादी की माँ की पीड़ा को सिर्फ भावनात्मक गहराईयों के जरिये उकेर कर ही आश्वास्ति नहीं ढूढ़ी थी अपितु स्थितियों के बौद्धिक तनाव को भी रेशा–रेशा उधेड़ दिया था।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिन्दी के आंचलिक कथा साहित्य के जन्मदाता है। उनकी रचनाओं में लोक–संस्कृति की गंध विद्यमान है। बासु भट्टाचार्य द्वारा निर्देशित तथा कवि शैलेन्द्र द्वारा निर्मित तीसरी कसम की पटकथा तथा संवाद हिन्दी के यशस्वी कथाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने ही लिखे थे। उनकी लोकप्रिय जनांचल पर आधारित कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' को यदि पर्दे पर ठीक साहित्य की तरह लिखी गयी एक भावना प्रधान कविता भी कहा जाये तो इसमें कोई बड़ी गलत बात न होगी। यह फिल्म राष्ट्रपति से पुरस्कृत फिल्म है।

फिल्म आषाढ़ का एक दिन मोहन राकेश के नाटक पर आधारित एफ.एफ.सी. के आर्थिक सहयोग से बनी मणिकौल की 'उसकी रोटी' के बाद दूसरी कलात्मक फिल्म है। इसकी संरचना यथार्थपरक थी। अरुण खोपकर 'कालिदास' रेखा सबनीस 'मल्लिका' और ओम शिवपुरी 'विलोम' की भूमिकाओं में थे। इसे एक नाटक की तरह चित्रांकित किया गया था। यद्यपि इसका सार्वजनिक प्रदर्शन सम्भव ही नही हो सका लेकिन बौद्धिकों ने इसे सराहा और फिल्म समारोहों में पुरस्कारों से भी नवाजा गया।

आनन्दमठ फिल्म बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित फिल्मिस्तान के बैनर तले निर्मित और हेमेन गुप्ता निर्देशित इस फिल्म के गीत शैलेन्द्र और हसरत ने लिखे थे तथा संगीतकार थे हेमन्त कुमार। इस फिल्म में राष्ट्रीय गीत वन्देमातरम् का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया गया था।

फिल्म हातिमताई अरेबियन नाइट्स की कहानियों पर मूक युग से होकर आज तक फिल्मों का निर्माण हुआ। ये कहानियाँ जनसाधारण में अपार लोकप्रियता हासिल करती रही हैं।

गोगोल की कथा 'द ओवरकोट' पर आधारित राजेन्द्र सिंह बेदी निर्मित फिल्म 'गरम कोट' अमर कुमार द्वारा निर्देशित थी। 'द क्लर्क एंड द कोट' शीर्षक से इसे विदेशों में भी प्रदर्शित किया गया था।

आल्हाद चित्र के बैनर तले सुप्रसिद्ध लेखक जी.डी. माडगुल की कथा पर दत्ता धर्माधिकारी निर्देशित यह फिल्म बारह वर्षीय बालिका शकुन्तला के जीवन–संघर्ष की कथा चित्रित करती है। इन्ही की दूसरी कथा पर भी फिल्म बनी 'गूंज उठी शहनाई' में

विजय भट्ट द्वारा निर्देशित थी।

अमृता प्रीतम का प्रसिद्ध उपन्यास 'पिंजर' पर बनी फिल्म गदर : एक प्रेम कहानी' 2001 इस वर्ष की टिकट खिड़की पर सबसे सफल फिल्म अनिल शर्मा निर्देशित सनी देओल, अमीषा पटेल, अमरीशपुरी, लिलिट दुबे, सुरेश ओबराय, प्रमोद माउथो, राकेश बेदी, मुश्ताक खान और मनोज बाजपेयी अभिनीत 'गदर' भारत–पाक कटुता की बेहद क्रूर युद्धकथा एक प्रेमकथा के आवरण में बयान करती है।

'देवदास' शरत बाबू का वह उपन्यास है जिसे उन्होने अपनी पहली प्रकाशित कहानी से भी पहले किशोरावस्था में लिखा था और जिसे खासी लोकप्रियता अर्जित करने के बाद ही उन्होंने प्रकाशन के लिए दिया। इण्टरनेट पर उपलब्ध जानकारी के मुताबिक शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'देवदास' पर आधारित अब तक एक मूक फिल्म को मिलाकर (निर्देशक–नरेश मित्रा) कुल जमा दस फिल्में बनी है। शेष नौ सवाक् फिल्मों में हिन्दी और बांग्ला के अलावा तमिल, तेलुगू और असमिया में बनी फिल्में शामिल है।

फिल्म 'वीर जारा' कृष्ण चन्दर के उपन्यास 'पेशावर एक्सप्रेस' पर आधारित है, यह यश चोपड़ा द्वारा निर्देशित फिल्म जिसमें मुख्य भूमिका में शाहरूख खान, प्रीति जिन्टा, रानी मुखर्जी और मनोज बाजपेयी प्रमुख कलाकार है। संगीत में मेलोडी के आशिक यश चोपड़ा ने इस फिल्म में एक नया प्रयोग किया।

उपन्यासों, कहानियों, नाटकों के इस फिल्मीं क्रम में अनेक महान रचनाओं ने अपना योगदान दिया। उनके इस योगदान की परम्परा बहुत लम्बी है 1830 का दशक रहा हो या 2020 का समय हिन्दी साहित्यकारों का सहयोग सदैव इस फिल्मी सफर में रहा है जिन फिल्मों का जिक्र किया है मैनें उनके अलावा भी बहुत ऐसी फिल्में है जिनमें प्रमुख रूप से चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' पर इसी नाम से फिल्म बनी, मन्नू भण्डारी की प्रसिद्ध कहानी 'यही सच है' पर आधारित फिल्म 'रजनीगंधा' बनी, इसी क्रम में भीष्म साहनी का प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' जिस पर '1947 अर्थ' फिल्म बनी, मन्टो की कहानी 'टोबा टेक सिंह' पर 'मम्मो' फिल्म बनी तथा यशपाल के प्रसिद्ध उपन्यास 'झूठा सच' पर आधारित 'खामोश पानी' फिल्म बनी। मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' पर 'हिना' फिल्म बनी। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'जिन्दगी नामा' पर 'ट्रेन टू पाकिस्तान' बनी। विजयदान देथा की कहानी 'दुविधा' पर पहेली तथा मन्नू भण्डारी की कहानी 'एखाने आकाश नाई' पर जीना यहाँ फिल्म बनी। ऐसी ही असंख्य रचनाएँ हैं जिन पर फिल्में बनी और वे फिल्में अपने समय की सुपरहिट फिल्में रहीं और देखते–देखते सिनेमा की जिन्दगी में साहित्य की उपस्थिति बहुत बढ़ गयी और इस कला रूप में चित्र, संगीत, नृत्य, रंगकर्म, काव्य इत्यादि का कला संगम है।

इस सन्दर्भ में अपने विचार रखते हुए 'कमलेश्वर' कहते हैं – "सिने दुनिया का सबसे बड़ा सत्य यह है कि यहाँ लिखा हुए कुछ भी अन्तिम नहीं होता उसे बार–बार

लिखा जाता है। पहले लेखक लिखता है, फिर निर्देशक उसे अपने दिमाग से लिखता है, इत्तफाक से यदि निर्देशक की पत्नी कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली हुई या उनकी साली या सलहज भी सिने रुचि की हुई तो दो–चार घटना प्रसंग वे लिख देती है। इसके बाद लेखक में फायनेंसर का दखल शुरू होता है। वह अपनी तरफ से दो–चार दृश्य लिखवाता–डलवाता है फिर उसी दृश्य को शूटिंग के समय कैमरामैन लिखता है। यदि कैमरामैन और हीरोइन के बीच कला कोणों की देखादेखी शुरू हो गयी तो कैमरामैन कुछ दृश्य हीरोइन की दृष्टि लिख देता है। इसके बाद सम्पादक एडीटिंग टेबल पर दृश्यों के समीकरण बैठाता है और अंतिम लेखन सेंसर बोर्ड द्वारा होता है। इतने लेखकों के द्वारा लिखी जाने के बाद फिल्म सामने आती है।" [3]

निष्कर्ष

अब हम फिर एक बार बात आरम्भ से करते हैं जहाँ मैने कहा था कि साहित्यकार व फिल्मकार दोनों ही निश्चय रूप से लगातार अपनी रचनात्मकता में सृजनशीलता में गतिमान होते है, कहने का तात्पर्य यह है कि फिल्म के माध्यम से जनता का व्यापक हित किये जाने एवं उससे प्रभावित होने वाली जनता की रुचियों और संस्कारों के निरन्तर विकास की महती आवश्यकता है। आज फिल्मों पर उसी तरह के गंभीर लेखन की आवश्यकता है जैसे कि साहित्य, खेल, व्यापार या राजनीति पर होती है। इस तरह साहित्य एवं सिनेमा का अटूट सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा।

संदर्भ

1. *हिन्दी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, प्रधान सम्पादक–कमला प्रसाद (वसुधा 81) पृष्ठ संख्या–81*
2. *भारतीय चलचित्र डॉ. महेन्द्र मित्तल पृ.2*
3. *हिन्दी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, प्रधान सम्पादक–कमला प्रसाद (वसुधा 81) पृष्ठ संख्या–157*
4. *हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास : गोविन्द पाण्डेय, सरस्वती पाण्डेय (अभिव्यक्ति प्रकाशन) पृष्ठ संख्या–392*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-126-130

तार सप्तक की परिकल्पना तथा कवि अज्ञेय का काव्य सृजन

*डॉ० करुणा गुप्ता**

हिन्दी काव्य जगत में, संगीत के सात सुरों की भांति, सात कवियों को 'तारसप्तक' संग्रह के माध्यम से प्रतिष्ठित करने का श्रेय कवि अज्ञेय को प्राप्त है। सम्प्रति साहित्य जगत में कवि अज्ञेय की अस्मिता हैं सप्तकीय काव्य संग्रह। तार सप्तक के बाद 'दूसरा सप्तक', 'तीसरा सप्तक' तथा एक लम्बे अन्तराल के बाद 'चौथा सप्तक' का प्रकाशन पाठक को एक सुनियोजित काव्य परम्परा का बोध कराता है। जबकि तीसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ ही नयी काव्य प्रवृतियां साहित्य समाज में पूरी तरह स्वीकृति पा चुकी थीं। चौथा सप्तक के प्रकाशन का कोई औचित्य नहीं था। फिर भी चौथा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय लिखते हैं,''नयी कविता ने एक बार फिर रचयिता और गृहीता समाज का सम्बन्ध स्थापित किया था, संचार की प्रणालियां बनायी थीं, और खोली थीं। संकीर्ण और मताग्रही आलोचना ने फिर उन्हें अवरुद्ध कर दिया है। कवियों की संख्या कम नहीं हुई है—हो सकता है कुछ बढ़ ही गयी हो—लेकिन कवि समुदाय पाठक अथवा श्रोता समाज के न केवल निकटतर नहीं आया है बल्कि उस समाज में उसने फिर एक उदासीनता का भाव पैदा कर दिया है। इस बात के कारणों की कुछ पड़ताल अपेक्षित है।'' [1]

'तार सप्तक की परिकल्पना तथा प्रकाशन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, वरन एक लम्बी सुनिश्चित योजना का परिणाम थी। प्रायः ऐसा मान लिया जाता है कि प्रकाशन की योजना सम्पादक 'अज्ञेय' की थी जबकि तारसप्तक की मूल परिकल्पना प्रभाकर माचवे और नेमिचन्द्र जैन की है। नेमिचन्द्र जी ने इस बात का स्पष्टीकरण अपने लेख तार सप्तक प्रसंग में दिया है। तार सप्तक नाम प्रभाकर माचवे का सुझाया हुआ था। आरम्भ में प्रयागचन्द्र शर्मा और वीरेन्द्र कुमार जैन भी इस सप्तक योजना के स्वर थे। अज्ञेय जी से सम्पर्क बढ़ने पर योजना को कार्य रूप में सम्पन्न करने के लिए उसके सम्पादन का भार उन पर डाल दिया गया। नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण जब कोलकाता में थे तब योजना ने अंतिम रूप लिया। अज्ञेय ने रामविलास शर्मा एवं गिरिजा कुमार माथुर के नाम सुझाये। वस्तुतः तार सप्तक सात युवा कवियों की रचनाओं का संग्रह है। ये सात कवि एक जगह किस प्रकार संग्रहित हुए ; इसका भी अपना इतिहास है। सात कवियों को संकलित कर तार सप्तक का प्रकाशन हुआ। ये सात कवि गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय हैं।

तार सप्तक के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद का जन्म हुआ।

**एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) आर्य कन्या महाविद्यालय, हापुड (उ०प्र०)।*

तार सप्तक एवं प्रयोगवाद एक दूसरे के पर्याय बन गए। वस्तुतः प्रयोगवाद की चर्चा के बिना तार सप्तक की चर्चा अधूरी जान पड़ती है। ''वास्तव में प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है। इसका श्रेय तार सप्तक के सम्पादकीयतथा कुछ अन्य व्यक्ति वक्तव्यों को है। प्रयोग शब्द का निरंतर प्रयोग होने से इस संकलन 'की कविताओं को प्रयोगवाद के अन्तर्गत मान लिया गया । वस्तुतः यह 'प्रयोग' शब्द अंग्रेजी कविता में प्रचलित एक्सपेरिमेंट के ही वजन पर हिन्दी में चला था लेकिन हिन्दी में जो प्रयोगवाद चल पड़ा उसके लिए अंग्रेजी में एक्सपेरिमेंटलिज्म नामक कोई वाद नहीं है।''[2] स्पष्ट उल्लेख न होने और प्रयोगशीलता की बार–बार चर्चा होने के कारण आलोचकों ने मजाक–मजाक में तार सप्तक के कवियों और कविताओं को प्रयोगवादी कहना शुरू कर दिया। कविता प्रयोग का विषय है–को मान लिया गया कि इन कवियों के लिए प्रयोग ही अपने आप में इष्ट या साध्य है– और देखते ही देखते 'प्रयोगवाद' नाम चल निकला। 'आलोचकों की दृष्टि भी तार सप्तक की भूमिका और अज्ञेय के वक्तव्य पर विशेष रूप से लगी रही।[3] आलोचकों के आरोपों–प्रत्यारोपों का निराकरण चूंकि अज्ञेय के ही द्वारा करने का प्रयास हुआ, इसलिए सम्भवतः अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक मान लिया गया। हांलाकि तार सप्तक में संग्रहीत कवियों ने इसका व्यापक विरोध किया, लेकिन नेतृत्व की क्षमता, श्रेष्ठ समीक्षक तथा चिन्तक व्यक्तित्व होने के कारण उन्होंने 'दूसरा सप्तक' (सन्1951)तथा 'तीसरा सप्तक' (सन्1959) एवं 'चौथा सप्तक' (सन्1979) उसी परम्परा में प्रकाशित कर नयी काव्य प्रवृत्ति की अगुआई करने के सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिए और प्रयोगवाद के पुरोधा या प्रवर्तक कहलाने के अधिकारी बन बैठे। अज्ञेय ने दूसरा सप्तक की भूमिका में तार सप्तक के कवियों को प्रयोगवादी कहे जाने का कड़ा विरोध किया और प्रयोग के नाम पर फैली तमाम भ्रांतियों के निराकरण का प्रयत्न किया, फिर भी दूसरा सप्तक की भूमिका ने 'प्रयोगवाद' को काव्यान्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

'प्रयोग क्रिया है तो प्रयोगशीलता कवि कर्म। इसका अभिप्राय है शब्दों में नया अर्थ भरना, युगानुरूप नये बिम्बों, रूपकों, प्रतीकों, छन्दों आदि का विधान करना।[4] प्रयोगवाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नन्द दुलारे बाजपेयी ने तार सप्तक की आलोचना करते हुए किया। उन्होंने तार सप्तक की रचनाओं को प्रयोगवादी रचनाओं की संज्ञा दी। अज्ञेय ने इसका स्पष्टीकरण दूसरा सप्तक की भूमिका में दिया।

हिन्दी काव्य जगत में 'प्रयोगवाद ' अथवा 'प्रयोग' पाश्चात्य जगत की देन है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रयोग शब्द अंग्रेजी कविता में प्रचलित 'एक्सपेरिमेंट' के ही वजन पर हिन्दी में चला था, लेकिन हिन्दी में प्रयोगवाद चल पड़ा यद्यपि अंग्रेजी में 'एक्सपेरिमेंटलिज्म' नामक कोई वाद नहीं है। आरम्भ से ही पश्चिमी जगत नवीन विचारधाराओं का जन्मदाता रहा है। साहित्य में विचारधारा एवं शिल्प की ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः प्रयोगवाद के अन्तर्गत जितने भी प्रयोग हुए वे विचारधारा अथवा शिल्प से सम्बन्धित थे।

अस्तित्ववाद, प्रकृतिवाद, दादावाद, अतियर्थाथवाद, भविष्यवाद, प्रभाववाद,

प्रतीकवाद, बिम्बवाद ये तमाम वाद हिन्दी साहित्य जगत में पश्चिमी प्रभाव के कारण आए। इनकी प्रयोगशीलता हिन्दी काव्य जगत में तार सप्तक (सन् 1943) से दूसरा सप्तक (सन्1951) तक विशेष रूप से देखी जा सकती है।

प्रयोगवाद के प्रवक्ता अज्ञेय तार सप्तक के संकलनकर्ता, सम्पादक तथा संकलित कवि तीनों ही है। अज्ञेय की पहली कविता सन् 1927 में छपी थी। तब से सन् 1987 तक अज्ञेय अनवरत काव्य साधना में लीन रहें। 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामयी', 'आंगन के पार द्वार','कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर मुद्रा','पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ', आदि उनके काव्य संग्रह हैं जो सन्1929 से सन् 1973 के मध्य प्रकाशित हुए।

तार सप्तक के प्रकाशन के पश्चात अज्ञेय अधिक प्रकाश में आए। उन्होंने कथ्य एवं शिल्प दोनों स्तरों पर हिन्दी कविता को प्रभावित किया। जब हम अज्ञेय की कविताओं का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि पाश्चात्य विचारधारा से इनकी कविताएं प्रभावित हैं। आलोचक भोला भाई पटेल अज्ञेय की कविताओं पर पाश्चात्य विचारधारा का गहरा प्रभाव देखते हैं। उनका मानना है कि 'अपने काव्य सर्जन के आरम्भिक काल में कवि अज्ञेय में रोमाण्टिक भाव प्रवणता का आधिक्य था। उनकी रोमांटिकता एक तरह से छायावादी काल के अनुरूप ही थी। लेकिन छायावादी कविता के अतिरिक्त इस रोमैंटिकता का अन्य उत्स है अंग्रेजी कवि टेनिसनएवं ब्राउनिंग की कविता। 'भग्नदूत' एवं 'चिन्ता' के भावजगत पर इन कवियों का प्रभाव–प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत होता है। 'सागरमुद्रा' की कविताओं में कवि डी0एच0लॉरेंस से प्रभावित जान पड़ता है। धीरे–धीरे कवि रोमैंटिकता से परे हटता जाता है और उसकी कविता में बौद्धिकता का एक परिस्फुट आयाम परिलक्षित होने लगता है। तार सप्तक के वक्तव्य में यह कहना कि 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है' फ्रायड से प्रभावित मानसिकता का ही प्रभाव है। 'तार सप्तक' की तथा अन्य कई रचनाओं में कवि की जो संभोग चेतना है वह भारतीय श्रृंगारपरम्परा के अन्तर्गत न आकर फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित है। टी0एस0एलियट और जेम्सज्वायस की मुक्त साहचर्य की रीति का भी अपनी कविताओं में उपयोग किया है। 'इत्यलम्' की कविताओं में बौदलेर एवं एलियट की कविताओं का लगभग अनुवाद रूप ही मिल जाता है। 'अज्ञेय' ने एलियट की काव्य रीतियों का सफलता से प्रयोग कर हिन्दी कविता को सचमुच में 'नई' कविता सिद्ध किया।[5]

'तार सप्तक' तथा 'बावरा अहेरी' की कई रचनाओं में अज्ञेय, जीरार्ड, मेन्ली हॉपकीन्स, वालेस, स्टीवेन्स तथा क्युमिंग्ज आदि पाश्चात्य कवियों से प्रभावित हैं। हॉपकिन्स अपनी कविताओं में स्प्रंग रीद्म (SPRUNG RHYTHM) के लिए जाने जाते हैं। अज्ञेय ने भी इस प्रकार का प्रयोग 'बावरा अहेरी' संग्रह की प्रथम रचना' आज तुम शब्द न दो' में किया है। शब्द शिल्पी क्युमिंग्ज काव्यभावों के उत्कर्ष के लिए शब्दों को

तोड़ते हैं, उपसर्ग को अलग करते हैं विराम चिह्नों का विनियोग करते हैं। इस प्रकार के प्रयोग अज्ञेय ने भी किये हैं–'निबिड़ऽन्धकार/को मूर्तरूप दे देने वाली'...., में 'को' प्रत्यय को अलग दूसरी पंक्ति में बिठाते है।[6] पाश्चात्य काव्यान्दोलनों विशेषकर प्रतीकवाद एवं बिम्बवाद के प्रभाव से भी अज्ञेय की कविताएं अछूती नहीं रही हैं। 'तार सप्तक', 'हरी घास पर क्षण भर' तथा 'बावरा अहेरी' की रचनाएं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पाश्चात्य प्रभावों के अतिरिक्त अज्ञेय की रचनाओं पर जापानी पद्धति की कविता 'हाइकु' का भी प्रभाव है। जापानी हाइकु तो बिम्ब के उत्तम उदाहरण भी हैं।

अज्ञेय की कविता की भावभूमि मुख्य रूप से प्रकृति वर्णन, प्रेम एवं सौन्दर्यचित्रण, समष्टि बोध, रहस्यवाद, आत्मान्वेषण तथा काव्य विषयक चिन्तन पर आधारित है।

अज्ञेय की कविता में पाया जाने वाला प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव और नगर जीवन के प्रति अरुचि, व्यक्तित्व का अतिशय परिमार्जन एवं अभिजातीयत्व उन्हें एक ओर छायावादी दायरे से बाहर निकलने नहीं देता तो दूसरी ओर उनकी कालगति के प्रति संवेदना उन्हें नयी कविता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए बाध्य कर देती है।' (अज्ञेय की कविता–एक मूल्यांकन–चंद्रकान्त बांदिवड़ेकर, पृ0 11) वस्तुतः अज्ञेय के आरंभिक काव्य संग्रह 'भग्नदूत' 'चिन्ता' तथा 'इत्यलम्' छायावादी भावुकता से अनुप्राणित हैं। प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति का मानवीकरण सब कुछ तो है और साथ ही छायावादी कवियों की छाप भी स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। लेकिन इस समय की कविताओं पर सबसे अधिक प्रभाव कवीन्द्र – रवीन्द्र का है। चिन्ता ,इत्यलम्, एवं भग्नदूत की कविताएं मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्वह्रास, अन्तर्मथन, पुनरूत्थान और चरम संतुलन प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं।

मेरे उर ने शिशिर ह्दय से सीखा करना प्यार'–इसी व्यथा से रोता रहता अन्तर बारम्बार। 'यही हमारे प्रेम का छोटा सा किन्तु सर्वतः सम्पूर्ण संसार है।[7]

'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा 'आंगन के पार द्वार' अज्ञेय की काव्य यात्रा के तृतीय चरण हैं। यहां कवि पर बुद्ध (करुणा) की गहरी छाप है, यह छाप भारतीयता से ज्यादा जापानी है। वास्तव में यह रचनाएं अज्ञेय ने जापान प्रवास के दौरान लिखी हैं। इस पर विशेष रूप से ज़ेन (zen) बौद्ध मत का प्रभाव है, जिसे संग्रह की भूमिका में अज्ञेय ने स्वीकार किया है। तत्क्षण का दर्शन और अभिव्यक्ति इन रचनाओं की विशेषता है–'मैंने देखा/एक बूंद सहसा उछली सागर के झााग से/रंगी गयी क्षण भर/ढलते सूरज की आग से। अज्ञेय में बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त औपनिवेशिक विचारधारा तथा आधुनिक आस्तिक अस्तित्ववादी चिंतक यास्पर्स का भी प्रभाव लक्षित होता है। 'रहस्यवाद की शताब्दियों पुरानी परम्परा का बोझ संभाल कर अज्ञेय उसमें गुणात्मक रूप से कुछ नया जोड़ सके।[8] 'आंगन के पार–द्वार' की प्रसिद्ध रचना 'असाध्य वीणा' यद्यपि 'टेमिंग आव–द–हार्प' नामक कविता से प्रभावित है फिर भी भाषिक सर्जनात्मकता की दृष्टि से अद्वितीय है।

'सागर मुद्रा' की कविताओं में प्रेम के प्रति, काल के प्रति, जिन्दगी के प्रति, खुलेपन का भाव है तथा साथ ही कविताओं में सहज शान्ति का भी बोध होता है।

'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' पूर्ववर्ती कविताओं की तरह प्रेमाभिव्यक्ति इस संकलन में भी है। प्रेम के विभिन्न रूप, विरह की तीव्रता, और विफलता सब कुछ एक बार फिर अभिव्यक्त हुए हैं। कुछ रचनाओं में कवि ने आध्यात्मिक उदीषा की बात की है, 'जो एक दीर्घ काव्य यात्रा के अंत में किसी भी कवि की चरम उपलब्धि हो सकती है।[9]

अज्ञेय का रूप निर्विवाद रूप से क्रान्तिकारी है। लोग उन्हें 'फार्मलिष्ट' तक कह देते हैं। किन्तु अज्ञेय अनुशासित अभिव्यक्ति की बात पर जोर देते हैं। इनके काव्य शिल्प में प्रतीक विधान का विशेष महत्व है। 'वह प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते है' अज्ञेय के प्रतीक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक सभी प्रकार के हैं। इनके शिल्पपक्ष के मूल में व्यक्ति चिन्तन की दृष्टि, वैयक्तिक अभिरुचि,व्यक्तिनिष्ठ प्रतीक एवं बिम्बविधान है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'अज्ञेय के काव्य का वस्तुपक्ष एवं शिल्पपक्ष कमल के सौन्दर्य बोध से कैक्टस की सौन्दर्य चेतनाकी ओर विकसित हुआ है।

सन्दर्भ

1. *अज्ञेय चौथा सप्तक, प्रथम संस्करण–1979 सरस्वती विहार, दरियागंज, दिल्ली।पृ. 010*
2. *डॉ0 नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ सातवां संस्करण–1993 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.101*
3. *डॉ0 अरविन्द सप्तक काव्य प्रथम संस्करण–1976 दिन मैक्मिलन कं ऑफ इण्डिया लिमिटेड नई दिल्ली पृ.11*
4. *डॉ0 बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द– 1983 राधाकृष्णन प्रकाशन दिल्ली पृ.64*
5. *भोला भाई पटेल, अज्ञेय एक अध्ययन प्रथम संस्करण– 1983 गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद पृ.142*
6. *चन्द्रकान्त बंदिता वाड़ेकर अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन, 1990 विनोद पुस्तक मंदिर आगरा। पृ. 11*
7. *अज्ञेय चिन्ता, 1970 राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली पृ.33*
8. *अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या,, रामस्वरूप चतुर्वेदी 1968 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कोलकाता पृ. 26*
9. *अज्ञेय एक दर्शन भोला भाई पटेल, 1983 विश्वविद्यालय अहमदाबाद पृ.78*
10. *डॉ0 इन्द्राथ मदान आधुनिक कविता का कूल्याकंन, प्रथम संस्करण–1962 हिन्दी भवन जालन्धर और इलाहाबाद पृ.388*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-131-136

भारतीय संस्कृति – मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य कला एवं संगीत कला

*भारत गौतम**

राजपूत काल के बाद भारत में तुर्कों के आक्रमण के साथ मध्यकालीन भारत का इतिहास शुरू होता है। 7वीं सदी से 11वीं सदी तक मुस्लिम आक्रमणों का सफल प्रतिरोध भारत के राजपूत राजाओं ने किया। लेकिन तराइन के तीसरे युद्ध के पश्चात भारत में मुस्लिम वास्तुकला का पहला नमूना कुतुबुद्दीन ऐबक के समय से शुरू होता है। हालांकि मध्यकालीन भारत के इतिहास के प्रारम्भ में वास्तुकला के वही नमूने देखने को मिलते हैं जो प्राचीन भारत में देखने को मिले थे। उदाहरणतः, कोणार्क का सूर्य मंदिर बारहवीं सदी का है। इसी समय जगन्नाथ मंदिर पुरी का निर्माण हुआ। यह दोनों प्राचीन स्थापत्य शैली में बने हैं।

मुस्लिम आक्रमणों ने भारत के हजारों प्राचीन मंदिरों को बहुत नुकसान पहुंचाया। हालांकि इनमें कई मंदिरों को दोबारा बनवा लिया। इसी प्रकार दक्षिण भारत के मंदिरों को मुस्लिम सेनाओं खासकर अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक की सेनाओं ने काफी नुकसान पहुंचाया। इसके बाद वहाँ पुनः नायकों और विजयनगर साम्राज्य जैसे हिन्दू साम्राज्यों की स्थापना हुई और इन मंदिरों का पुनर्निर्माण हुआ जिससे वे अधिक भव्य होकर उभरे। मदुरई का मीनक्षी मंदिर पूर्ण रूप से ध्वस्त कर दिया गया था किन्तु इसके पुनर्निर्माण के बाद आज यह जिस रूप में बना है वो दुनिया में अप्रतिम है।

12वीं से 13वीं सदी तक भारतीय स्थापत्य कला न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर भी फली– फूली। खमेर साम्राज्य एक हिन्दू और बौध्द साम्राज्य था। इसी काल में कंबोडिया में अंकोरवाट में विष्णु मंदिर बनाया गया जो संपूर्ण विश्व का सबसे बड़ा पूजा स्थल है। बोरोबुदूर, इन्डोनेशिया का बौध्द मन्दिर दुनिया का सबसे बड़ा बौध्द मंदिर है जो 9वीं सदी में बनाया गया।

सल्तनत काल

सल्तनत काल में स्थापत्य कला में मुस्लिम स्थापत्य कला का नमूना देखने को मिलता है। इसमें मस्जिद निर्माण, मीनार निर्माण, गुंबद निर्माण प्रमुख हैं। भारत में गुंबड़ निर्माण इल्तुतमिश ने शुरू कराया।

✶ **कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद–** कुतुबुद्दीन ऐबक ने पृथ्वीराज चौहान के किले की जगह कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद का निर्माण कराया। यह दिल्ली में स्थित है।

✶ **कुतुबमीनार–** इसका निर्माण ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की स्मृति

* *असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, पंडित महादेव शुक्ल कृषक पी०जी०कालेज गौर, बस्ती,(उ०प्र०)*

में कुटुबुस्सीन ऐबक ने शुरू कराया। हालांकि इसको इल्तुतमिश ने पूर्ण कराया ।

✶ **अढ़ाई दिन का झोपड़ा–** यह एक मस्जिद है जो अजमेर में है। इस स्थान पर बीसलदेव द्वारा निर्मित सरस्वती मंदिर था जिसे तुड़वाकर अढ़ाई दिन का झोपड़ा बनाया गया।

✶ **बदायूं की जामा मस्जिद–** इसका निर्माण इल्तुतमिश ने कराया था। यह अपने समय की सबसे बड़ी मस्जिद है।

इनके अतिरिक्त,– नसीरुद्दीन महमूद का मकबरा और इल्तुतमिश का मकबरा इल्तुतमिश द्वारा बनवाये गए। ख्वाजा मुइनूद्दीन चिश्ती की दरगाह का निर्माण भी इल्तुतमिश ने कराया। जमात खाँ मस्जिद, अलाई मस्जिद का निर्माण अलाउद्दीन खिलजी ने चिश्ती की दरगाह के पास कराया। गायसुद्दीन का मकबरा मुस्लिम और हिन्दू स्थापत्य कला के मिश्रण का उदाहरण है। अलाउद्दीन खिलजी ने हौज खास, सीरी फोर्ट, अलाई दरवाजे का निर्माण कराया। फिरोज़शाह तुगलक एक स्थापत्य कला का प्रेमी था। उसने हिसार, फिरोजाबाद, फ़तेहाबाद, फिरोज़शाह कोटला, जौनपुर जैसे कई नगरों की स्थापना की थी। फिरोज़शाह का मकबरा हौज खास के पास दिल्ली में स्थित है। खिड़की मस्जिद और काली मस्जिद का निर्माण जूनाशाह ने कराया। बहलोल लोदी का मकबरा सिकंदर लोदी ने बनवाया और सिकंदर लोदी का मकबरा इब्राहिम लोदी ने बनवाया।

दक्षिण भारतीय मध्यकालीन स्थापत्य कला

दक्षिण भारत में अलाउद्दीन खिलजी और फिर मुहम्मद बिन तुगलक की सेनाओं ने आक्रमण किया। मुहम्मद बिन तुगलक की अयोग्यताओं के कारण दक्षिण भारत स्वतंत्र हो गया और बहमनी और विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हुई।

बहमनी साम्राज्य और दक्षिण भारतीय मुस्लिम सल्तनत

बहमनी साम्राज्य की स्थापना 1345 में हुई। बहमनी साम्राज्य के समय गुलबर्गा के किले का निर्माण हुआ। इसकी मस्जिद स्थापत्य कला का बेजोड़ नमूना है। इसके अलावा, बहमनी साम्राज्य में कई मकबरों का निर्माण हुआ। कालांतर में बहमनी साम्राज्य टूटकर पाँच सल्तनतों में बंट गया– अहमदनगर, बीजापुर, बरार, बीदर, गोलकुंडा। यह सभी अपनी अपनी स्थापत्य कला के लिए जाने जाते हैं।

बरार सल्तनत के शासक फ़थुल्लाह इमाद– उल मुल्क द्वारा गाविलगढ़ किला बनवाया गया। गोलकुंडा में कुतुबशाही सल्तनत के मकबरे स्थित हैं। इसमें सुल्तान कुली कुतुबशाह, इब्रहीम कुली कुतुबशाह, मुहम्मद कुली कुतुबशाह, हयात बख्शी बेगम, फातिमा सुल्ताना, कुलसुम बेगम, निज़ामुद्दीन अहमद के मकबरे प्रमुख हैं। यह सब एक ही स्थान पर स्थित हैं। हैदराबाद स्थित चारमीनार का निर्माण 1591 में मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने कराया। इसमें चार दरवाजे स्थित हैं। गोलकुंडा की स्थापत्य कला के अन्य उदाहरण मक्का मस्जिद, खैरतबाद मस्जिद (खैरून्निसा बेगम द्वारा बनाई गयी),

हयात बक्शी मस्जिद, तारामती बरादरी, टोली मस्जिद इत्यादि हैं।

बीजापुर के आदिलशाही सल्तनत में भी स्थापत्य कला का बहुत विकास हुआ। इसमें मुहम्मद अदिल शाह का मकबरा सर्वाधिक प्रमुख है, इसे बनाने में 30 वर्ष लगे थे। इस मकबरे को गोल गुंबज कहा जाता है। बीदर का किला, बीदर शाही राजाओं के मकबरे,बीदर सल्तनत की स्थापत्य क्ला को दर्शाते हैं।

मध्यकालीन हिन्दू मंदिर

मध्यकालीन भारत में कई हिन्दू मंदिरों का भी निर्माण कराया गया था। इसमें से सबसे प्रमुख मीनाक्षी मंदिर मदुरई में स्थित है। इसे मीनाक्षी सुंदरेश्वर मंदिर कहा गया है। यहाँ एक पुराना मंदिर था जिसे मलिक काफूर ने नष्ट कर दिया था। इसका पुनर्निर्माण 16वीं –17वीं सदी में नायक राजा विश्वनाथ नायक ने कराया। यह शिव के रूप सुंदरेश्वर और पार्वती के रूप मीनाक्षी को समर्पित है।

श्रीरंगनाथस्वामी मंदिर– यह तमिलनाडू के तुरुचिरपल्ली में स्थित है। यह भारत का सबसे बड़ा मंदिर है। यहाँ के पुराने मंदिर को भी अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने नष्ट कर दिया था।

पद्मनाभस्वामी मंदिर–यह तिरुवनंतपुरम में स्थित है।

राजस्थानी स्थापत्य कला

सल्तनत काल और मुगल काल में भी राजस्थान में अनेक भव्य किलों, मंदिरों का निर्माण हुआ। कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण इस प्रकार से हैं।

जैसलमेर किला

राजपूत राजा रावल जैसल ने 1155 ई में बनवाया। यह 1500 फुट लंबा जबकि 750 फुट चौड़ा किला है। आज भी इसमें जैसलमेर के लोग रहते हैं। यह विश्व के गिने चुने लिविंग फोट्र्स में से एक है। इसमें 7 जैन मंदिर, लक्ष्मीनाथ मंदिर प्रमुख हैं।

चित्तौड़गढ़ किला

चित्तौड़गढ़ किले का इतिहास 7वीं सदी से शुरू होता है। इस किले पर कई बार आक्रमण हुए– अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण (1303), बहादुरशाह का आक्रमण (1535), अकबर का चित्तौड़ का घेरा (1567–68)। इस किले में कई मंदिर हैं। इसमें राणा कुंभा द्वारा बनवाया गया विजय स्तम्भ ही है जो उन्होने मालवा के सुल्तान मुहम्मद शाह प्रथम पर विजय के प्रतीक के रूप में बनवाया। कीर्ति स्तम्भ और महारानी पद्मिनी का महल भी यहीं पर है।

कुंभलगढ़ किला

कुंभलगढ़ किला राणा कुंभा द्वारा बनवाया गया। यह राजस्थान के राजसमंद जिले में स्थित है। यह युनेस्को की विश्व धरोहरों में है। यही महाराणा प्रताप का जन्म स्थान है।

आमेर किला

यह जयपुर में स्थित है। इसे राजा मानसिंह ने बनवाया था। इसका निर्माण 1592 में हुआ। यह भी युनेस्को की विश्व धरोहर स्थलों में से एक है।

हवामहल

हवामहल जयपुर मे स्थित है। इसका निर्माण 1799 में पूरा हुआ।

मुगल स्थापत्य कला

मुगल काल में भी स्थापत्य कला का विकास हुआ। शाहजहाँ के काल में स्थापत्य कला चरमोत्कर्ष पर थी।

✶बाबर ने संभल में जामा मस्जिद का निर्माण कराया। इसके अलावा उसने पानीपत में काबुली बाग की मस्जिद का निर्माण कराया। उसके सेनापति मीरबाकी ने 1528 में अयोध्या में राम मंदिर को तोड़कर विवादित बाबरी ढांचे का निर्माण कराया।

✶ हुमायूँ के मकबरे का निर्माण अकबर ने दिल्ली में कराया। इसमें सर्वप्रथम संगमरमर का प्रयोग हुआ था।

✶ अकबर ने आगरा के लालकिले का निर्माण कराया। उसने अपनी नई राजधानी आगरा से 27 कोस दूर फ़तेहपुर सीकरी में स्थानांतरित की। यहाँ उसने बुलंद दरवाजा, पंचमहल, दीवान–ए–आम, दीवान–ए–खास का निर्माण कराया।

✶ अकबर ने फ़तेहपुर सीकरी में जामा मस्जिद, मरियम की कोठी और सलीम चिश्ती के मकबरे का निर्माण कराया।

✶ अकबर के मकबरे का निर्माण जहाँगीर ने आगरा में सिकंदरा में कराया।

✶ एतमातुददौला का मकबरा नूरजहाँ ने आगरा में बनवाया।

✶ जहाँगीर के मकबरे का निर्माण नूरजहाँ ने लाहौर के निकट शाहदरा में कराया।

✶शाहजहाँ का काल स्थापत्य कला का स्वर्णयुग कहा जाता है। उसने दिल्ली में लाल किले का, तथा आगरा में ताजमहल का निर्माण कराया। ताजमहल का वास्तुविद उस्ताद अहमद लाहौरी था। इसके अलावा उसने दिल्ली में मोती मस्जिद एवं भारत की सबसे बड़ी मस्जिद जामा मस्जिद का निर्माण कराया। औरंगजेब ने औरंगाबाद में बीबी का मकबरा बनवाया जिसे ताजमहल की फूहड़ नकल माना जाता है।

मध्यकालीन भारत के इतिहास में संगीत कला–इसके अन्तर्गत अग्रलिखि बिन्दु है–

हिन्दू (भारतीय) इस्लामी संस्कृति

इस्लाम धर्म द्वारा संगीत कला वर्जित था, परंतु भारतीय संगीत ने तुर्की शासकों पर प्रभाव डाला जिसके फलस्वरूप बलबन उसका पुत्र बुगरा खाँ, अलाउद्दीन खिलजी,

मुहम्मद बिन तुगलक जैसे सुल्तानों ने संगीत को संरक्षण प्रदान किया। जब तुर्क भारत आये तो अपने साथ ईरान एवं मध्य एशिया में पल्लवित समृद्ध अरबी संगीत परंपरा भी लाये। उनके पास कई नये वाद्य यंत्र थे जैसे रबाब और सारंगी और उनकी एक विशिष्ट संगीत पद्धति थी।

मध्यकालीन संगीत परंपरा के आदि संस्थापक अमीर खुसरो थे। सर्वप्रथम उन्होंने भारतीय संगीत में कव्वाली गायन को प्रचलित किया। खुसरो को तिलक, साजगिरि, सरपदा, औमन, घोर, सनम आदि रागों को प्रचलित करने के कारण उसे नायक की उपाधि प्रदान की गई थी। अमीर खुसरो को सितार तथा तबले के निर्माण का भी श्रेय प्रदान किया जाता है। तुर्क (मुसलमान) अपने साथ सारंगी आदि जैसे संगीत वाद्य लाये परंतु यहाँ आकर उन्होंने सितार तथा तबला जैसे वाद्यों को अपनाया।

अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण भारत के महान संगीतज्ञ गोपाल को अपने दरबार में बुलाया तथा अमीर खुसरो को संरक्षण प्रदान किया। फिरोज तुगलक के शासन काल में संगीत के एकीकरण की प्रक्रिया अनवरत चलती रही, इसी समय शास्त्रीय रचना रागदर्पण का फारसी में अनुवाद हुआ।

जौनपुर के सभी शर्की सुल्तान संगीत प्रेमी थे। हुसैन शाह शर्की ने राग ख्याल को भारतीय संगीत में सम्मिलित किया। उसके संरक्षण में संगीत शिरोमणि नामक ग्रंथ की रचना हुई। हसन –ए–देहलवी को उसकी उच्च गजलों के कारण उसे भारत का सीदी कहा गया है।

मालवा का शासक बाज बहादुर संगीत में रुचि रखता था। ग्वालियर के राजा मानसिंह ने संगीत को संरक्षण प्रदान किया तथा उन्हीं के संरक्षण में मान कौतूहल नामक संगीत ग्रंथ की रचना हुई तथा ध्रुपद का सृजन हुआ। मान कौतूहल में मुस्लिमों द्वारा प्रचलित नयी संगीत पद्धतियाँ भी सम्मिलित की गई थी। चिन्तामण नामक संगीतज्ञ को बिहारी बुलबुल की उपाधि दी गई। असम में उस समय शंकर नामक संगीतज्ञ का नाम बहुत विख्यात हुआ। जौनपुर के सूफी संत पीर बोधन भी उस काल का एक महान संगीतज्ञ था।

गुनयाक्त–उत–मुनयास का संकलन भारतीय मुस्लिम विद्वान की भारतीय संगीत संबंधी प्रथम रचना है। यह जौनपुर के शर्की शासकों के संरक्षण में लिखी गई।

दक्षिण भारत के विभिन्न शासकों ने भी संगीत कला को संरक्षण प्रदान किया। बहमनी राज्य के शासकों में से फिरोजशाह और महमूद शाह तथा बीजापुर के यूसुफ आदिलशाह ने संगीत कला को विशेष संरक्षण प्रान किया।

सूफी संतों ने भी सामूहिक गान की परंपरा को स्वीकार करके संगीत कला को लोकप्रिय बनाने में बहुत सहयोग दिया। इस काल में धर्म निरपेक्ष तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार का संगीत एक श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर सका था।

गजल और कव्वाली दोनों की गायन शैलियाँ सुल्तानों और सूफियों में समान रूप

से प्रचलित थी। गजल का संग्रह दीवान कहलाता था। मुहम्मद तुगलक भी बङा संगीत प्रेमी था। कहा जाता है कि उसके दरबार में बारह सौ गायक थे जो गाते भी थे और गाने की शिक्षा भी देते थे। लोदी वंश के राज्यकाल में भारतीय संगीत ने पुनः करवट ली। इसी काल में जनता में संगीत के प्रति काफी उत्साह था। इसी काल में अनेक मुस्लिम कलाकार पैदा हुए।

बंगाल के चौतन्य महाप्रभु ने कीर्तन–शैली को जन्म दिया जो उत्तर भारत में भी लोकप्रिय हो गई।

उपसंहार

अतः निष्कर्षत कहा जा सकता है कि मध्यकाल में जिस प्रकार से हिंदू व इस्लाम धर्म के लोगों के मध्य निकटता बढी, उसी प्रकार गंगा– जमुनी तहजीब का समग्र प्रभाव भी भारतीय खानपान , वेशभूषा, साहित्य, लेखनी, लिपि, धर्म इत्यादि के साथ–साथ भारतीय वास्तुकला एवं संगीत कला पर भी अमिट रूप से पड़ा। जिसके साक्षात उदाहरण समूचे भारतीय उपमहाद्वीप (वर्तमान भारत वर्ष एवं पाकिस्तान तथा बांग्लादेश) में सम्मिलित रूप से अपनी एकता एवं एकजुटता की कहानी कहते हुए हमारे समक्ष विद्यमान हैं। साथ ही वह सब यह भी संदेश देते हैं कि आज के 21वीं सदी के युग में हम सभी को मिलजुल कर एक साथ रहते हुए सभी धर्मों का पालन करते हुए भारतीय संविधान की समतावादी व धर्मनिरपेक्षतावादी आचार एवं विचार का सम्मान करते हुए ना केवल अपने राष्ट्र को मजबूत बनाना है अपितु समक्ष विश्व के लिए एक ऐसे उदाहरण के रूप में भी स्वयं को स्थापित करना है जो पूरे विश्व को प्रेरणा दे सकें।

संदर्भ

1. *Swami B- G- L-----Indian art historians---Kavyalaya Publications] Mysore Gokhale Institute of Public Affairs- (50 P)*
2. *Salteore B- A-----Indian archaeologists--Centre for Classical Kannada] Central Institute of Indian languages] Mysore- (8 C] 6 P)*
3. *De Barun ---- Indian historians by century (12 C)*
4. *Chakarbarty Dipesh----Indian archaeologists--- Anand bajar patrika- - (10 C] 6 P)*
5. *Akarabadi Saeed Ahmad---Indian Muslim historians of Islam-- Adam publisher and distributor New Delhi (17 P)*
6. *Adraw Nizamuddin Asir----- iIndian literary historians-- kutub khana husainiya devband- (19 P)*
7. *Kidwai Saleem----Indian Muslim historians of Islam-- Muslim today- -New Delhi (17 P)*
8. *Deobandi Muhammad Miyan----- `Abd al&Qadir Bada'uni-- kutub khana hussainia deoband (12 C] 34 P)*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-137-141

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत : स्वामी विवेकानन्द

*डॉ० अजीत कुमार पाण्डेय**

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भारत की सभ्यता एवं संस्कृति, पश्चिमी सभ्यता से आतंकित हो गयी थी। शिक्षित भारतीय अपनी सभ्यता में विश्वास खोते जा रहे थे विश्व के अन्य राष्ट्रों की तरह भारत में भी राष्ट्रीय भावना का अवतरण सामाजिक धार्मिक जाकृति के साथ ही हुआ। इसमें स्वामी विवेकानन्द का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। वह सदियों से सुषुप्त भारतीय समाज को नवजीवन देना चाहते थे भारतीय संस्कृति की महानता, धर्म के सार्वदेशिक स्वरूप को उन्होंने जितने स्पष्ट तथा तार्किक रूप से देखा, वैसा उसके पूर्व व पश्चात् कोई नहीं कर सका।

जवाहर लाल नेहरू के 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' रोमा रोलॉ के 'द लाइफ ऑफ रामकृष्ण' राधाकृष्ण के अनेक लेखों तथा खुद स्वामी विवेकानन्द के 'ऑन इंडिया एण्ड हर प्रॉब्लम्ब्स', 'प्रेक्टिकल वेदांत', 'ज्ञानयोग', 'राजयोग' के अध्ययन से उनके विचारों की जानकारी मिलती है।

प्रारम्भिक जीवन

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कोलकाता के एक संपन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। उन्होंने पूर्व व पश्चिम के दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया। शुरू में वे नास्तिकता की ओर झुके, किन्तु रामकृष्ण के सानिध्य से प्रभावित होकर सारा जीवन मानव सेवा में अर्पित करने का प्रण किया। उन्होंने भारत की दुरावस्था पर गहन चिन्तन किया तथा संसार के सामने भारत की आवाज बुलन्द करने का निश्चय किया। यह अवसर उन्हें 1893 में मिला। 1893 में शिकागो की धर्म संसद में अपने ओजस्वी भाषणों तथा अभिव्यक्ति के अन्तर्निहित गुणों से लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया। अमरीकी समाचार–पत्रों ने उन्हें 'देवी शक्ति प्रदत्त वक्ता' कहा अगले तीन वर्षों तक वे विदेश भ्रमण करते रहे, फरवरी 1896 में अमरीका में 'वेदांत समाज' की स्थापना की वे पहले भारतीय थे जिसने पाश्चात्य श्रेष्ठता को चुनौती दी तथा हिन्दू धर्म की आध्यात्मिक श्रेष्ठता को प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने भारत की निर्धरता, जातिप्रथा, कर्मकांड, अंधविश्वास के प्रति युद्ध छेड़ दिया उनका विश्वास था कि ''संसार के समक्ष भारत की आवाज बुलन्द की जाय और इससे भी अधिक जरुरी था की भारत की समस्याओं के लिए एक समाधान प्रस्तुत किया जाय''[1] अपने सिद्धान्तों को यथार्थ रूप देने के लिए 01 मई 1897 को 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की।

विवेकानन्द के विचारों पर रामकृष्ण का प्रभाव

विवेकानन्द ने अपने गुरू स्वामी रामकृष्ण परमहंस के विचारों के प्रचार–प्रसार

**असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, यशोदा नन्दन हरिवंश महाविद्यालय चण्डिका, प्रतापगढ़ (उ०प्र०)*

हेतु मिशन की स्थापना की रामकृष्ण के जीवन एवं विचार ही रामकृष्ण मिशन की आत्मा है। स्वयं रामकृष्ण ने धर्म प्रचार नहीं किया किन्तु अपने व्यावहारिक जीवन से भारत के आध्यात्मवाद की आत्मा को झकझोर दिया उनका कहना था कि मनुष्य का मूल लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति होना चाहिए जो आध्यात्मवाद से ही सम्भव है। संसार त्याग तथा इच्छाओं के दमन को उन्होंने नकार दिया। वे ज्ञान से अधिक चरित्र–निर्माण पर बल देते थे संसार को रामकृष्ण की सबसे बड़ी देन आध्यात्मवाद है सरल उपदेशों के द्वारा उन्होंने वेदों तथा उपनिषदों के जटिल ज्ञान को जनसाधारण तक पहुंचाया और हिन्दुओं में प्राचीन ज्ञान के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास उत्पन्न किया। रामकृष्ण की दूसरी महत्वपूर्ण देन सभी धर्मों की मूलभूत एकता में विश्वास था। विभिनन धर्मों में ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न मार्ग हैं किसी मार्ग का सही अनुसरण कर ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। मानव की सेवा तथा भलाई को धर्म बताना रामकृष्ण की संसार को तीसरी महत्वपूर्ण देन है वे प्रत्येक व्यक्ति को भगवान का स्वरूप मानते थे। इस कारण मानव सेवा को वे ईश्वर सेवा मानते थे।

इस प्रकार अपने व्यवहार तथा कर्म से वेद–वेदांत के मूल विचारों को स्पष्ट कर हिन्दू–पुनरूद्वार आन्दोलन को उसकी ऊँचाई पर पहुँचा दिया भौतिकवाद, संघर्ष तथा घृणा के युग में उन्होंने विश्व को प्रेम, एकता तथा साहचर्य का मार्ग दिखाया। रामकृष्ण के उपर्युक्त विचारों को विवेकानन्द ने समस्त संसार में फैलाया।

विवेकानन्द तथा धर्म

विवेकानन्द के चिन्तन तथा व्यवाहार के मूल में वेदांत की शिक्षाएँ थीं। वे उदार हिन्दू धर्म तथा आध्यात्मवाद की सजीव आत्मा थे उनका मानना था की, ''वेदांत ऐसे ईश्वर में विश्वास नही करता जो स्वर्ग में तो मुझे आनन्द देगा, पर इस जगत में मुझे रोटी भी नही दे सकता है''[2] हिन्दू आध्यात्मवाद का सहारा लेकर उसने जिस प्रकार धर्म, समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दिया वह अद्वितीय है उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारत पश्चिम की तुलना में साहित्य, इतिहास, संस्कृति, धर्म के क्षेत्र में अधिक सहिष्णु तथा समृद्ध है उन्होंने अध्यात्म व वेदांत के आदर्शों को फिर से जिन्दा किया तथा उसकी श्रेष्ठता की पुनर्स्थापना की, उसे इस्लाम व ईसाई धर्म के प्रभावों से भी बचाया उनके उपदेशों से हिन्दुओं को अपने धर्म सभ्यता तथा प्रचीन गौरव का ज्ञान हुआ। उसने सब धर्मों की एकता तथा सत्यता पर बल दिया उनके अनुसार एक हिन्दू को ईसाई या बौद्ध बनने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक के लक्ष्य समान है, उनकी दृष्टि में हिन्दू धर्म सर्वोपरि था। स्वामी जी ने हिन्दू धर्म का आह्वान किया।

वे हिन्दू धर्म को दुरुह पाखंडों, अंधविश्वासों तथा कर्मकांडों का केन्द्र नहीं मानते थे। वह भारत की तितर–बितर हुई आध्यात्मिकता को एकत्रित कर राष्ट्रीयता की स्थापना चाहते थे। उन्होंने कहा कि हमारी पवित्र परम्पराओं में जो एक समान आधार है वह है धर्म और इसी के आधार पर हमें भावी भारत का निर्माण करना है। विवेकानन्द ने संसार में धर्म तथा अध्यात्मवाद के महत्व को उजागर किया उनका मानना था कि

धर्म वास्तव में आत्म ज्ञान है। मनुष्य अपनी प्रकृति पर अधिकार कर पूर्णता प्राप्त करता है तथा ईश्वर को उसी रूप में प्राप्त कर सकता है। उसने धर्म को प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक आवश्यकता बताया '' मानव जाति के भाग्य–निर्माण में जितनी शक्तियों ने योगदान दिया है और दे रही है, उन सब में धर्म के रुप में प्रकट होने वाली शक्ति से अधिक कोई महत्वपूर्ण नही है''[3] परन्तु वे भौतिक क्षेत्र में भी मानव की पूर्ण प्रगति चाहते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म व विज्ञान में सामंजस्य बताया उनके अनुसार भारतीय धर्म में शंकराचार्य का अद्वैतवाद विज्ञान का चरम सिद्धांत है। मूर्ति पूजा को उसने नीचे की सीढ़ी बताया जिसके माध्यम से ईश्वर प्राप्ति की ओर बढ़ा जा सकता है। उसने माना कि धर्म को मानव की भौतिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना चाहिए। उन्होंने स्वीकारा कि भारत गरीब है तो सिर्फ भौतिक उपलब्धियों के क्षेत्र में। अतः पूर्व व पश्चिम के बीच आध्यात्मवाद तथा भौतिक प्रगति का आदान–प्रदान होना चाहिए। धर्मों की विभिन्नता को वे स्वाभाविक मानते थे, उनका मानना था कि सभी व्यक्तियों की विचारधारा एक नहीं हो सकती विचारों के अन्तर तथा संघर्ष से ही नवीन विचार जन्म लेते हैं।

अंधविश्वास के विरूद्ध धर्मयुद्ध

स्वामी विवेकानन्द ने एक मिशनरी के रूप में न केवल भारत की सांस्कृतिक महानता व अतीत का गौरव गान किया बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरूद्ध विध्वंसकारी धर्मयुद्ध किया उन्होंने कूपमंडूकता से घृणा की ओर पुरोहित के पाखंडी कर्म की निंदा की, उनके अनुसार पुरोहितवाद ने भारत में सामाजिक अत्याचार को बढ़ावा दिया। कठोर तथा संकुचित जातिवाद की भी उन्होंने भर्त्सना की लेकिन वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया। उन्होंने उच्च जातियों के उत्पीड़न से बचने तथा जातिभेद का अंत करने के लिए निम्न जातियों में शिक्षा के प्रसार पर बल दिया तथा व्यावसायिक सतर्कता व अन्तर्जातीय विवाह का भी समर्थन किया। उन्होंने एक बार कहा भी था–''सभी मनुष्य समान हैं और सभी को आध्यात्मिक अनुभूति तथा परम ज्ञान का अधिकार है''[4]

शिक्षा प्रणाली

विवेकानन्द वर्तमान शिक्षा प्रणाली को उपयुक्त नहीं समझते थे। उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य चरित्र–निर्माण तथा जीवन के विकास को माना। वे शिक्षा में धर्म की अनिवार्यता, संस्कृत पर जोर तथा निःशुल्क शिक्षा पर बल दिया करते थे। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों से वे असंतुष्ट थे। पश्चिमी विचारों की नैतिक विशेषताओं को उसी रूप में नकल करना वे उचित नहीं मानते थे। उन्होंने शिक्षा को वेद–वेदांत से नियंत्रित कर भारतीयता को जीवित रखना चाहा। उनका कहना था कि आध्यात्मवाद से आत्मनिर्माण होगा। आत्मनिर्माण से देश की सामाजिक व आर्थिक प्रगति होगी जिसे वे सम्पूर्ण प्रगति का आधार मानते थे।

नारी मुक्ति व अछूतोद्धार

मानवतावादी कल्याणकारी तथा राष्ट्र के उत्थान के लिए उन्होंने महिलाओं के सही विकास पर जोर दिया वे भारतीय नारी को विश्वव्यापी मातृत्व की सजीव प्रतीक मानते थे। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार देना। उसे शिक्षित बनाना बाल–विवाह पर रोक लगाने पर जोर दिया महिलाओं व अनाथों के संरक्षण के लिए रामकृष्ण मिशन ने महिला सुधार गृह व अनाथालय की स्थापना भी की।

विवेकानन्द अस्पृश्यवाद का अंत चाहते थे। भारत में प्रचलित छूआछूत की प्रथा का उन्होंने विरोध किया तथा साधु व ब्राह्मणों की अंधविश्वासी बातों का मजाक उड़ाया। उन्होंने कहा कि अछूतों की आत्मा में साक्षात् दरिद्रनारायण का निवास है अतः उनकी दरिद्रता दूर कर साक्षात् ईश्वर का दर्शन किया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा ''जब करोड़ों व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूँ जो उन्हीं के खर्च पर शिक्षा प्राप्त करता है पर उनकी परवाह बिल्कुल नहीं करता'' अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस के समान वे भी मानवतावादी थे उन्होंने युवकों के सामने गरीबों व दलितों की सेवा कर रचनात्मक कार्य का आदेश रखा इस दृष्टि से वे महात्मा गांधी के पूर्वगामी थे पर वे निम्नस्तरीय समानता की अपेक्षा उच्च आदर्शों के अनुरूप समानता में विश्वास करते थे।

विवेकानन्द तथा राष्ट्रवाद

विवेकानन्द ने अपने कार्यों से भारतीय राजनीतिक राष्ट्रवाद को गहरा ठोस व व्यापक राजनीतिक आधार प्रदान किया। उनमें राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी थी। उन्होंने एक ऐसे धर्म का उपदेश दिया जिसमें आत्म सहायता एवं पौरुष शक्ति पर बल दिया गया था, ''आज हमारे देश को आवश्यकता है लोहे के स्नायुओं एवं इस्पात की नाड़ियों की'' उन्होंने धर्म को राष्ट्रीय चिन्तन का केन्द्र बिन्दु बनाया। कर्म पर आचरण करके भारत की असंख्य बिखरी जातियों को एकाकार करने की कोशिश की–''नवीन भारत का उदय इन जनसमुदायों से होगा। हल पकड़े हुए किसानों की झोपड़ियों से मछुआरों, मोचियों, भंगियों की झोपड़ियों से भारत का उदय होने दो अपनी प्राचीन वैभवशाली पैतृक सम्पत्ति की तिजोरियों को खोलो और पुनर्जाग्रत भारत की उद्घाटक मधुर ध्वनि सुनो.....''स्वामी विवेकानन्द स्वतंत्रता के महान समर्थक थे, उन्होंने भारतीयों को निर्भीक होकर अपने खिलाफ हो रहे शोषण का प्रतिकार करने की सलाह दी वे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद में भी विश्वास करते थे तथा संसार के सभी लोगों में में बधुत्व की भावना जगाना चाहते थे उन्होंने लिखा–''जीवन सुख और समृद्धि की एक मात्र शर्त–चिन्तन और कार्प में स्वतन्त्रता है जिस क्षेत्र में यह नही है, उस क्षेत्र में मनुष्य जाति और राष्ट्र का पतन होगा''।[5]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने सदियों से चली आ रही भारतीय समाज की निष्क्रियता को झकझोरा। देश में नवजागरण का मंत्र फूँका भारतीय राष्ट्रवाद के सिद्धांत की नींव रखी। दलितों के उत्थान का अथक प्रयास किया। वे सही

अर्थों में आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के जनक थे। उनके द्वारा स्थापित 'रामकृष्ण मिशन' ने अपने व्यापक मानवतावादी गतिविधियों के द्वारा किसी अन्य सामाजिक धार्मिक संस्था की अपेक्षा अधिक मानव समुदाय की पीड़ा को कम किया है। पंडित जवाहर लाल नेहरू उन्हें प्राचीन भारत और आधुनिक भारत के मध्य एक प्रकार के सेतु मानते हैं। उनके अभय संदेश से भारत की पद्दलित, सामाजिक दृष्टि से बहिष्कृत तथा पौरुषहीन जनता को जीवनदान मिला तथा आत्मचेतना की प्राप्ति हुई।

संदर्भ

1. *ताराचन्द्रः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, प्रकशन विभाग, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय भारत सरकार पृ0 366*
2. *डॉ0 गोविन्द प्रसाद शर्मा :आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृ0 113*
3. *स्वामी विवेकानन्दः धर्म तत्व (श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर) पृ0 01*
4. *विश्वनाथ प्रसाद वर्माः आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा पृ0 100*
5. *तारा चन्द्रः वही, पृ0 369*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-142-145

अराजकतावाद और महात्मा गाँधी

*डॉ० अजय कुमार सिंह**

महात्मा गाँधी के विचारों का मूल स्वरुप अध्यात्मवादी है और राजनीति को भी वह उसी अध्यात्मवाद की एक शाखा के रूप में देखते हैं। परिणामतः गाँधी जी ने राज्य, अधिकार, कर्त्तव्य, स्वतंत्रता, विधि, राज्य के कार्य अथवा राज्य एवं व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध जैसी समस्त राजनीतिक अवधारणाओं की व्याख्या सत्य, अहिंसा एवं अध्यात्मवादी दृष्टीकोण से की है। गोपाल कृष्ण गोखले की भांति गाँधी जी भी राजनीति का अध्यात्मीकरण करना चाहते थे किन्तु अहिंसा के प्रति गाँधी जी के अनुराग गोखले से कही अधिक गहरा और व्यापक था। गाँधी जी धर्म को राजनीति में प्रविष्ट करना चाहते थे। उनके अनुसार, इस प्रकार स्पष्ट है कि मेरे लिए धर्म से शून्य राजनीति नहीं हो सकती। राजनीति धर्म के अधीन है। धर्म से शून्य राजनीति एक मृत्यु जाल है, क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।[1]

महात्मा गाँधी का उद्देश्य मानव स्वभाव का आमूल रूपांतरण करना तथा मानव जाति के सामूहिक जीवन में नैतिक कार्यप्रणाली को अधिक पूर्णरूप से समाविष्ट करना था। गाँधी जी राज्य को हिंसा तथा शक्ति का संगठित रूप मानते थे। अहिंसा का पुजारी होने के नाते उन्हें राज्य के बाध्यकारी स्वरुप से घृणा थी। उनका विश्वास था कि रामराज्य (आदर्श राज्य अथवा पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य)में जनता की नैतिक शक्ति, का प्रभुत्व होगा और हिंसा की व्यवस्था के रूप में राज्य का विनाश हो जायेगा। किन्तु वे राज्य की शक्ति, को तत्काल समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। यद्यपि उनका अंतिम उद्धेश्य नैतिक तथा दार्शनिक अराजकतावाद है, तथापि तात्कालिक लक्ष्य राज्य को अधिकाधिक पूर्णत्व की ओर ले जाना है। दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा असहाय जूलू लोगों पर किये गये अत्याचार, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान स्मट्स का विश्वासघात, तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा भारत में किये गए आत्याचार से प्रभावित होकर गाँधी जी किसी विशिष्ट सरकार को नहीं, बल्कि सामान्य तौर पर राज्य की पूरी व्यवस्था को ही शत्रुतापूर्ण भाव से देखने लगे थे। इसीलिए उनका विचार था कि राजनीति में अहिंसा का अधिकाधिक प्रयोग करने में बाध्यकारी राज्य स्वतः समाप्त हो जायेगा।[2]

टॉलस्टाय तथा थोरो की भांति महात्मा गाँधी भी राज्य को शंका की दृष्टि से देखते थे। गाँधी जी का मानना है कि राज्य मूलतः हिंसा का प्रतीक है और अपने आधुनिक रूप में निर्धनों के शोषण का माध्यम है। राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास को अवरुद्ध करने वाली हिंसात्मक संस्था है। उन्हीं के शब्दों में राज्य केन्द्रित तथा व्यवस्थित रूप से हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति एक चेतनशील तथा आत्मवान प्राणी है। किन्तु राज्य एक आत्महीन मशीन है जिसे हिंसा से भिन्न नहीं किया जा सकता

**असिस्टेंट प्रोफेसर, भैतिक विज्ञान विभाग,आर.आर.पी.जी. कालेज अमेठी (उ०प्र०)*

क्योंकि इसकी उत्पति हिंसा से हुई है। राज्य की हिंसात्मक प्रवृति मनुष्य के व्यक्तित्व को कुंठित कर देती है। गाँधी जी के इन विचारों से यह स्पष्ट होता है की वह अरस्तू ,ग्रीन तथा हिंगल जैसे अन्य आदर्शवादियों की तरह राज्य को एक नैसर्गिक संस्था नहीं मानते है। उनके अहिंसावाद की सर्वोत्कृष्ट स्थिति यह होगी जहाँ राज्य का पूर्ण अभाव होगा। जब तक मनुष्य में हिंसा है, तब तक समाज में राज्य का भी स्थान है। हिंसात्मक जीवन से अहिंसात्मक जीवन की ओर विकास के इस संक्रमण काल में व्यवाहरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य का अस्तित्व बना रहेगा।[3]

राज्य विहीन लोकतंत्र गांधीवाद का राजनीतिक आदर्श है और मानवीय विकास की उस सर्वोच्च राज्यविहीन समाज की अराजकतावादी व्यवस्था का चित्रण गाँधी जी ने इन शब्दों में किया है –प्रबुद्ध अराजकता की उस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का शासक है। वह स्वयं पर शासन इस प्रकार करता है कि वह अपने पडोसी के लिए किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होता क्योंकि वहाँ राज्य जैसी संस्था का अस्तित्व ही नहीं होता है। गाँधी जी का राज्यविहीन लोकतंत्र का उद्देश्य जब तक न प्राप्त हो जाय तब तक तो वह सरकार सर्वश्रेष्ठ है जो बिलकुल ही शासन नहीं करती ।[4]

महात्मा गाँधी के अनुसार राज्य की सत्ता में वृद्धि मनुष्य के व्यक्तित्व का संहार करती है । उनके अनुसार, मैं राज्य की शक्ति में किसी भी प्रकार की वृद्धि को भय की दृष्टि से देखता हूँ । यद्यपि यह दिखाई पड़ता है कि राज्य अपनी विधियों द्वारा शोषण को कम करके सामाजिक हित का कार्य कर रहा है लेकिन वास्तव में वह व्यक्तित्व का विनाश कर मानवता की हानि कर रहा है ,क्योंकि व्यक्तित्व ही प्रगति का मूल है। इसीलिए मान्यता है कि राज्य को अपने पास न्यूनतम कार्य रखकर ऐच्छिक समुदायों के हाथों में समाज के प्रशासन कार्यो को विक्रेन्द्रिकृत कर देना चाहिए। राजनीतिक सत्ता को वे जनसमुदाय की सेवा का साधन मानते है। गाँधी जी का कथन है कि मेरे लिए राजनीतिक सत्ता साध्य नहीं बल्कि व्यक्तियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी दशा सुधारने के साधनों में से एक है। इसीलिए गाँधी जी राज्य से यह अपेक्षा करते है कि जब तक राज्य का अस्तित्व है यह न्यूनतम बल प्रयोग के साथ सार्वजानिक हित तथा सर्वोदय के लक्ष्य के लिए कार्य करेगा। गाँधी जी के अनुसार राजनीतिक शक्ति साध्य नहीं, अपितु व्यक्तियों के जीवन को सुखमय बनाने का साधन है। राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के माध्यम से राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने की क्षमता का नाम है। यदि राष्ट्रीय जीवन इतना परिपक्व हो जाय कि उसे नियमित करने की आवयश्कता न हो, तो प्रतिनिधित्व की भी आवयश्कता नहीं रहेगी। यह स्थिति प्रबुद्ध अराजकता की है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का शासक है। ऐसी आदर्श व्यवस्था में कोई राजनीतिक शक्ति नहीं होती है, क्योंकि वहाँ राज्य का अस्तित्व ही नहीं है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह व्यक्तिवाद को सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल कर अपनी वर्तमान स्थिति में पंहुचा है। अमर्यादित व्यक्तिवाद जंगल के पशुओं का नियम है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सामाजिक नियंत्रण में सामजस्य स्थापित करना है। समाज के हित में स्वेच्छा से सामाजिक बन्धनों को स्वीकार करना व्यक्ति तथा उसके

समाज के लिए श्रेयकर है।[5]

गाँधी जी ने आदर्श समाज की कल्पना को सकार करने के लिए एक आदर्श राज्य का स्वरूप चित्रित किया है। यद्यपि आदर्श राज्य की प्राप्ति कठिन है क्योंकि आदर्श राज्य के लिए आदर्श व्यक्तियों की आवश्यकता होगी, फिर भी आदर्श की कल्पना मानव के उर्ध्वगामी विकास का लक्ष्य अवश्य निर्धारित करेगी। गाँधी जी ने आदर्श राज्यव्यवस्था को रामराज्य शब्द से संबोधित किया है। उनके अनुसार, धार्मिक दृष्टि से रामराज्य का अर्थ है पृथ्वी पर भगवान का राज्य, राजनीतिक दृष्टि से यह पूर्ण प्रजातंत्र है जिसमे गरीबी और अमीरी ,रंग और मत मतान्तर के आधार पर स्थापित असमानताओं का सर्वथा अंत हो जाता है। रामराज्य में भूमि और राज्य जनता का होता है। न्याय शीघ्र, पूर्ण और सस्ता होता है और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने तरीके से पूजा–प्रार्थना, स्वतंत्र विचाराभिव्यक्ति और लेखन की स्वतंत्रता होती है। नैतिक प्रबंध के स्वेच्छया आरोपित कानून के राज्य के कारण ही यह सब होता है। ...मैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्मराज्य को सत्य और अहिंसा के शासन को स्थापित हुआ देखना चाहता हूँ। मेरी जीवन योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। राज्यों का लक्ष्य निरपेक्ष स्वतंत्रता नहीं है। यह तो ऐच्छिक परस्पराश्रितता है। मे तो एक ऐसे भारत के निर्माण के लिए कार्यरत रहूँगा, जिसमें जनता का कोई उच्च और निम्न वर्ग नहीं होगा। सभी जातियाँ पारस्परिक एकता और सदभावना के स्नेहसूत्र में बंधी हुई मिलजुलकर रहेंगी, ऐसे सुंदर भारत में अस्पृश्यता, मद्यपान और नशीली वस्तुओ के सेवन के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। महिलाओं को भी वही अधिकार प्राप्त होंगे ,जो पुरुषों को। मेरे स्वप्नों के भारत का यही रूप है। गाँधी जी की रामराज्य की कल्पना में सर्वलौकिक शांति तथा मानववादी नीतिशास्त्र की मान्यताए निहित है। यह सामान्य इच्छा पर आधारित तथा नैतिक नियमों से निर्देशित सभ्य समाज की एक धारणा है। इसमें किसी प्रकार की धर्मान्धता नहीं है और न किसी–धर्म विशेष का शासन।

गाँधी जी ने दार्शनिक अराजकतावादी के समान नैतिक, ऐतिहासिक तथा आर्थिक आधारों पर राज्य की आलोचना की है। उनके अनुसार राज्य–सत्ता का बाध्यकारी स्वरुप व्यक्ति के कार्यों के नैतिक मूल्यों को खण्डित करता है। राज्य हिंसामूलक है चाहे वह कितना भी लोकतान्त्रिक क्यों न हो। हिंसा शोषणकारी है, अतः प्रत्येक राज्य निर्धन व्यक्ति की आत्मा का शोषण करता है। वास्तव में गाँधी जी राज्य की बढती शक्ति से चिंतित है। वे व्यक्ति संपत्ति की दृष्टि से भी राज्य के भयावह नियंत्रण से मुक्ति चाहते है। इसीलिए गाँधी जी राज्य विहीन समाज के आदर्श को स्थापित करना चाहते है। आदर्श समाज एक ऐसा राज्य–विहीन लोकतंत्र होगा जिसमें समाजिक जीवन स्वयं नियंत्रित होकर प्रबुद्ध अराजकता का परिचायक बन जाएगा। आदर्श व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति नहीं है, क्योंकि उसमें राज्य नहीं है। गाँधी जी के आदर्श लोकतंत्र में व्यक्ति अध्यात्मिक सत्ता का निरंतर ध्यान रखते हुए सादगी एवं त्याग का जीवन व्यतीत करेगा और समाज सेवा में रत रहेगा। यह समाज पूर्णतः विक्रेन्द्रित होगा जिसमें जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्ण समानता होगी।

उर्पयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि गाँधी जी की राज्य सम्बन्धी धारणा एक स्वयंसिद्ध धारणा है। गाँधी जी ने राज्य के दार्शनिक आधारों की व्याख्या नहीं की है, केवल उसके स्वरूप का चित्रण किया है। अराजकतावादियों के इस निष्कर्ष को वे स्वीकार कर लेते है कि राज्य हिंसा का पुंज है जबकि अराजकतावादी इस धारणा का दार्शनिक विवेचना कर यह सिद्ध करते है कि राज्य हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। वे केवल अराजकतावादियों के निष्कर्ष को अपनी प्रथम मान्यता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। अराजकतावादी हिंसा के माध्यम से व्यक्ति की गरिमा तथा उसके वैयक्तिक अधिकारों की रक्षा करना चाहते है। वे राज्य को हिंसा का प्रतीक मानकर भी हिंसा से राज्य को नष्ट करना चाहते हैं। जबकि गाँधी जी हिंसा को व्यक्ति तथा राज्य दोनों के लिए निषिद्ध मानते है। उनके उद्देश्य क्रमिक गति से तथा अहिंसा के माध्यम का प्रयोग कर राजनीतिक संस्थाओ को समाजसेवी संस्थाओं में परिवर्तित करने का है। वे राज्य को सर्वथा समाप्त करने के स्थान पर उसके आवश्यकतानुसार प्रयोग पर बल देते हैं। राज्य को लोककल्याणकारी कार्यो में भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए, कितु ऐसा वे कर्त्तव्य की भावना से ही करेंगे। इस प्रकार गाँधी जी ने न तो राज्य का प्रतिकार किया है और न ही राजनीति का। वे सामाजिक जन –जागृति से राज्य को नियंत्रित करना चाहते है। वे राजनीतिक शक्ति को साध्य न मानकर उसे समाजिक कल्याण में प्रयुक्त करना चाहते हैं। अराजकतावादियों ने राज्य को नष्ट कर उसके स्थान पर अन्य राजनीतिक संस्था का विचार प्रतिपादित किया है जो सच्चे अर्थों में उनके रामराज्य की संकल्पना को साकार कर सके। यद्यपि गाँधी जी ने अराजकतावादियों के समान राज्य की बढ़ती हुई शक्ति में मानवीय स्वतंत्रता के हनन का दर्शन तो किया है किन्तु उनमें तथा अराजकतावादियों में मौलिक अंतर भी हैं। गाँधी जी का व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज में पूर्णतः जुड़ा हुआ है जबकि अराजकतावादियों का व्यक्ति एकाकी व्यक्ति है जो समाज से पारस्परिक आदान प्रदान की अपेक्षा करता है। यही कारण है कि अराजकतावादियों के समान राज्य के तिरोहित होने की संभावना व्यक्त करने के बावजूद गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित वैकल्पिक आदर्श समाज के चित्रण को दृष्टिगत रखते हुए उन्हें अराजकतावादी नहीं कहा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. *हरिजन,18 मई 1940*
2. *यंग इण्डिया, 2 जुलाई,1931*
3. *कलेक्टेड वर्क्स आफ गाँधी,खंड –50,पृ0 204*
4. *यंग इण्डिया, 12 जुलाई,1931*
5. *सर्वोदय, पृ0 52*
6. *डा0 बी0 आर0 पुरोहित,आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन,राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ0 192*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-145-150

पंचायती राज व्यवस्था में कमजोर वर्गों की चुनौतियॉ

*कृष्णपाल सिंह**
*डॉ० नवीन कुमार***

प्रारम्भ में भी कमजोर वर्गो की स्थिति अत्यंत निम्न थी,किन्तु वे अपनी स्थानीय विशेषताओं भौगोलिक संसाधनों एवं परम्पराओं के साथ सुखी थे। विकास के क्रमे ने उत्तरोत्तर वृद्धि की। मानव समाज स्वयं को विकासशील महसूस करने लगा, कमजोर वर्गों की शांति व्यवस्था का क्रम टूटा, ये विभिन्न नामों से जानी जाने वाली जनजातियों वनवासी, आदिवासी, आदि जाति आदि विकास से पहले भयभीत हुई फिर धीरे धीरे उसे अपनाया अजादी के बाद देश के विकास की नयी चुनौतियॉ उभर कर सामने आयी। लोकतंत्र के सुखद सपनो को साकार करने में राष्ट्र के रहनुमा लग गये नीति और योजनाओ ने देश में विकास के कई मानको को गढा कमजोर वर्ग धीरे धीरे दुनिया में7कताकत की तरह उभरने लगा लोग तंत्र व्यवस्था मेंसमाज के हर वर्गो को अपनी तरह से जीने का अधिकार है। सभी को मौलिक अधिकार प्राप्त है। समाज के कमजोर वर्ग धीरे–धीरे दुनिया में एक ताकत की तरह उभरने लगा लोकतंत्र व्यवस्था में समाज के हर वर्गों को अपनी तरह से जीने का अधिकार है। सभी को मौलिक अधिकार प्राप्त है। समाज के कमजोर वर्गों एवं महिलाओं हेतु स्थान आरक्षित किया गया है। भेदभाव की छुआछूत असमानता का लोकतंत्र व्यवस्था में जगह नही है, इन सबके बावजूद आज भी भारतीय समाज में एक शिक्षित, जागरूक नागरिक की अत्यंत आवश्यकता होती है। यदि कमजोर वर्ग अशिक्षित है। मतदान व्यवहार का आधार एवं विवेक और अवैधानिक होती है। परिणाम स्वरूप ये किसी एक विशेष दल या गुट की राजनीति का शिकार हो जाता है। नागरिक का पूर्वालाभ अपने अधिकारी का पूरा उपयोगन ही कर पाते वे शोषण और कष्ट के शिकार हो जाते है। जिससे जीवन आत्मनिर्भर और सुखी नहीं हो पाता है।

सही व विश्वासनीय तथ्यों की कमी

आकडे एवं तथ्यों के बिना, न कोई योजना बन सकती है और न ही कोई वास्तविक कल्पना की जा सकती है क्योकि प्रशासन के पास आकड़ो का निराभाव है आकड़े सभी विषयों पर मिल जाते परन्तु वे सही व विश्वासनीय नहीं प्राप्त होते है। उदाहरणार्थ विधवा पेन्शन योजना, आवास योजना, शौचालय योजना, आदि योजनाएँ जब तक प्रशासन को सही व विश्वसनीय तथ्यों के आकड़े नही प्राप्त होगे, तब तक ग्रामीण विकास के विकासत्मक कार्यों की योजना एवं उनके क्रियान्वयन व वास्तविक परिणामों की कल्पना व्यर्थ होगा।

**शोधार्थी –राजनीति विज्ञान, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म0प्र0)*
***सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म0प्र0)*

विकासात्मक व कल्याणाकारी योजनाओं में मची है लूट

पंचायती राज एवं जिला नियोजन परिषदों में अधिकांश राशि योजनाकारो की जेब में चली जाती है एवं कोष बची हुई राशि प्रशासकीय अधिकारियो एवं राजनैतिक पदाधिकारियो की जेबों मे चली जाती है,जो लगभग 15प्रतिशत ही होती है। इस बची राशि के आधार पर विकास की योजना एवं कार्यक्रम बनाये जाते है। और राशि आंधे कार्यक्रम में समाप्त हो जाती है।

अफसर शाही का बढ़ता प्रभाव

अफसर के प्रभावमें वृद्धि के कारवा विकासात्मक कार्यों को पूरा करने में अनावश्यक विलंब होता है, कभी–कभी विकासात्मक योजनाओं की फाइलें महीनों तक प्रलंबित पड़ी रह जाती है, जिसमें आम आदमी विकास के फलों सेब वंचित रह जाता है। उदाहरवाार्थ–भवन निर्माण, रोड निर्मावा हेतु प्रस्तुत पत्र आदि जिला परिषद् या महानगर पालिका में भेजा जाता है, तो व महीनों तक प्रलंबित पड़ी रह जाती है। इतना ही नही प्रलंबित कार्य हेतु बार–बार चक्कर लगाने पड़ते है। जिसके कारवा घूँसखोरी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

जन सहभाग की कमी

पंचायती राज प्रणाली द्वारा कार्यान्वित होने वाली योजनाओं का पूर्वारूपेण क्रियान्वयन व अनुपालन के लिए जन सहयोग की आवश्यकता होती है। चाहे वे ग्राम पंचायत की योजना हो,या जिला परिषद् की। राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा प्रस्तावित योजना को पंचायती राजव्यवस्था सें संबंधित अधिकारियों के माध्यम से पूर्वा तो किया जाता है। लेकिन इन योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पंचवर्शीय योजनाएं जन सहयोग के बिना सफल नही हो सकता।

योजना के क्रियान्वयन में ढीलापन

किसी भी क्षेत्र के विकास हेतु विकासात्मक योजनाओं के निर्माणो से कार्य खत्म नही हो जाता। किसी योजना का वास्तविक अर्थ व महत्व उसके सफल क्रियान्वयन से होता है। केन्द्र राज्य एवं स्थानीय सरकार द्वारा विकासात्मक योजना7 तो ढेर सारी लंबीचौड़ी बनाई जाती है। कार्य अर्थात् उन योजनाओं का क्रियान्वयन कार्य आरंभ ही नही होता जिससे ग्रामीवा क्षेत्रों में आवश्यक कार्यक्रमों व योजनाओं के क्रियान्वयन के ढीलेपन के कारवा उस क्षेत्र का विकास केवल कल्पनात्मक रह जाता है।

योजनाओं के क्रियान्वयन में स्पाइल पद्धति

व्यक्तिवाद किसी भी स्थानीय योजना का निर्माण एवं उसका क्रियान्वयन व्यक्तिगत हितो स्वार्थों को मद्दे नजर रखते हुए किया जाता है, स्थानीय विकास अर्थात् जिला नियोजन के लिए योजना का निर्माण एवं क्रियान्वयन में व्यक्तिगत स्वार्थ के साथ–साथ अधिकारियों का पूर्वाग्रह,संसाधनों का दुरूपयोग, भाई–भतीजा वाद इत्यादि गंभीर

समस्याएँ है,जिससे जिले का नियोजन समुचित ढंग से नही हो पाता और नही उसका क्रियान्वयन।

जन संवाद का अभाव

जन संवाद के कारवा कमजोर वर्गो के विकास की योजनाओं कोषासन, कमजोर वर्ग की जनता तक पहुॅचाने में असफल रही है,जिससे कमजोर वर्ग की जनता को योजनाएँ का सही ढंग से पता ही नही लगता और ये योजना बनकर क्रियान्वित कर दी जाती है तथा ग्रामीवा गरीब अशिक्षित व असहाय जनता के आने के इन्तजार मे अपना सारा समय व्यर्थ में बर्बाद कर देते है,एवं योजनाओं के लाभ से वह वंचित रह जाते है।

प्रशासनिक मशीनरी में जनतंत्री करवा का अभाव

जिला योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन करने वाली प्रशासनिक मशीनरी मे जनतंत्री करवा का अभाव है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रशासनिक मशीनरी अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रही है।

दल गत राजनीति के दुष्परिणामः–इस समस्या के विषय में विभागीय आयुक्त का व्यक्तिगत मत है। कि जिला नियोजन हो या पंचायती राजव्यवस्था हो उसके सफलता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा दलगत राजनीति है। जो धीरे–धीरे राजनीति का अखाड़ा बनती जा रही है। जिला नियोजन परिषद हो या स्थानीय कोई भी निकाय जैसे पंचायते इनमें छोटी बातों को लेकर झगड़े हुआ करते है। दलबन्दी होती है,और बहुत सा समय झगड़ो में चला जाता है।

चुनौतियों का समाधान

1. अधिकारियों एवं आम जनता को योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में सहयोग देना चाहिए ताकि ग्रामीण विकास हेतु प्रशासन को सहयोग मिल सके।
2. विकासात्मक कार्यों को करवाने हेतु प्रशासकों एवं विशेषज्ञों को स्वतंत्रता होने से वे अपने अनुभवों एवं कार्य कुशलता के आधार पर कार्य कर सकेगें।
3. संबंधित समस्या के वास्तविक आकडे व तथ्यों,प्रशासन को प्राप्त कराने में संबंधित व्यक्ति को सहयोग प्रदान करना चाहिए।
4. अधिकारियों एवं कर्मचारियों का`प्रस्तावित फाइलो की यथोचित कार्यवाही के साथ एवं निश्चित अवधि के अन्दर पूर्व करना चाहिएं।
5. राजनीतिक दल हाई कमानोंकानियंत्रवा समय–समय पर होना चाहिए ताकि उनका मनोबल, लगन एवं ईमानदारी से कार्य करते रहे, इस से भ्रष्टाचार को बढ़ावा नही मिलेगा।
6. यह बात किसी से छुपी नही है। कि ज्यादा नियन्त्रवाही भ्रष्टाचार का दूसरा नामहै।
7. विकास कार्यों का नियोजन क्रियान्वयन एवं उसका मूल्यांकन समय–समय पर किया जाना चाहिए, जिससे पिछड़े हुये क्षेत्रों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा।

8 व्यक्तिगत हितों को ध्यान में रखकर योजनाएं नही बनानी चाहिए बल्कि जनहित को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन करना चाहिए।

9. आय के पर्याप्त स्वतंत्र स्त्रोत पंचायती राज संस्थाओं को दिये जाने चाहिए ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके।

10. जिला स्तर के योजनाकार क्षेत्र में जाकर ग्रामीण वास्तविकताओं को जानने के लिए अपने समय का उचित अंश गांव में गुजारे। यह न केवल आयोजन को कम गूढ़ व अधिक अर्थवान बनाएगा बल्कि अधिक अच्छे क्रियान्वयन की संभावना होगी।

कमजोर वर्गों के भविष्य को सही राज दिखाने एवं देश मे समावेशी विकास को बढ़ावा देने हेतु यह आवश्यक है, कि प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था चुस्त–दुरूस्त किया जा सके। अतः राजनीतिक दल हाई कमानो का नियंत्रण समय–समय पर होना चाहिए ताकि उनका मनोबल, लगन एवं ईमानदारी से कार्य करते रहे।

पंचायती राजव्यवस्था में कमजोर वर्ग की चुनौतियों

कमजोर वर्गों के विकास हेतु केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय सरकार द्वारा समय–समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एव ंक्रियान्वयन तो किया जाता है। लेकिन पंचायती राज की कार्य प्रणाली के क्रियानवयन में चुनौतियों के कारण इन योजनाओं का लाभ उन कमजोर वर्गो ंतक नही पहुॅच पाता है। जो वास्तव में जरूरत मंद है, इस चुनौतियों के पीछे प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणो ंसे संबंधित तंत्रो के कारण दिन–व–दिन बढ़ती जा रही है।

विकास की समस्या इस प्रकार

अधिकारियों व पदाधिकारियों के बीच संबंधों की चुनौतीः–जहां नीति निर्माण होता है तथा समन्वयन किया जाताहै,क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों मे ंअवरोध उत्पन्न करने का कार्य करता है, जिससे विकास कार्य शिथिल पड़ जाते है। विकास की योजनाओं के निर्माण का कार्य एवं क्रियान्वयन में कठिनाइयॉ आती है। एवं विकास यथोचित नही हो पाता है। वास्तव मे यह प्रत्यक्ष अवलोकन से स्पष्ट हुआ कि संबंधो के भावना का विकास होता है,जिससे आपसी सहयोग व समन्वयन का अभाव बढ़ता जाता है।

योग्य प्रशासको एव ंविशेषज्ञों की चुनौती

हम सभी जानते है कि योग्य प्रशासकों एवं विशेषज्ञो ंके अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है। पंचवर्षीय योजनाओ ंके समय में विशेषज्ञो ंव प्रशासक प्रशासन में आये लेकिन जो स्थान उन्हे मिलना चाहिऍ वह स्थान उन्हे नही मिल पाया । अतः वे अपने आप को निराश व हतास अनुभव करते है, एवं साथ–साथ उनका कार्य करने का मनोबल निरन्तर गिरता जाता है,तथा वे कार्यरत् स्थान छोड़कर दूसरे स्थानों में कार्य शुरू कर देते है। यदि ईमानदारी लगन परिश्रम के साथ विकासात्मक कार्य करने का प्रयास भी करता है, उसमे राजनीति एवं हाईकमान के दबावों से, दबाव में आकर वह विकासात्मक कार्य चाह कर भसी नही कर सकता प्रशासको एवं ंविशेषज्ञों का अभाव

बढ़ता ही जाता है।

निष्कर्षत

यह कहां आवश्यक हो गया है कि शासन एवं जनता को अपनी जिम्मेदारियों एवं जबाव दारियो ंके सक्रियता निभाने का प्रयास करें। कमजोर वर्गों की विकास की नीति का विश्लेषण एक महत्वपूर्ण तकनीक है। जिसके द्वारा लोगों की समस्याओं को दूर किया जा सकता है। और भारत को विकसित राष्ट्रो की श्रेणी में शमिल किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. *श्रीवास्तव,टी.एन.:''लोकल सेल्स्फ गर्वनमेन्ट एवं दि कांस्टीज्यूशन इकोनामिक्स ए डपॉलिटिकल वीकली।*
2. *कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय,नई दिल्ली,वर्ष 44 अंक 12अक्टूबर 1999।*
3. *राव, एस.के. ग्राम सभा, जॉर्नल ऑफ रूरल डेव्हलपमेन्ट, अंक 20(4) 2001 एन.आई. आर.डी.।*
4. *डी.डी.पंत : भारत में ग्रामीण विकास–कॉलेज सबुक डिपो जयपुर 2000।*
5. *अवस्थी महेश्वरी : भारत में पंचायती राजलक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा 2002।*
6. *झा. शिखा : ''स्ट्रेगथेनिंग लोकल गवर्नमेन्टस'' इकॉनामिक एवं ड पॉलिटिकल वीकली मुम्बई 29जून 2002।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-151-153

आत्मनिर्भरता एवं गांधीवादी दृष्टिकोण

*देवेन्द्र कुमार पाठक**

महात्मा गांधी आधुनिक इतिहास में आत्मनिर्भरता के विचार के शुरूआती प्रस्तावकों में से एक थे, जिन्होनें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए विकास का सुस्पष्ट और वैकाल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया। उनके शुरूआती विचारों की झलक हिंद स्वराज (1909) में परिलक्षित हुई, जहाँ उन्होंने स्थानीय क्षेत्र के प्रति झुकाव और जमीनी स्तर पर प्रतिभागिता, स्थानीय समुदाय की भूमिका और समुदाय के भीतर उत्पादन, सृजन और सभी की जरूरतें पूरी करने की उसकी क्षमता और चिरस्थायी जीवन–यापन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। बाद में उन्होंने यह एजेंडा अपने रचनात्मक कार्यक्रम 1941 में प्रस्तुत किया, जहाँ उन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर और प्रत्येक की स्वतन्त्रता के साथ पूर्ण स्वराज का निर्माण करने के बारे में अपने विचार प्रकट किए।

आत्मनिर्भरता एक परिकल्पना है, जो आर्थिक संदर्भ में आत्मनिर्भर गतिविधियों की ओर इंगित करती है और व्यक्ति की उसके स्वयं के संसाधनों पर निर्भरता और अपने उद्देश्य प्राप्त करने के माध्यम की ओर संकेत करती है। सिंधू घाटी की सभ्यता के समय से ही भारत में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था रहा है, जो चाहे कृषि हो या गैर कृषि पद्धतियाँ, उत्पादन की परम्परागत पद्धतियों पर हीं आधारित था।

महात्मा गांधी के अर्थव्यवस्था और राजनीति से सम्बन्धित विचार उनके जीवन दर्शन में प्रबलता से परिलक्षित होते है। हिन्दी स्वराज उनकी शुरूआती पुस्तक है जो जीवन के बुनियादी पहलुओं में ग्रामीण समुदायों की आत्मनिर्भरता के बारे में उनकी परिकल्पना का वर्णन करती है। उनके अनुसार ''कोई व्यक्ति, कोई गाँव, कोई देश केवल आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतंत्र हो सकता है।'' उनकी अवधारणाओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहली आत्मनियंत्रण और नैतिक विकास से सम्बन्धित है, जो मस्तिष्क, शरीर और आत्मा के विकास के माध्यम से संभव है और सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह या गैर–अधिकार की भावना के आचरण में परिलाक्षित होती है। कोई व्यक्ति इनका आचरण करके आत्मबल प्राप्त कर सकता है, जो उनके अनुसार सभी प्रयासों की सफलता की पूर्व शर्त है। यह व्यक्तियों को अपनी इच्छाओं, भावनात्मक अतिरेक और अधिकतम लाभ पाने की प्रवृत्तियों को सीमित करने की दिशा में समर्थ बनाती है, जिससे एक परिस्थितिकीय वातारण सम्बन्धी संतुलन का सृजन होता है, जहाँ दोहन की गति, प्रतिपूर्ति की गति से अधिक नहीं होती है और जहाँ सदैव अतिरिक्त प्राकृतिक भंडार रहता है। उनके अनुसार ''यदि राष्ट्रीय जीवन आत्म–नियंत्रित जीवन जितना उत्कृष्ट बन जाए'' जो किसी वर्णन की आवश्यकता नहीं रहती।''

* *असिस्टेंट प्रोफेसर –समाजशास्त्र जवाहर लाल नेहरू स्मा0 पी0जी0 कालेज, महराजगंज, (उ० प्र०)।*

दूसरी श्रेणी स्थानीय शासन और आर्थिक विकास के पहलुओं सहित आत्मनिर्भरता से सम्बन्धित है वह सहभागितापूर्ण शासन और वरीयताक्रम में ऊपरी एजेंसियों के साथ उसके उत्त्रोत्तर सम्बन्धों में यकीन रखते थे, ताकि दूरस्थ शासकीय निकाय के दूरदराज के नेटवर्क्स के स्थान पर एक निकटतम नेटवर्क की स्थापना की जा सके। उनके अनुसार आर्थिक विकास का आशय ज्यादा से ज्यादा हासिल करना नहीं, बाल्कि ज्यादा होना था। आर्थिक विकास उनका विचार गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने पर केन्द्रित था। उनका मानना था कि कोई देश केवल आत्मनिर्भर होकर ही स्वतंत्र हो सकता है और इसकी शुरूआत गाँव के स्तर से स्थानीय स्तर पर उत्पादन और साथ ही खपत करने से होती है। उन्होंने गाँवों की आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से गाँवों में नई जान डालने की जरूरत पर बल दिया। इस विचार पर बल देते हुए उन्होंने लिखा ''भारतीय गाँव, भारतीय कस्बों और शहरों की जरूरत सभी चीजों का उत्पादन और आपूर्ति करते थें। भारत उस समय दरिद्र हो गया, जब हमारे शहर विदेशी बाजार बन गए तथा विदेशों से आई सस्ती और घटिया वस्तुओं को भरकर गाँवों को खोखला करने लगे।'' उनके विचार उनकी स्वदेशी की अवधारणा में भी परिलक्षित होतें है। गाँवों में नई जान डालने की योजना वस्त्र और अनाज के उत्पादन में आत्मनिर्भरता की बात करती है। अकेले कृषि ही जनता का मुख्य आधार बन सकती है, इसका अनुमान लगाते हुए उन्होंने अजीविकाओं के लिए शिल्पों के माध्यम से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रस्ताव पेश किया।

बुनाई और कताई पर व्यापक बल देते हुये उन्होंने ग्रामीणों के परम्परागत व्यवसाय रहे अन्य सभी प्रकार के शिल्पों पर जोर दिया और इस प्रकार उन्होंने शिल्पकार अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। उनके अनुसार, गाँव के क्रियाकलापों में आमदनी और साथ ही साथ रोजगार का सृजन करने की क्षमता होती है। इस संदर्भ में उन्होंने आधुनिक मशीनी सभ्यता के प्रति अपनी अरूचि भी व्यक्त की और उनका विश्वास था कि खपत केवल उन्हीं वस्तुओं तक सीमित होनी चाहिए, जिनका निर्माण मशीनों के बगैर किया जा सकता है। उनके अनुसार विकास का दारोमदार मशीनों पर नहीं होना चाहिए, क्योंकि श्रम बचाने के लिए मशीने रखने का विचार परोपकार की भावना नहीं, बल्कि लालच की भावना द्वारा निदेर्शित होता है, जिसका उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना और उसके बूते पर धन इकठ्ठा करना होता है। वह वस्तुओं के बड़े पैमाने पर उत्पादन के भी खिलाफ थे, क्योंकि यह अंततः ग्रामीण बाजारों में खपा दी जाती है, जिनके कारण गाँव की उत्पादन प्रणाली की हानि होती है। उन्होंने औद्योगिकीकरण के साथ जुड़े परिस्थितिकीय पतन का भी जिक्र किया है। वह उद्योगों के खिलाफ नहीं थे बल्कि औद्योगिकरण के खिलाप थे।

गाँधी जी का चिंतन भविष्यवादी था और उनके विचारों में आत्मनिर्भर गांवो के बारे में कुछ विचारणीय और अत्यंत व्यवहारिक प्रस्ताव समाहित थें जैसे।

1. गाँव ऐसी मशीनों का उपयोग करते हुए उत्पादन की छोटी इकाइयां बन जाएंगे,

जहां श्रमिकों का स्थान नहीं लिया जाएगा, बल्कि श्रम में सुगमता प्रदान की जाएगी।

2. ऐसे आर्थिक क्रियाकलापों का सृजन जो भूमि पर निर्भर न हो, लेकिन फिर भी आजीविका उपलब्ध कराएंगे।
3. कृषि में मौसम के मुताबिक होने वाली बेरोजगारी के कारण गाँवों से होने वाले पलायन पर रोक लगेगी।
4. संसाधनों के संदर्भ में स्थानीय विशिष्ट वस्तुओं और परम्परागत ज्ञान का उपयोग होगा।
5. गाँवों और शहरों के बीच में विकास सम्बन्धी भेद और विषमताओं में कमी आयेगी।

समकालीन दुनिया में राष्ट्रों के परस्पर सम्बन्धों और अंतर्सवधों में अन्योन्याश्रिताओं को जन्म दिया है, जिससे वर्तमान आर्थिक व्यवस्था का सृजन हुआ है, भारत भी समान स्थिति में है और दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। और इसके विकास की भावी संभावनाएं काफी हद तक अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने वाली और साथ ही साथ इसकी जनता के कल्याण तथा अत्यंत न्यायसंगत तरीके से उनके अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने वाली इसकी वर्तमान नीतियों पर निर्भर करती है।

सन्दर्भ

1. *कुमार के0 (2005) लिस्निंग टू गांधी, स्कूल, सोसाइटी एंड नेशन पापुलर एसेज इन एजुकेशन, 33–50*
2. *गांधी ऐज अ ह्यूमन इकोलोजिस्ट, जर्नल आफ ह्यूमन इकोलाजी 151–158*
3. *डी0 ग्रेब्यू0 पी0 2010 माइक्रो इकोनामिक्स, इकोनोमिक स्टडीज 465–497*
4. *अमीन, ए0 (1999) ऐन इस्टीटूशनलिस्ट पर्सपेक्टिव आन रीजनल इकोनोमिक डेवलेपमेंट, इंटरनेशनल जर्नल आफ अर्वन एंड रिजनल रिसर्च। 365–378*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-154-158

अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल में भारत–चीन सम्बंधों की प्रगाढ़ता

अखण्डानन्द मिश्रा*
डॉ० नवीन कुमार **

अटल बिहारी वाजपेयी ही मात्र एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने कांग्रेस के पं. जवाहरलाल नेहरू एवं इन्दिरा गांधी के पश्चात् तीन बार प्रधानमंत्री बने। प्रथम बार 16 मई, 1996 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली मात्र 13 दिन ही प्रधानमंत्री पद पर रहे, दूसरी बार 19 मार्च, 1998 को प्रधानमंत्री पद की शथ ली तथा तीसरी बार उन्होंने 13 अक्टूबर, 1999 को प्रधानमंत्री का पदभार ग्रहण किया। अटल प्रारम्भ से ही विदेशनीति पर सक्रिय वक्ता के रूप में उभरकर सामने आये, जिसका असर उनके प्रधानमंत्री कार्यकाल पर स्पष्ट रूप से दिखाई दिया, उनकी लगन एवं सत्यनिष्ठा के कारण प्रथम बार अटल की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसा हुई साथ ही भारत को एक परमाणु सम्पन्न जिम्मेदार देश के रूप में स्वीकार किया गया। अटल बिहारी वाजपेयी का प्रधानमंत्री का कार्यकाल लगभग 6 वर्ष का रहा, जिसमें वह तीन बार प्रधानमंत्री बन चुके थे और इन वर्षों में उन्होंने सभी देशों के साथ शांतिपूर्ण मित्रता की नीति का अनुसरण किया और शीतयुद्ध के समय आई झुकाव की राजनीति को सही करने का प्रयास किया।

अटल बिहारी उन देशों के साथ भी अपने सम्बंध वार्ता द्वारा, भ्रमण द्वारा एवं बातचीत के माध्यम से सफल बनाने का प्रयास किया, जिनके साथ पूर्व में विवाद था, सभी देशों के साथ शांतिपूर्वक मित्रता बनाने वाली नीति का अनुसरण कर वह विश्व पटल पर छाये रहे। परमाणु परीक्षण के समय अमेरिका और चीन के साथ जो कड़वाहट पनपी थी, उसको समाप्त कर प्रगाढ़ मित्रता वाले सम्बंध बनाने का सफल प्रयास किया गया, फिर चाहे अमरीकि महाद्वीप के देश हो या फिर अफ्रीकी सभी के साथ मिलकर भेदभाव रहित राजनीतिक सम्बंधों को मजबूत करने का प्रयास अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा बखूबी किया गया।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी अपने पड़ोसियों के साथ–साथ अन्य दूसरे महाद्वीप देशों के साथ भी निरन्तर भारत के सम्बंध प्रगाढ़ करने का प्रयास करते रहे, अपने पड़ोसियों से सम्बंधों के बारे में अटल बिहारी वाजपेयी ने 22 मार्च, 1998 को अपने राष्ट्र के नाम संदेश में कहा था–''हम सबके साथ मित्रता के सम्बंध बनाने का इरादा रखते हैं। चूंकि हम तुलना में बड़े देश है, हम अपने पड़ोसियों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के बारे में अधिक संवेदनशील होंगे।'' उनके इस प्रयास को भारतीय राजनीति में सफल भी माना गया। वैश्विक परिदृश्य में किसी भी महाद्वीप के देश का यूरोप जैसे विकसित देश

**शोध छात्र राजनीति विज्ञान अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा(म०प्र०)*
***एसोसिएट प्राध्यापक राजनीति विज्ञान विभाग शासकीय स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय, सतना (म०प्र०)*

से लोकतंत्र समर्थक महाद्वीप के साथ सम्बंध की प्रगढ़ता आवश्यक माना जाता है, जिसको प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने बखूबी करके दिखाया हैं।

भारत के दक्षिण एशिया देशों खासतौर पर बांग्लादेश एवं पाकिस्तान के साथ मामला युद्ध स्तर तक पहुंच चुका था, जिसको अटल बिहारी ने वातचीत के माध्यम से निपटाने का प्रयास किया तथा मनमानी करने पर युद्ध स्तर पर भी प्रयास किया। अटल बिहारी अपनी विदेश नीति के द्वारा जो प्रतिष्ठा विश्व पटल पर अर्जित कर पाये उसी के कारण दुनिया का सबसे ताकतवर देश भारत को अपना मित्र स्वीकार करने में गर्व महसूस करने लगे थे। इसी प्रकार अटल बिहारी वाजपेयी भारत को विश्व में स्थान दिलाने में कामयाब हुये।

भारत की विदेश नीति में चीन के साथ हमारे सम्बंधों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। 15 अगस्त 1947 को जब भारत आजाद हुआ उस समय चीन में भीषण गृह युद्ध का दौर चल रहा था, जिसमें साम्यवादी विजय प्राप्त के मुहाने में खड़े थे दूसरी ओर भारत विभाजन से उत्पन्न हुई अनेकों समस्याओं से जूझ रहा था। अतः शुरुआती दौर में भारत चीन के सम्बंध औपचारिक हो थे, परन्तु कुछ समय पश्चात् दोनों देशों में घनिष्ठ और मित्रवत सम्बंध विकसित होने लगे, लेकिन समय–समय पर दोनों देशों के सम्बंधों में उतार–चढ़ाव आए हैं।

भारत और चीन के मध्य नियंत्रण रेखा और कुछ क्षेत्रों को लेकर अनेको विवाद थे, जिनको अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति ने चीन के साथ सम्बंध स्थापित करने का मौका मिला तथा भारत द्वारा किये गये पोखरण–2 परमाणु परीक्षण, 11 एवं 13 मई, 1998 के कारण चीन के साथ पुनः तनाव पैदा हो गया और उसकी मानसिकता में भी बदलाव आया। भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने से असंतुष्ट चीन के बारे में अटल बिहारी वाजपेयी ने 29 मई, 1998 को लोकसभा में परमाणु परीक्षण को लेकर हुई बहस का उत्तर देते हुए कहा था कि ''चीन हमारा पड़ोसी है। दोनों देश एशिया के बड़े देश हैं। दोनों परस्पर मित्रता हो और पंचशील के सिद्धांतों के अनुसार वे व्यवहार करें, इस बात की आवश्यकता है। भारत और चीन मिलकर काम करें, सहयोग से आगे बऐ, यह दोनों देशों के हित में नहीं है, एशिया के हित में है सारी दुनिया के हित में है।

लेकिन भारत ने परमाणु परीक्षण करके शस्त्र धारक देश बनने के अपने निर्णय के पक्ष में जो सुरक्षा के कारणों का हवाला दिया वह थे–चीन की परमाणु शक्ति, पाकिस्तान द्वारा चोरी से विकसित कर रहे परमाणु शस्त्र क्षमता तथा चीन–उत्तर कोरिया–पाकिस्तार का परमाणु तथा मिसाइल विकास सहयोग बताया। तत्कालीन रक्षा मंत्री जार्ज फर्नांडीस ने चीन को सबसे बड़े शत्रु की संज्ञा दी, जिसके कारण चीन सरकार ने आक्रोस व्यक्त किया। इसके बाद भारतीय परमाणु परीक्षण को विश्व शांति स्तर पर खासतौर से दक्षिण एशिया में शांति का प्रतीक नहीं माना गया और यह कहा गया कि नई भारतीय परमाणु नीति पाकिस्तान को परमाणु शस्त्र बनाने हेतु विवश करे रही है साथ ही दक्षिण एशिया में परमाणु शस्त्रों की दौड़ को पैदा कर रही है। चीन ने अमेरिका

तथा कुछ अन्य देशों के साथ मिलकर भारत पर परमाणु शस्त्र नीति को समाप्त किये जाने के लिए एन.पी.टी. एवं सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करे के लिए भारी दबाव की नीति अपनाई तथा 6 जून 1998 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् द्वारा यह प्रस्ताव पास करवाया गया कि परीक्षण बन्द किये जाये, चीन ने भारत पर दबाव बनाने की कोशिश की उसे अपने परमाणु शस्त्र नष्ट करने चाहिये, लेकिन 1999 के प्रारम्भ से ही चीन के दृष्टिकोण में सुधार आया।

भारत–पाकिस्तान कारगिल युद्ध के समय पाकिस्तान को यह अपेक्षा थी कि कारगिल युद्ध में चीन अवश्य साथ देगा पर ऐसा हुआ नहीं अन्य अनेकों देशों की भांति चीन ने सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए पाकिस्तान का पक्ष न लेकर नियंत्रण रेखा के सम्मान की बात की। साथ ही चीन ने पाकिस्तान से स्पष्ट रूप से कहा कि कारगिल खाली ही करना पड़ेगा। जून, 1999 में भातर के विदेश मंत्री जसवंत सिंह ने चीन यात्रा की तथा दोनों देश आपसी सहमति से सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सहयोग को उच्च स्तर पर विकसित करने को प्रतिबद्ध हुए तथा इस वार्ता के समय ही दोनों देशों के विदेशमंत्री ने एक सुरक्षा वार्तालाप आरम्भ करने की सहमति बनाई साथ ही चीन ने भारत को यह विश्वास दिलाया कि वह भारत के बातों से सहमत था कि कारगिल में सभी घुसपैठिये हैं और उन्हें कारगिल से वापस जाना ही होगा तथा सीमा रेखा का सम्मान करना ही चीन का यह अश्वासन ही भारत की कूटनीतिक जीत रही। तथा भारत को इस यात्रा से पोखरन–द्वितीय के पश्चात् चीन द्वारा भारत विरोधी अभियान को कमजोर करने में मदद मिली।

भारत और चीन दोनों ही मैत्री सम्बंधों को सुदृड़ और मजबूत बनाने के लिए इच्छुक थे, जिसके लिए चीन की यात्रा के समय भारत के विदेश मंत्री जसवंत सिंह द्वारा उचित वातावरण तैयार कर लिया गया था जो यह क्रम आगे चलता गया, अक्टूबर 1998 के चीन स्थापना और साम्यवादी क्रांति की स्वर्ण जयंती के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति के.आर.नारायणन ने अपने संदेश में कहा था कि ''भारत और और चीन का यह उत्तरदायित्व है कि वे पारस्परिक सहयोग करे ताकि नई शताब्दी में दोनों देशों की जनता की समृद्धि को सुनिश्चित किया जा सके तथा शांति स्थायित्व एवं न्याय के लिये योगदान किया जा सके।

सितम्बर, 1999 में संयुक्त राष्ट्र महासभा अधिवेशन के समय भारत–चीन के विदेशमंत्रियों द्वारा उच्च स्तरीय एवं सकारात्मक वार्तालाप हुआ साथ ही दोनों देशों ने पूर्वी क्षेत्र के क्षेत्रीय सैनिक कमाण्डरों के मध्य हॉल–लाइन संचार व्यवस्था की स्थापना की, जिससे प्रतिदिन की सूचनाओं का आदान–प्रदान हो सके। चीन यह जानता था कि भारत का अमेरिका के बहुत अधिक नजदीक जाना उसकी भूमिका में प्रभाव डाल सकता था। चीन ने यह भी समझा कि कश्मीरर के मुद्दे को अंतर्राष्ट्रीयकरण से उसकी भूमिकाा पर भी प्रभाव पड़ेगा, जिसके कारण उसे एक निश्चित निर्णय लेना पड़ेगा। चीन भारत की बढ़ती लोकप्रियता तथा उच्च विकास दर की ओर बढ़ते आर्थिक ढांचे के कारण

समकक्ष की भूमिका के रूप में उसे स्वीकार करने लगा। भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी पाकिस्तान के प्रति चीन के समर्थन तथा सैनिक सहायक को सीमित बनाने और चीन के साथ सीमा विवाद का समाधान किये जाने के पक्ष में थे। यू.एन.ओ. की सुरक्षा परिषद् की स्थायी सीट के लिए भी भारत–चीन का समर्थन प्राप्त करना चाहता है।

जनवरी 2000 में तिब्बत के धार्मिक नेता 14वर्षीय सत्रहवें कर्मया लामा अपनी 24 वर्षीय बहन एवं पांच अन्य सदस्यों के साथ छिपते छिपाते नेपाल के रास्ते होकर भारत पहुंचे, जिसको लेकर चीन ने 11 जनवरी 2000 को भारत को चेतावनी देते हुए कहा कि भारत पंचशील सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए तिब्बत के धार्मिक नेता कर्माया लामा को राजनीतिक शरण न दे। अगर भारत कर्माया लामा को राजनीतिक शरण देता है तो यह पंचशील सिद्धांतों का उल्लघन होगा।

दोनों देशों के बढ़ते आपसी मजबूत सम्बंधों को लेकर अब सैन्य क्षेत्र में विश्वास के साथ 15 सितम्बर से 18 सितम्बर 2000 को संघई में भारत और चीन की नौ सेनाओं के साथ संयुक्त युद्धाभ्यास का महत्वपूर्ण कदम उठाया गया।

जनवरी 2002 में चीन के प्रधानमंत्री झू रोंगजी ने अपने 140 सदस्यीय शिष्ट मण्डल के साथ भारत की यात्रा की। 15 जनवरी को शिखर वार्ता के पश्चात् दोनों देशों के मध्य आपसी सहयोग के छः सहमति पत्रों पर हस्ताक्षर हुए, जिसमें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पर्यटन, वाह्य अंतरिक्ष, ब्रम्हपुत्र नदी से सम्बन्धित सहमतियां शामिल थी। साथ ही आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष में चीन पूरी तरह से भारत का साथ देने की बात कही।

मार्च 2002 में भारत के विदेशी मंत्री जसवंत सिंह ने चीन की यात्रा की और दोनों देशों में उच्च स्तरीय वार्तालाप एवं सूचनाओं का आदान–प्रदान हुआ, जिसके कारण मार्च 2002 में भारत–चीन के बीच हवाई यात्रा का शुभारम्भ हुआ तथा अप्रैल 2002 में पुनः भारत–चीन ने आतंकवाद की समाप्ति के लिए वार्तालप किया और दोनों देशों ने अपने अनुभवों को साझा किया। नवम्बर 2002 में भारत–चीन साझे कार्यसमूह की बैठक भारत में हुई जिसमें सीमाा विवाद के सम्बंध में एक अच्छी समझ बनाने का प्रयास किया गया तथा जनवरी, 2003 में 12 सदस्यीय शिष्टमण्डल ने चीन की यात्रा की तथा विस्तार के प्रति वचनबद्धता को भी दोहराया और पंचशील आपसी सद्भाव एवं समानता के आधार पर द्विपक्षीयय सम्बंधों के संचालन की प्रक्रिया पूर्ण की। अप्रैल, 2003 में पहली बार रक्षा मंत्री ने चीन की यात्रा की तथा इस यात्रा ने भारत–चीन के बढ़ते आपसी विश्वास को प्रकट किया तथा जार्ज फर्नाडींस ने कहा कि भारत–चीन न तो शत्रु थे और न ही प्रतियोगी अपितु वह ताो मित्र थे। दोनों देशों ने अपने द्विपक्षीय व्यापारिक, कारोबारी, सांस्कृतिक सम्बंधों के क्षेत्र तथा सैनिक अधिकारियों की आपसी अंतक्रियाओं को बढ़ाने के उद्देश्य को स्वीकार किया साथ ही दोनों देशों ने शांति और स्थिरता पर चर्चा की।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की जून 2003 (22 से 27 जून, 2003) की चीन यात्रा पर रहे इस दौरान चीन के दृष्टिकोण में सिक्किम को लेकर कुछ परिवर्तन आया

इससे पहले चीन ही एक मात्र ऐसा देश था जो सिक्किम को भारत का अंग नहीं मानता था। भारत और चीन के प्रधानमंत्री प्रथम बार एक साझे और ऐतिहासिक व्यापार सम्बंधी सहमति पत्र और 9 समझौतो केघोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर किये, जिसमें द्विपक्षीय सम्बंधों, निदेशक सिद्धांतों एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया, जिसमें भारत ने तिब्बत को चीन का स्वायत्त क्षेत्र स्वीकार किया वहीं दूसरी ओर चीन ने भी सिक्किम के भारत में विलय को स्वीकार करना भारत और चीन अपना 'सीमावर्ती व्यापार' भारत की और सिक्किम के बाजार में तथा चीन की ओर से तिब्बत के बाजार में करेंगे।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के कूटनीतिक सम्बंधों का परिणाम ही था कि चीन को अंततः 2004 में जाकर चीन ने यह कहना बंद कर दिया कि सिक्किम एक 'स्वतंत्र राष्ट्र' था, जिसे भारत में अपने अधिकार में कर रखा था।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये यह कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने चीन के साथ सम्बंधों की प्रगाढ़ता पर जोरे देने के लिए राजनीति,क आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से निकटता लाने का भरपूर प्रयास किया तथा दोनों देशों के मध्य वार्तालाप को प्रारम्भ करवाया। 1998 में भारत के परमाणु परीक्षणों से क्रोधित चीन और अमेरिका के साथ यह मांग की कि भारत अपने परमाणु अस्त्रों को नष्ट करे, परन्तु दो वर्षों के अंदर ही हालातों में पुनः बदलाव आया और एक बार पुनः आपसी सम्बंधों में मधुरता आयी। सिक्किम को भारत का अंग स्वीकार करवाना, व्यापार में ज्यादा से ज्यादा आपसी वार्तालाप का चलना इत्यादि बातें भारत–चीन को नजदीक लायी, जो प्रधानमंत्री वाजपेयी की देन थी।

संदर्भ

1. *डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, नयी चुनौती नया अवसर, किताब घर, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं.277–278*
2. *डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, विचार बिन्दु, किताब घर, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं.159, 173*
3. *वी.एन.खन्न, भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, 2008, पृ.सं. 179–181*
4. *आर.एस.यादव, भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण, किताब घर इलाहाबाद, पृ. सं. 279–280*
5. *डॉ.बी.एल. फड़िया, राजनीति विज्ञान (प्रतियोगिता साहित्य), साहित्य भवन आगरा, पृ.सं.686.*
6. *बी.पी.दत्त, बदलती दुनिया में भारतीय विदेश नीति, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली,*
7. *अटल बिहारी वाजपेयी, गठबंधन की राजनीति, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली,*
8. *डॉ. बी.एल. फडिया, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2006, पृ.सं.326,*
9. *टाइम्स ऑफ इण्डिया, 16 दिसम्बर, 2000*
10. *क्रांनिकल, समसामयियक लेख, जनवरी 2002*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-159-161

हिन्दी की समकालीन दशा एवं दिशा

डॉ० वन्दना त्रिपाठी *

मातृ भाषा किसी भी देश में विचारों और अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम होती है। किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान का आधार उसकी भाषा में सन्निहित होता है। वस्तुतः भाषा ही समाज का वह प्राणतत्व होता है जिससे किसी भी समाज की संस्कृति काल के निर्बाध प्रवाह में भी सतत जीवंत और गतिशील होती है। यही कारण है कि किसी भी देश में अपनी मातृभाषा के प्रति गहरा लगाव व अपनापन देखने को मिलता है।

परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में हिन्दी की स्थिति विश्व की अन्य सभी भाषाओं से अलग है। दुनिया के दूसरे सबसे बड़ी जनसंख्या वाले देश भारत में हिन्दी मुख्य भाषा है। मुख्य भाषा होने के कारण इसे बोलने वालों की संख्या काफी बड़ी है। यह दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी भाषा है जिसे 60 करोड़ से ज्यादा लोक बोलते है। भारत में इसे संस्कृत से निकली अन्य भाषाऐं और ऊर्दू बोलने वाले अन्य करोड़ लोग भी समझते हैं। इन सबको मिलाकर दुनिया भर में हिन्दी बोलने–समझने वालों की संख्या 100 करोड़ से भी ज्यादा कही जा सकती है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि राजभाषा हिंदी का विस्तार बढ़ा है और स्वीकार्यता भी बढ़ी है। नई शिक्षा नीति में भी इस पर जोर दिया गया है कि पठन–पाठन मातृभाषा में किया जाय, विशेषकर तकनीकि शिक्षा के संदर्भ में – इनके बावजूद 72 साल पूरे होने के बाद भी हिन्दी राजभाषा के ओहदे को राष्ट्रभाषा में परिवर्तन क्यों नहीं कर पायी है, इस पर विचार करने की जरूरत है।

हिन्दी को हम हिन्दी भाषी लोगों ने ही निराश किया है। भाषा कोई भी हो उसे कितना आदर और विस्तार मिलेगा, यह उसे व्यवहार में लाने वालों का बर्ताव ही तय करता है। तमाम सम्पन्न देश अपनी मातृभाषा को प्राथमिकता देते हैं, लेकिन हम आज भी अंग्रेजी की बैशाखी थामे हुऐ हैं। देश का एक बड़ा वर्ग सोचता समझता तो हिन्दी में है, लेकिन हिन्दी में अभिव्यक्ति पर अपने को असहज महसूस करता है। डॉ0 श्याम सुन्दर पाठक 'अनन्त' के अनुसार हिन्दी अपने ही देश में होती उपेक्षित,वह देश जिसमें लिखी जाती है हिन्दी फिल्मों की कहानी, अंग्रेजी में, संविधान का मूल पाठ मान्य हो, अंग्रेजी में, और मोबाइल की स्क्रीन पर उगलियाँ चलती हो, हिंग्लिश में, तो स्वयं ही लग सकता है अनुमान कि क्या दशा है हिन्दी की, राष्ट्रभाषा होने के लिये जूझती हिन्दी,अपने सम्मान के लिए संघर्ष करती हिन्दी[1] किसी भी भाषा के उत्थान–पहन के लिए समाज ही उत्तरदायी होता है यदि भाषाओं के प्रचार प्रसार का इतिहास देखें, तो यह पता चलता है कि जो उस समय के शासक वर्ग की भाषा थी, उसे ही जनता ने सीखा। इसका सीधा अर्थ यह है कि भाषा का समाज और शासन दोनों से ही सीधा सम्बन्ध

* *सहायक अध्यापक पूर्व माध्यमिक विद्यालय, रायबरेली (उ०प्र०)*

होता है। हिन्दी नौकरशाही व राजनीति के मध्य पिस रही है। राजनेताओ के सत्ता प्राप्त होने से पहले चुनावी भाषण में हिन्दी के प्रति जो स्नेह व लगाव दिखायी देता है, वह सत्ता रूढ़ हो जाने के बाद दिखायी नहीं देता है।

हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा और हिन्दी मास मनाकर ही केवल कर्तव्य की इति श्री हो जाती है। अब स्थिति यह हो गई है, कि मातृभाषा होने के बावजूद हम प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस मनाते है, ताकि हिन्दी को जीवंत रखा जा सके। यह हमारे देश की विडम्बना नहीं तो और क्या है? कि देश के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य विषय में अध्ययन करने के लिए वैषयिक ज्ञान के साथ–साथ अंग्रेजी की अपरिहार्यता है। देश की सर्वोच्च प्रशासनिक परीक्षा में भी हिन्दी को उचित स्थान नहीं मिलता हिन्दी में चिकित्सा और विज्ञान की पढ़ाई तो दूर की बात है, जिन विषयों को अच्छी तरह से हिन्दी में पढ़ाया जा सकता है उसका अध्ययन भी हिन्दी माध्यम से नहीं हो रहा है।उ0प्र0 के कानपुर की सीमा वर्णिका ने इस पर प्रकार कहा है –

हिन्दी भाषा की आज दशा और दिशा
ज्यों दिवस संग मिश्रित हो जाए निशा।
विविध देशज विदेशज भाषा का मेल,
भाषा की ऐसी विकृति नहीं देती तिशा।
देववाणी संस्कृत से हुआ था प्रादुर्भाव,
अथाह शब्द सागर करे व्यक्त मनोभाव।
सर्वग्राही प्रतिमाह है बौद्धिक वर्ग का,
शुद्ध हिन्दी, अब अपरिहार्य आविर्भाव।[2]

हिन्दी में रोजगार के अवसर अंग्रेजी की तुलना में कम हैं। बच्चे व नौजवान ही हमारी भाषा और संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे लेकर जाते है। लेकिन यदि उन्हें उनकी भाषा में शिक्षित न किया जाये वे अपने मूल संकट जायेग तो जहाँ वे अपनी जड़ों से कटते जा रहे है तो वहीं दूसरी ओर रोजगार के उचित अवसर मुहैया नहीं होने के कारण वे अपनी भाषा से विमुख होने के लिए भी विवश हो रहे हैं।

जब कोई भी भाषा शिक्षा और रोजगार के माध्यम से बाहर होती है, तो वह ध ीरे – धीरे एक बोली बनकर विलोपन की ओर बढ़ जाती है। यदि लोगों के जुड़ाव की कसौटी पर हिन्दी को देखा जाये, तो हिन्दी के विरुद्ध राजनीतिक प्रपंच के बावजूद भारत के तमाम अहिंदी भाषी राज्यों के लोगों ने इसे हृदय से अपनाया है और सीखा है। लेकिन व्याहारिक रूप से हिन्दी पर अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ रहा है। हिन्दी उनकी तृतीय भाषा बन रही है। दुनिया की दूसरी भाषाओं के लोग भी हिन्दी को कौतूहल से देखते है, लेकिन हिन्दी लेखकों व साहित्यकारों की कमजोर भूमिका के कारण विश्वसाहित्य में हिन्दी की स्थिति बेहद कमजोर बनी हुई है।

प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी उत्थान के लिए संकल्प लिये जाते हैं पर परिणाम यथावत बने रहते हैं। साथ ही इसे विश्व भाषा के रूप में स्थान दिलाने हेतु 10 जनवरी को विश्व हिन्दी दिवस भी मनाया जाता है। ठीक इसी दिन कुछ पूर्व पूर्व तमिलनाडु हिन्दी साहित्य अकादमी चेन्नई द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विश्व हिन्दी सम्मेलन हुआ। चर्चा परिचर्चा हुई और वस्तु स्थित जस कर तस रही है।[3] जब तक प्रशासनिक परीक्षाओं में हिन्दी को उचित भेदभाव रहित स्थान नहीं मिलता, जब तक हिन्दी सरकारी कामकाज में अनुवाद की भाषा में हिन्दी मौलिक भाषा नहीं बनती , जब तक सभी विषयों में हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा और शिक्षा के बाद रोजगार सुनिश्चित नहीं होता। तब तक हिन्दी के प्रति की गई चिंता और संरक्षण संवर्धन के लिए किए गए समस्त संकल्प तत्त्वहीन है। हिन्दी को देश की बिन्दी बनाने के लिए देश की नौकरशाही और नौकरशाहों की भाषा शासक वर्ग की भाषा तथा शासक वर्ग से संवाद की भाषा हिन्दी को बनाना ही पड़ेगा। यदि सदिच्छा और इच्छाशक्ति को बनाये रखकर हिन्दी को उसका सही स्थान दिलाने के लिए संकल्प और योजना बनाई जाती है, तो हिन्दी को उसका उचित स्थान तभी प्राप्त हो सकता है। हिन्दी भाषा को लेकर हमारी नीतियों और शिक्षा में बदलाव समय की मांग है। मनुष्य आशा से जीता है इसीलिए हम अशांन्वित हैं कि हिन्दी अपने गौरवपूर्ण स्थान को अवश्य प्राप्त करेगी। हिन्दी के समक्ष अनेक प्रकार की चुनौतियों ही चुनौति उस वर्ग से उत्पन्न हो रही हैं, जो हिन्दी लिखने बोलने में अंग्रेजी शब्दों के मिश्रण और रोमन लिपि की वकालत करता रहा है।

संदर्भ

1. *www. timesnowhindi.com*
2. *www.sahityarachna.com*
3. *डॉ0सुधेश हिन्दी की दशा और दिशा मेट्रो बुक्स, दिल्ली 2013*
4. *माड़भूषि रंगराज अयंगर दशा और दिशा–ऑनलाइन गाथा,*
5. *डॉ0चन्द्रशेखकर एम0आड़की एवं प्रो0सुशील कुमार यादव कर्नाटक में हिन्दी की दिशा दशा और विविध विमर्श अधिकरण प्रकाशन*
6. *हीरालाल वांछोतिया– राजभाषा हिन्दी और उसका विकास किताब घर प्रकाशन*

मङ्गलम् -वर्ष 12(02), भाग-XXIII, अगस्त, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-162-167

प्राच्य भारतीय समाज चिन्तकों की दृष्टि में पतितजनों की सामाजिक स्थिति

डॉ०ऋतेश त्रिपाठी *

अवधेय है कि भारतीय प्राच्य समाज चिन्तकों ने समाज के सम्यक् सञ्चालन हेतु व्यक्ति द्वारा कृत कर्मों एवं दुष्कर्मों की मीमांसा प्रस्तुत किया है। एतदर्थ उन्होंने धर्म के नैतिक पक्ष पर वृहद् गवेषणायें कते हुए मनुष्य के द्वारा किए गए नियमोल्लंघन; दुष्कर्म अथवा पाप कर्मों और उनसे मुक्ति प्राप्त कराने के लिए प्रायश्चित्त किए जाने की व्यवस्थायें प्रस्तुत किया है। साथ ही इस व्यवस्था के लक्ष्य में व्यक्ति के चित्त में उन सभी शुभकर्मों को करने की प्रेरणा भरते है, जिससे व्यक्ति का सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक और निजी जीवन मंगलमय हो। सामाजिक धरातल पर सम्मान जनक हो। इसके साथ ही यह भी लक्ष्य स्पष्ट होता है कि व्यक्ति उन अनेक अहितकर कर्मों से विमुख हो जाए, जो सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध हैं। इसीलिए प्राच्य आचार्यों ने आदर्श समाज की स्थापना एवं जन जन के जीवन को शुभंकर बनाने के लिए पाप पुण्य नामक दो कर्मफलों का निश्चयन किया है। नैतिकता और सदाचार की समाज में स्थापना के लक्ष्यपूर्ति हेतु उक्त पाप पुण्य की विपुलता से विवेचनायें प्राच्यविदों ने अपने चिन्तन के प्रत्येक आयामों में विहित किया है। पाप कर्मों के परिणामी प्रभाव को क्रमशः सामाजिक जीवन में पतन तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा और जीवन की समाप्ति के बाद भी नाना नरक भोग एवं नीच योनि में जन्म पाने के दंश के रूप में निश्चित किया है। वस्तुतः प्राच्य भारतीय समाज चिन्तकों की दृष्टि में समाज का हर व्यक्ति धर्मानुकूलता में सामाजिक नियम विधानों का परिपालन कर ससम्मान प्रतिष्ठापूर्ण जीवन यापन कर सके। पापकर्मो से वितर हो कर शुभ एवं कल्याकारी कर्मों का सम्पादन कर पुण्य की प्राप्ति कर सके।

इससे यह सिद्ध हेाता है कि प्राच्य मनीषा ने दुष्कर्मियों एवं पाप कर्मलिप्त जनों के सुधार की पक्षधरता में बहुशः प्रायश्चित्त विधानों की व्यवस्थायें उनके सुधार की अपेक्षा से ही किया है। जिससे पतितोद्धार सम्भव बन सके। अन्यथा की स्थिति तो समाज के लिए, व्यक्ति के लिए तथा उसके परिवार के लिए सर्वथा अहितकारी ही होगी। शुभाशुभ कर्मों के फल तो निश्चित हैं। विष्णुधर्म सूत्रकार ने स्पष्ट किया है कि कर्मफल का अनिवार्यतः प्राप्तव्य है ''जिस प्रकार हजारों

**असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, सी०एम०पी०डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ०प्र०)*

गायों के मध्य गाय का बछड़ा अपनी ही माता (गौ) को खोजकर प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म अपने कर्ता को भी खोज लेता है।[1]

ज्ञातव्य है कि निन्दापरक, कष्टदायक, अपमानजनक तथा समाज और शास्त्र विरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति को पतन की प्राप्ति होती है। पतनशील कार्यों को करने वाला व्यक्ति पतित कहलाता है। पतन कार्यों को ही दुष्कर्मों का नाम प्रदेय है। दुष्कर्मो के प्रकारों में क्रमशः अतिपातक कर्म; महापातक कर्म, महापातक सामानकर्म; उपपातक कर्म, अशुचितकर कर्म, जातिभ्रंशकर कर्म, संकरीकरण कर्म, अपात्रीकरण कर्म मलावह कर्म तथा हिंसाकर्म आदि की गणना की गई है।[2] इन कर्मों से पाप की प्राप्ति होती है। ऐसे कर्म कर्ता को पतित कहा गया है।[3] संक्षेप में हिंसा, यौनाचार, स्तेय, निषिद्ध भोजन, वेद एवं वर्ण धर्म की उपेक्षा और आचार विधानों का उल्लंघन करना पतितों के कार्य बतलाए गये हैं, जिनकी व्यापक विवेचना का उल्लेख किया जाना प्रसंगत परिहार्य है। अतिपातक और महापातक कर्मों को करने से प्रधान रूप में कर्ता का पतन होता है। वह पतित कहलाता है। ऐसा व्यक्ति पापमुक्ति के लिए शास्त्र विहित व्यवस्था के अनुसार प्रायश्चित्त कर शुद्धता प्राप्त करना ही नहीं चाहता। उपपातक कर्म करने से भी पतन होता है।[4] अशुचिकर कर्म यथा– अभक्ष्य मांस का भक्षण, अमेध्य पदार्थ का भक्षण तथा निषिद्ध भक्ष्य के भक्षण से भी व्यक्ति को पतित दोष लगता है।[5]

प्राच्य भारतीय समाज चिन्तकों ने पतित व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण निकृष्ट तथा तिरस्कृत रूप में प्रतिपादित किया है। यह स्थिति समाज में सर्वत्र अपमान जनक ही होती रही। इस स्थिति से समाज में भयव्याप्त होता रहा है। जिसका परिणाम रहा है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति जो सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति जागरूक होता है, वह पतित कृत्यों से अपनी सुरक्षा और संरक्षा प्राप्त करने का सतत प्रयास करता रहा है। पातक कर्मों के प्रति ऐसे लोग प्रवृत्त होने का साहस नहीं करते रहे। यदि समाज का कोई भी जागरूक व्यक्ति ज्ञाताज्ञात रूप से पतित कर्म हो जाता; तो वह पतित बनकर समाज में तिरस्कार और निन्दा ग्रस्त होकर जीवन जीने से अच्छा कठोर से भी कठोर प्रायश्चित्त करके सम्मान जनक जीवन प्राप्त करना अधिक उत्तम मानता था। इसीलिए पतित कर्मों के पाप प्रच्छालन हेतु प्रायश्चित्तों की व्यवस्थाओं को आचार्यों ने विहित किया है।

वस्तुतः समाज के अन्तर्गत पतित व्यक्ति को जीवन में ही निन्दित तथा मृत जैसी सामाजिक स्थिति में रहना होता रहा है। पतित व्यक्ति को समाज वहिष्कृत होकर जीवन जीते रहने की स्थिति में समाज में उसे मृत हुआ जैसा

स्वीकारा जाता था। उससे किसी भी प्रकार के सामाजिक धार्मिक एवं वैयक्तिक सम्बन्ध नहीं रखा जाता रहा। पतित व्यक्ति से प्रायः सभी सामाजिक जन वार्तालाप तक का भी व्यवहार नहीं करते थे। आचार्य गौतम ने पतित की परिभाषा करते हुए लिखा है कि ''इस संसार में द्विजाति कर्म तथा परलोक में भी पुण्य कर्मों के फल से जो व्यक्ति वंचित हो जाता रहा है, वह पतित कहताता है। उसका पतन कर्म नरक का पर्याय स्वरूप है।''[6] पतित व्यक्ति सामाजिक रूप से त्याज्य होता रहा। उसके साथ सम्बन्ध विच्छेद उसके सगे सम्बन्धी, बन्धुबान्धव सभी कर लेते थे। उसके लिए प्राच्य आचार्यों ने त्याग अथवा पात्र निनयन क्रिया का अनुष्ठान सम्पादन किए जाने का विधान दिया है।[7] पतित के साथ वार्तालाप निषिद्ध था। यदि अज्ञात रूप से भी कोई व्यक्ति उससे वार्तालाप कर लेता था तो उसे पूरीरात सावित्र मन्त्र का जाप करना निश्चित किया गया था। यदि जानबूझ कर कोई व्यक्ति उससे वार्तालाप कर लेता था;, तो उसे तीन यात्रियों तक सावित्री मन्त्र का जाप करना आवश्यक किया गया था।[8] ब्रह्महत्या दोष ग्रस्त पतित व्यक्ति की दृष्टि यदि किसी सज्जन के भोजन पर पड़ जाती थी, तो वह भोजन अभोजनीय सिद्ध किया गया था।[9] कुत्ते के समान पतित को मानते हुए आचार्य आपस्तम्ब ने कहा है कि पतित द्वारा देखा हुआ श्राद्धकर्म उत्तम नहीं होता''।[10] उससे उसके निकट सम्बन्धी अथवा आचार्य न तो मिलते थे और न कोई वस्तु ही उससे ग्रहण कर सकते थे। वह यदि कहीं मिलता तो अपने पूज्यों का चरण स्पर्श मौन रूप से कर सकता था। यह उसके कर्त्तव्यों के रूप में निश्चित किया गया है।[11] पतित के घर से भिक्षा अग्राह्य रही।[12]

प्राच्य भारतीय समाज चिन्तकों ने पतित व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार के समब्न्ध न किए जाने पर सभी सामाजिकों को निर्दिष्ट किया है। साथ ही यह भी सम्भावना व्यक्त किया है कि पतित के सम्पर्क मात्र से भी व्यक्ति पतित हो जाएगा। पतित से सम्पर्क को चार महापातक कर्मों के अतिरिक्त पाँचवा महापातक की मान्यता प्रायः सभी सूत्रकार आचार्यों ने प्रदान किया है। पतित सम्पर्क से होने वाले पतित व्यक्ति के लिए सम्पर्क न किए जाने की सीमा एक वर्ष निश्चित की गई है।[13] इसी के समान विष्णुधर्म सूत्रकार ने भी एक वर्ष तक पतित सम्पर्क के अतिरिक्त पतित के साथ बैठने और शयन करने से भी पतित दोषयुक्त होने का विधान दिया है।[14] लगभग सभी समाज चिन्तक आचार्यों ने स्पष्टतः निर्देश विहित किया है कि ''पतितों के साथ सम्पर्क अथवा सम्बन्ध सर्वथा निषिद्ध है।[15]

ध्यानार्ह तथ्य है कि पतित व्यक्ति की सामाजिक स्थिति प्राच्यविदों की दृष्टि से इतनी गर्हित हो चुकी थी; कि पतित व्यक्ति के पतित होने का लेखन

अथवा कथन भी पापमय माना जाने लगा।[16] उसे सम्पत्ति अधिकार से रहित और हीन ही नहीं अपितु पोषण के उपयुक्त ही नहीं माना गया है।[17] पतित के पुत्रों का सम्पत्ति में अधिकार न होने का निर्देश आचार्य आपस्तम्व ने किया है।[18] इतना ही नहीं अपतिु पतित पिता की सम्पत्ति को भी सर्वथा त्याज्य होने का निर्देश आचार्य बौधायन ने किया है। जिसे आचार्य गौतम भी मान्यता प्रदान करते है।[19] वसिष्ठ ने तो ऋत्विज् तथा आचार्य यदि पतित की सेवा ग्रहण करते हैं; तो दोनों को त्याग देने का निर्देश देते है।[20] माता के पतिता होने पर भी उसे त्यागने का निषेध किया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य वसिष्ठ का विचार है कि ''पुत्रों के लिए उसकी माता कदापि पतिता नहीं होती है''।[21] इसकी सर्वदा सेवा सुश्रूषा करनी चाहिए।[22] माता के रूप में पतिता स्त्री के प्रति प्राच्यविदों की दृष्टि उदार पूर्ण रही है किन्तु स्त्रीपतन विषयक चिन्तनों में हमें वसिष्ठ मत में यह प्राप्त होता है कि कोई भी स्त्री तीन प्रकार के कर्मों से पतिता होती हैं। उन्हें क्रमशः पतिहत्या, विज्ञ ब्राह्मण की हत्या तथा स्वगर्भ के नाश करने से कोई भी नारी पतिता हो जाती है।[23] इसके अतिरिक्त आचार्य गौतम ने नीच वर्ण के पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध बनाने वाली तथा सुरापान कर्त्री स्त्री को अपने अर्धभाग से पतिता हो जाने का निर्णय देते है। जिसके लिए कोई भी प्रायश्चित्त संभव ही नहीं माना है।[24]

इसी अनुक्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि पतित व्यक्ति का पुत्र क्या जन्मना पतित होगा? इस विषय में प्राच्य समाज चिन्तकों में मतैक्य नहीं है। एक वर्ग मानता है कि पतित का पुत्र पति नहीं होगा।[25] इस वर्ग का तर्क है कि अंगहीन व्यक्ति का पुत्र सर्वांगपूर्ण उत्पन्न होता है; यदि पतित का पुत्र पतित पिता के साथ नहीं रहता। उसे त्याग कर वर्णाश्रम धर्मावलम्बियों के साथ निवास करता है, तो वह पतित नहीं होगा।

इस सिद्वान्त के अन्तर्गत आचार्यो ने निर्देशन किया है कि पतित पुत्र श्रेष्ठ जनों के साथ निवास करने के लिए पतित पिता द्वारा प्रेषित किया जाए। अपने पास अथवा पतित लोगों के समाज में उसे न रखा जाए।[26] द्वितीय वर्ग के विचार में पतित पुत्र भी पतित ही होगा। एतदर्थ इस वर्ग के मत में यह तकै दिया गया है कि स्त्री दधिधानी तुल्या होती है, जिसमें अपवित्र दूध पड़ने पर यज्ञ के लिए उससे बने दधि और धृत यज्ञ के लिए अपवित्र ही हो जाते हैं। उसी भाँति अपवित्र वीर्य से उत्पन्न पुत्र भी अपवित्र ही होगा।[27] यह व्यवस्था पुत्र पर ही लागू होगी न कि पुत्री पर। क्योंकि वह पिता के घर से दूर हो जाती है।[28] ज्ञातव्य तथ्य है कि प्राच्य भारतीय समाज में पतितों का स्वयं एक समाज पृथक् रूप में निर्मित किया गया रहा; जो उदार भाव से समाज निर्माण एवं जनोद्धार

हेतु सिद्ध होता है। सामाजिक चिन्तक आचार्यों के अनुसार सभी पतित जन अपना पृथक् समाज निर्माण करें। साथ–साथ सब एक स्थान पर रहें। आपस में ही धर्म, यज्ञ; अध्ययन, अध्यापन तथा विवाह आदि सम्पन्न करें। पुत्र उत्पन्न हो; तो उसे अपने समाज से भिन्न आर्य जनो के पास निवास हेतु जाने का आदेश करें।[29] जिससे पतित व्यक्ति का पुत्र पतित होने से बच सके और श्रेष्ठ सामाजिक जीवन प्राप्त कर सके।

पूर्व लिखित तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राच्य भारतीय समाज चिन्तकों ने पतित व्यक्ति के पाप ग्रस्त एवं दोष युक्त हो जाने पर अत्यन्त कठोर नियम व्यवस्थाओं का प्राविधान किया है, जिसका लक्ष्य सभ्य एवं आदर्श समाज की स्थापना करना रहा है। इसके माध्यम से प्राच्य समाज चिन्तको की पतित कर्मों से समाज को मुक्त किए जाने की उत्तम सोच की अभिव्यक्ति होती है। दूसरी ओर प्राच्य विदों ने सुधार हेतु भी पतितो को अवसर प्रदान किया है। उसके लिए उन्होंने प्रायश्चित्त विधानों की व्यवस्थायें प्रदान किया है। ऐसी व्ववस्था से प्राच्य विदों की उदार भावना समाज निर्माण हेतु ही लक्षित होती है; जो आज भी भारत के अनेक क्षेत्रों में देखी जा सकती है। पतित व्यक्ति का प्रायचित्त न होने पर उसका सामाजिक जीवन उपेक्षापूर्ण, निन्दात्मक, और अपवित्र तथा पापमय स्वीकारा गया है। जिसे समकालीन भातरीय ग्राम्य जीवन में स्वल्प पार वर्तनों के साथ जीवन्त रूप में पाया जाता है।

सन्दर्भ

1. *वष्णुधर्म सूत्रम्–20–47– यथाधेनु सहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम्।*
   तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारं विन्दते ध्रुवम्।
2. *तदेव–41.1–3– पक्षिणां जलचरार्णा च घातनम्। कृमिकीटानांच। मद्यानुगत भोजनम्। इति मलाव हानि।*
3. *तदेव– 34.1–2, गौतमधर्मसूत्रम् – 3.3.1–3 बौधायन धर्मसूत्रम्–2.1.2–17 आपस्तम्बधर्मसूत्रम्– 1.24.1–7 गौतम धर्मसूत्रम्–2.3–10, विष्णुधर्मसूत्रम्– 36. 1–7, 36.8 तथा 40.1–3।*
4. *आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्– 1.25.7–10*
5. *तदेव–1.25.13–18*
6. *गौतम धर्मसूत्रम्– 3.3.4–6 द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम्। तथा परत्र चासिद्धिः। तमेके नरकम्।*
7. *वसिष्ठ धर्मसूत्रम्– 15.12–14*
8. *गौतम धर्मसूत्रम्– 3.2.8–9*
9. *तदेव–2.6.25–श्वचण्डाल पतितावेक्षणेदुष्टम्।*

10. आपस्तम्बधर्मसूत्रम्–2.17.20–श्वभिरपपात्रैश्च श्राद्धस्य दर्शनं परिचक्षते।
11. तदेव–1.28.70 एवं–1.28.6–न पतितामाचार्यं ज्ञातिं वा दर्शनार्थो गच्छेत् । सत्याषाढ धर्मसूत्रम्–26.7.42–44
12. गौतमधर्मसूत्रम्–1–2.41– अभिशस्त पतित वर्जम्।
13. तदेव–3.3.3–तैश्चाब्दं समाचरन्।
14. विष्णुधर्मसूत्रम्–35.3–4
15. आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्–1.21.5, 15–16 विष्णुधर्मसूत्रम्–54.31, बौधायान धर्मसूत्रम्–2. 3.42–न पतितैस्संव्यवहारो विद्यते।
16. आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्– 1.21.20–30
17. बौधायन धर्म सूत्रम्– 2.3.38–41
18. आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्– 2.14.1
19. बौधायन धर्मसूत्रम्–3.3.16–दायंतु न भजेरन्। वसिष्ठधर्मसूत्रम्–2..45
20. गौतम धर्मसूत्रम्– 3.3.12
21. वसिष्ठ धर्मसूत्रम्– 13.47–माता तु पुत्रे न पतति।
22. आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्– 1.28.9 तस्यां शूश्रूषा नित्या पतितायामपि।
23. वसिष्ठ धर्मसूत्रम्– 28.7–त्रीणिस्त्रियः पातकानि लोके धर्मविदोविदुः। भर्तृ हत्या भ्रूण हत्या स्वरूप गर्भस्य पातनम् ।।
24. गौतम धर्मसूत्रम्– 3.3.9–हीनवर्ण सेवायं च स्त्री पतति। तथा– वसिष्ठ धर्मसूत्रम् 21–15
25. आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्– 1.29.10–11 सत्यासाढ धर्मसूत्रम्–26.27.66–68, बौधायन धर्मसूत्रम –2.2–10
26. तदेव–1.29.9 बौधायन धर्मसूत्रम्–2.2.10
27. तदेव–1.29.12–14, सत्याषाढ धर्मसूत्रम्– 26.7.69–71 बौधायन धर्मसूत्रम्–2.2.11
28. वसिष्ठ धर्मसूत्रम्– 13.51–52– पतितोत्पन्नः पतितो भवति, इत्याहुरन्यत्रस्त्रियाः सा हि परगामिनी।
29. बौधायन धर्मसूत्रम्– 2.2.10, आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्–1.29.8

Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

Application for Membership

website:www.mangalamallahabad.com

Membership ID. No.- .....

(For Official Use)

PHOTO

1. Name (with title, e.g. Dr/Prof./Mr./Ms.) 2. Male/Female

2. Designation and Address-(If retired, Last address)

3. Mailing/Permanent Address-

4. Telephone (With STD code)-

Office:..... Residence:.....

Mobile No.:..... E-Mail :.....

Fax No. :.....

5. Type Of Membership

One Year :- Rs. 2000/- Three Year :- Rs. 5000/- Life Membership* :- Year:- Rs. 10,000/-

(*For Ten Year's)

New you may deposit the Membership fee directly in Maglam International Journal of Humanities & Social Scial Sciences (ISSN : 0976-8149) Account as per Following details :-

Name of Bank : State Bank of India Prayagraj Branch : Civil Lines Prayagraj
Account Holder : Manglam Sewa Samiti, Prayagraj A/c No. : 65024854963
IFC Code : SBIN 0018245 MICR Code : 211007003

Please return this form to

Dr. Dinkar Tripathi

Editor : Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences
463/359G-2 Shivam Apartment, New Mumfordganj, Prayagraj (U.P.)- India, 211002
website:www.mangalamallahabad.com
e-mail : drdinkartripathi@gmail.com

Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

Subscription Order Form

website:www.mangalamallahabad.com

PHOTO

1. Name : .....
2. Address : .....
   .....
   Tel./ Mabile No. ..... e-mail .....
3. Life Membership of Manglam Sewa Samiti- Yes/No (If Yes then I.D. No.....)
4. Tpe of Subscription : Individual / Institon
5. Period of Subscription : Annual / Three year's / Life time*
6. Number of Copies Subscription : .....

Dear Editor,

Kindly acknowledge the receipt of my Subscription and staet sending the issue (s) of Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences (ISSN-0976-8149) at follwing Aeddres.

.....

.....

.....

The Subscription rates ars sa Follow : w.e.f. 31.08.21\012

India (Rs.)	Members of Manglam Sewa Samiti	Individuals	Institutions
Single Copy	Rs. 300/-	Rs. 600/-	Rs. 750/-
Anaual Copy	Rs. 500/-	Rs. 1100/-	Rs. 1500/-
Three Copy	Rs. 1500/-	Rs. 8000/-	Rs. 4500/-
Life time*	Rs. 500/-	Rs. 1100/-	Rs. 10,000/-
OTHER COUNTRIES	**Members of Sewa Samiti**	**Individuals**	**Institutions**
Single Copy	$ 65	$ 80	$ 120
Anaual Copy	$ 120	$ 150	$ 240
Three Copy	$ 360	$ 430	$ 720
Life time*	$ 3000	$ 5000	$ 10,000

(*For Ten Year's)

New you may deposit the Membership fee directly in Maglam International Journal of Humanities & Social Scial Sciences (ISSN : 0976-8149) Account as per Following details :-

Name of Bank : State Bank of India Prayagraj Branch : Civil Lines Prayagraj

Account Holder : Manglam Sewa Samiti, Prayagraj A/c No. : 65024854963

IFC Code : SBIN 0018245 MICR Code : 211007003

Please return this form to

Dr. Dinkar Tripathi

Editor : Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

463/359G-2 Shivam Apartment, New Mumfordganj, Prayagraj (U.P.)- India, 211002

website:www.mangalamallahabad.com

e-mail : drdinkartripathi@gmail.com